राधास्वामी सहाय

सरलार्थ

तुलसी साहब (हाथरस वाले) की बानी

जिसमें निम्न पुस्तकों से छाँटे हुए शब्दों, चौपाइयों, कुंडलियों, साखियों और दोहों के सरल अर्थ दिए गए हैं

१. शब्दावली भाग १ व २

२. घट रामायण भाग १ व २

३. रत्न सागर

४. पदम सागर

५. फुटकर साखी संग्रह

स्वामी बाग, आगरा-२८२००५

दो शब्द

युग युगान्तर से अनेक महापुरूष इस पृथ्वी पर अवतरित होते रहे और उन्होंने अपने समय में अधर्म का निवारण करके धर्म को संस्थापित किया। जैसे-जैसे जीव का अधिकार बढ़ता गया, उसको उत्तरोत्तर उच्च से उच्च परमार्थ की शिक्षा देने के लिये क्रमशः ऊँचे दर्जे की शक्तियाँ अवतरित होती गयीं जैसा कि अवतारों के क्रम से विदित होता है। कलियुग में जब जगत के उद्धार का समय आया तो संतों ने यहाँ चरण पधारे।

२. राधास्वामी दयाल के प्रथम अवतार स्वामीजी महाराज के आगमन से पहले जो संत साध महात्मा फकीर और औलिया यहाँ आये, वे राधास्वामी दयाल के पधारने हेतु उपयुक्त वातावरण तैयार करने के लिये आये थे ताकि जीव, जो उस समय मूर्ति पूजा, अंध विश्वास, जड़ पदार्थों की पूजा, देवी देवताओं की आराधना व अन्य बाहिरमुखी कार्रवाइयों यथा छुआछूत, जात पात, जप तप, तीरथ व्रत, संजम व अनेक सामाजिक कुरीतियों में फँसे हुए थे, से मुक्त होकर, राधास्वामी दयाल का उपदेश व संत मत की गुप्त व सारगर्भित बातें सुनने, समझने, स्वीकार व ग्रहण करने के योग्य व अधिकारी बन जायें।

३. स्वामीजी महाराज ने जिन सन्तों के नामों का उल्लेख किया है, उनमें तुलसी साहब का नाम विशेष दर्जा व महत्व रखता है। आप स्वामीजी महाराज के समकालीन थे। उनका जन्म पूना शहर के तत्कालीन पेशवा वंश में हुआ था। वे पेशवा रघुनाथ राव (राघोबा) के ज्येष्ठ पुत्र थे और राजगद्दी के हकदार थे। आपकी रुचि व रुझान परमार्थ की ओर बचपन से ही थी। कई बार आप अपने पिता को भी परमार्थ की बातें बताया करते थे। आपके पिता राजगद्दी सौंप कर राज काज का भार आपके ऊपर डालना चाहते थे, किन्तु जब कभी ऐसा प्रसंग आता, आप दृढ़ता पूर्वक अपनी अनिच्छा ज़ाहिर करते रहे। एक बार आपके पिता ने राजगद्दी सौंपने का मुहूर्त तय कर दिया। आप उक्त अवसर के एक दिन पहले हवाखोरी पर जाने का बहाना करके घोड़े पर सवार होकर ग़ायब हो गये। आपके पिता ने आपको दूँढ़ने के बहुत प्रयास किये किन्तु सब व्यर्थ गये। इस तरह आप राजगद्दी व गृहस्थ त्याग कर घर से निकल पड़े और अनेक प्रान्तों का भ्रमण करते छिपते छिपाते आगरा के पास हाथरस में पहुँचे और गाँव जोगिया में अपना आसन जमाया।

४. तुलसी साहब ने कबीर साहब द्वारा प्रवर्तित संतमत का पुनः संस्थापन किया और इस ढाई सौ वर्ष की अवधि में पुराने संतों द्वारा स्थापित संत मत में जो शिथिलता आ गई थी, उसको दूर करने का प्रयत्न किया और विशुद्ध संत मत की धारणा पुनः कराई। साथ ही साथ कबीर साहब के बाद आने वाले संतों के अनुयायियों में जो भ्रम और भ्रांतियाँ आ गई थीं उनका निवारण किया। साथ ही इसका भी संकेत किया कि संतमत सत्तलोक तक ही सीमित नहीं है। पर उसका उपदेश तुलसी साहब ने स्वयं नहीं किया है क्योंकि परम संत जिनके द्वारा अनामी अथवा राधास्वामी धाम का विस्तृत उपदेश किया जाना था अर्थात् स्वामीजी महाराज अवतरित हो चुके थे और तुलसी साहब उनका परिचय कराने के लिए ही पूना से आगरा के निकटवर्ती नगर हाथरस आ गए थे।

५. आगरा नगर के श्रद्धालु भक्तजन तुलसी साहब के दर्शन सतसंग के लाभ हेतु हाथरस आते जाते थे और कभी-कभी तुलसी साहब भी अपने भक्तों को कृतार्थ करने हेतु आगरा नगर पधारते थे।

६. स्वामीजी महाराज ने जिस परिवार में अवतार ग्रहण करने की मौज फरमाई थी, वह नानक पंथी (उदासी) मतावलम्बी था। तुलसी साहब जब एक बार स्वामीजी महाराज के माता पिता के मकान पर पधारे तो स्वामीजी महाराज को देखकर उनकी माताजी से फरमाया कि तुम इसको पुत्र भाव करके न समझना। यह किसी परम संत ने तुम्हारे यहाँ अवतार लिया है।

७. आगरा नगर के मोहल्ला "गुड़ मण्डी" में एक गृहस्थ तुलसी साहब के भक्त रहते थे। उनके मकान का बाहरी आंगन बहुत बड़ा था। वहाँ अक्सर तुलसी साहब पधारा करते थे और उनका सतसंग उसी आँगन में हो रहा था जिसमें स्वामीजी महाराज के माता पिता भी उपस्थित थे। स्वयं स्वामीजी महाराज जिनकी अवस्था उस समय ६-७ वर्ष की थी, अपने कुटुम्बियों के साथ बैठे हुए थे। सतसंग में तुलसी साहब ने प्रवचन किया और जब सत्तलोक तक का वर्णन करके चुप हो गये तो स्वामीजी महाराज ने प्रश्न किया कि सत्तलोक के आगे के तीन मुकाम 'अलख अगम और अनामी को लखा दें'। इस पर तुलसी साहब ने उनकी ओर मुखातिब होकर कहा-वह तो तुम्हें खोलने हैं, तुम उन्हें खोलना।

८. इस प्रकार तुलसी साहब ने स्वामीजी महाराज का परम संत रूप में परिचय उनके परिवार को उनके मकान पर और अपने सतसंगी समुदाय को और उसके माध्यम से समस्त जन साधारण (आम तौर पर) खुले सतसंग में किया और सब पर प्रकट कर दिया कि स्वामीजी महाराज कोई साधारण बालक नहीं वरन् अवतारी पुरूष एवं परम संत हैं। जो लोग स्वामीजी महाराज के परिवार से परिचित थे और उनके घर आते जाते थे, वे सब स्वामीजी महाराज की अलौकिक और विलक्षण प्रतिभा से परिचित थे। तब से स्वामीजी महाराज के परिवार वालों तथा आने जाने वालों परिचितों ने स्वामीजी महाराज को होनहार संत के रूप में जाना और उनके प्रति तदनुसार श्रद्धावनत व्यवहार करने लगे।

९. संतों की पहचान कर सकें और जैसा संत कहें वैसी करनी कर सकें, ऐसे उच्च कोटि के जीवों को संत अपने साथ लाते रहे हैं। उनके वसीले से अन्य संस्कारी जीवों में भी संस्कार डाला जा सकता है और उनको देखकर वे भी वैसी करनी करने लगते हैं। जंगली हाथी को सिखलाने के लिये पाले हुए हाथी का संग कराया जाता है। इसी तरह जीवों को सिखलाने के लिये सीखे हुओं का संग कराना जरूरी है।

१०. साध महात्मा आने वाले संत या परम संत की पहचान के विषय में अपने बचन वाणी में कुछ ऐसे संकेत देते हैं जिनके सहारे लोग उन्हें पहचान सके अन्यथा उनको पहचानना जन साधारण के लिए संभव नहीं हैं। तुलसी साहब ने फरमाया है—

कोइ जो कहे संत हम चीन्हा।

तुलसी हाथ कान पर दीन्हा॥

स्पष्ट है कि संतों को पहचानने की क्षमता जीव में नहीं है जब तक या तो संत स्वयं अपने को प्रकट न करें अथवा उनके पूर्ववर्ती कोई संत उनका परिचय जन साधारण को न दें।

११. इस प्रकार तुलसी साहब का अवतरण, स्वामीजी महाराज का परिचय कराने के लिये ही हुआ था। तुलसी साहब ने अपनी बानी में सुन्न, भंवरगुफा व सत्तलोक का वर्णन करके, अंत में राधास्वामी अनामी का भी भेद इशारे में खोला है जिसे इस पुस्तिका में यथास्थान स्पष्ट किया है।

१२. हुजूर महाराज ने स्वामीजी महाराज की सेवा में भेजे हुए पत्रों में कई स्थानों पर तुलसी साहब की घट रामायण व शब्दावलि का उल्लेख किया है।

स्वामीजी महाराज ने स्वयं फरमाया–

नानक और कबीर बखाना।
तुलसी साहब निज कर जाना॥

१३. तुलसी साहब की बानी कठिन व सारगर्भित शब्दों से भरी पड़ी है जिसका समझना व अर्थ करना आसान काम नहीं है। संतदास जी ने प्रेमपत्र राधास्वामी छठे भाग के अंत में, जो हुजूर महाराज ने तुलसी साहब के कुछ शब्द लिखे हैं, उनका भावार्थ करके, जीवन चरित्र तुलसी साहब लिखते समय उसमें सम्मिलित कर लिये। रामायण के गूढ़ रहस्य में भी संतदास जी ने तुलसी साहब की घट रामायण की कुछ चौपाइयों और शब्दों का अर्थ और स्पष्टीकरण किया है, कई स्थानों पर तुलसी साहब के संवाद और उवाच के भी अर्थ किये हैं, जिन्हें इस पुस्तिका में सम्मिलित कर लिया गया है।

१४. इसी तरह निरमलदास जी ने संत संग्रह भाग २ के अर्थ भावार्थ करते समय तुलसी साहब के कुछ शब्दों विशेषकर चितावनी वाले शब्दों का अर्थ किया है, जिन्हें भी इस पुस्तिका में समाविष्ट कर लिया है। जो कुछ शब्द और दोहे छूट गये थे, उनका सरलार्थ पुराने बुजुर्ग सतसंगियों विशेषकर इलाहाबाद के सतसंगी भाई राधाचरण साहू और गया निवासी नंदू साव के सहयोग से तैयार कर इस पुस्तिका में अंकित कर लिए गए हैं।

१५. वर्णित स्थिति में सरलार्थ की प्रस्तुत पुस्तक दीनतापूर्वक, बाबूजी श्री संतदास जी, को सादर समर्पित की जा रही है, जिन्होंने इस कठिन कार्य के लिए मार्ग प्रशस्त किया। आशा है कि तुलसी साहब की बानी यथा शब्दावलि भाग १ व २, घट रामायण भाग १ व २, रत्न सागर, पदम सागर से छँटि हुए शब्दों, चौपाईयाँ, कुंडलियाँ, साखियों व दोहों के सरलार्थ एक स्थान पर उपलब्ध होने से सतसंगियों व जिज्ञासुओं को अवश्य सहूलियत होगी।

स्वामी बाग, आगरा
27 सितम्बर, 2006

दास अंकिचन
ज्ञान दास माहेश्वरी

विषय सूची

संतमत का गूढ़ रहस्य

नाम व शब्द की महिमा

सतगुरु के दर्शन और सतसंग की महिमा

बारहमासा

सतगुरु भक्ति उपदेश

नसीहतनामा

सत्तलोक व राधास्वामी धाम का इशारे में वर्णन

कुंडलिया

मिश्रित शब्द

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय

तुलसी साहब (हाथरस वाले) की शब्दावली

पहला व दूसरा भाग से छाँटे हुए शब्दों का सरलार्थ

सतगुरु महिमा

॥ शब्द १ ॥

कोइ सतगुरु देव री बताइ, चरन गहूँ ताहि के ॥ टेक ॥
चहुँ दिसि ढूँढ़ि फिरी कोई भेदी, पूछत हौं गुहराइ।
उन से कहूँ बिथा सब अपनी, केहि विधि जीव जुड़ाइ ॥ १ ॥
जो कोई सखी सुहागिन होवै, कहे तन तपन बुझाइ।
पिउ की खोल खबर कहै मो से, मरुँ री बिकल कर हाइ ॥ २ ॥
जो न्यामत दुनिया दौलत की, सो सब देऊँ बहाइ।
बारम्बार वार तन डारूँ, यह कहा मोल बिकाइ ॥ ३ ॥
बिन स्वामी सिंगार सुहागिन, लानत तोबा ताइ।
पिय बिन सेज बिछावे ऐसी, नारि मरै विष खाइ ॥ ४ ॥
सतगुरु बिरहिन बान कलेजे, रोवै और चिल्लाइ।
हाय हाय हिये में निस बासर, हर दम पीर पिराइ ॥ ५ ॥
इह झुँड में कोई पाक पियारी, पिया दुलारी आहि।
मैं दुखिया हौं दर्द दिवानी, प्रीतम दरस लखाइ ॥ ६ ॥
तुलसी प्यास बुझे प्यारे से, चढ़ घर अधर समाइ।
किरपावंत संत समझावैं, और न लगै उपाइ ॥ ७ ॥

(शब्दावली भाग पहला बिरह और प्रेम शब्द १)

तुलसी साहब कहते हैं कि बिरहनी, मालिक से मिलने की बिरह में तड़प रही है और उस बिरह से पीड़ित होकर चारों दिशाओं में आगाज लगा-लगा कर लोगों से पूछ रही है, कि मुझे सतगुरु का पता बता दो और अगर कोई मुझे सतगुरु का पता बतायेगा मैं उसके चरन पकड़ लूँगी। मैं घट का भेद जानने वाले को चारों ओर खोज रही हूँ और अब सबसे पूछती फिरती हूँ। मैं उनसे

अपनी सब बिथा कहूँगी और पूछूँगी कि कृपा करके बतलाइये कि मेरा मन कैसे शांति पावे? सतगुरु मिलने पर मैं जब अपना दुख (मालिक के न मिलने का) उनसे कहूँगी तब ही मेरे हृदय में शांति होगी। १।

अगर कोई ऐसी सखी हो जो पिया से मिली हुई हो और वह मुझे पिया का पता ठिकाना देवे तो मेरी तपन दूर हो। हाय! नहीं तो मैं व्याकुलता में प्राण तज दूँगी। २।

दुनिया की दौलत और नियामतों को फेंक दूँ और अपने तन को बार-बार वार दूँ। यह तन कोई मोल नहीं बिकता। यह अनमोल है। ३।

बिना पिया मिलाप के जो सिंगार करती है, उसको लानत है और जो नारी अपने पिया के बिना सेज बिछाती है उससे तो उसे विष खा कर मर जाना अच्छा है। इसी तरह मेरा जीवन भी बिना मालिक के मिले, व्यर्थ है और इस तन धरे पर अफसोस आता है। ४।

विरहिन को ऐसी वेदना होती है जैसे कलेजे में बाण चुभता हो। वेदना में वह रोती और चिल्लाती है। हर दम वियोग की पीर व्यापती रहती है और रात दिन हिरदा दुखी रहता है। ५।

मैं दुखिया और दर्द में दिवानी हूँ। इस झुंड में कोई प्रेमिन जो पिया की दुलारी हो, मिले तो मुझे प्रीतम का दरस दिखावे। ६।

तुलसी साहब फरमाते हैं कि जीव अधर घर में अपने प्रीतम में समावेगा तब उसकी प्यास बुझेगी। संत दयाल जीव को यह भेद बतलावें, इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। मुझे तो यही प्रतीत हो रहा है कि मेरी मालिक से मिलने की तड़प तब ही बुझेगी जब वह दयाल पुरूष संत सतगुरु मुझे अपने धाम का भेद समझावेंगे और मैं उनकी दया का बल लेकर अभ्यास करके मालिक के धाम में पहुँच जाऊँ जहाँ से मैं आदि में आई थी। ७।

॥ शब्द २ ॥

कोई सतगुरु मिलैं री दयाल, काढ़ैं जम जाल से ॥ टेक ॥

करता काल कलेवर कीन्हा, दीन्हा भौ भ्रम डाल।

लख चौरासी जिया जोनि में, फिरते बहुत बिहाल॥ १॥
कहो उनकी किरपा बिन दूजा, कौन करै प्रतिपाल।
कल्प कल्प कागा करि राखे, कैसे होइ मराल॥ २॥
चहुँ दिसि फेर रहो चक्कर को, दूसर चलै न चाल।
को रोकै सन्मुख होइ जाके, कठिन कुलाहल काल॥ ३॥
सतसंग बिना दीन दिल दृढ़ कै, केहि विधि होइ निहाल।
संत सरन लीन्हे बिन कोइ, लिखा रे मिटै नहिं भाल॥ ४॥
तुलसी तीन लोक का नाइक, सब का लूटै माल।
सतगुरु चरन सरन जो आवै, सो जिव देत निकाल॥ ५॥

(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द २)

तुलसी साहब कहते हैं कि अगर जीव को सतगुरु मिल जावें तो वे इसे जम के जाल से निकालें। काल ने इसकी देह रची है और इसे संसार में फँसा दिया है। अब यह चौरासी लाख योनि में अति बेहाल होकर भटक रहा है। १।

कहो! सतगुरु की कृपा बिना कौन इसकी रक्षा कर सकता है ? काल ने इस जीव को दीर्घ काल तक काग के समान बना कर रक्खा है। अब यह कैसे हंस गति पावे ?। २।

काल जीव को चौरासी के चक्कर में डाल कर घुमाता है और जीव को और कुछ नहीं करने देता। कौन उसके सन्मुख होकर इस भरमने को रोक सकता है? यह काल बड़ा प्रचंड और प्रबल है। ३।

सतसंग, दीनता और मन को स्थिर और दृढ़ रक्खे बिना यह जीव कैसे निहाल हो सकता है? संतों की सरन लिये बिना किसी का विधाता का लिखा हुआ लेख नहीं मिट सकता। ४।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि तीन लोक का धनी यानी काल सबका माल लूटता है लेकिन जो जीव सतगुरु के चरनों की सरन लेता है वह उसके घेरे से छुटकारा पा जाता है , क्योंकि सतगुरु ही रेख पर मेख मार सकते हैं। ५।

॥ शब्द ३ ॥

जिनके हिरदे गुरु संत नहीं, उन नर औतार लिया न लिया॥ टेक॥
सूरत बिमल बिकल नहिं जाके, बहु बक ज्ञान किया न किया ॥ १॥
करम काल बस उद्र निहारा, जग बिच मूढ़ जिया न जिया ॥ २॥
अगम राह रस रीत न जानी, बहु सतसंग किया न किया॥ ३॥
नाम अमल घट घोंट न पीन्हा, अमल अनेक पिया न पिया॥ ४॥
मोटे मात जात जिंदगी में, सिर धर पैर छुया न छुया॥ ५॥
तुलसीदास साध नहिं चीन्हा, तन मन धन न दिया न दिया॥ ६॥

(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द ३)

तुलसी साहब कहते हैं कि जिनके हृदय में गुरु और संत नहीं बसे, उनका जन्म लेना वृथा है। जिनकी सुरत निरमल नहीं हुई और वह मालिक से मिलने के लिए व्याकुल नहीं है तो चाहे वह मनुष्य कितना ही चतुर हो, तो भी वह ज्ञान किस काम का है? वह ज्ञान बगुला ज्ञान के बराबर है। १।

जो काल और कर्म के बस होकर सिर्फ़ पेट भरने से मतलब रखता है उसका जीना या न जीना बराबर है। २।

अगर किसी ने बहुत मुद्दत तक सतसंग किया तो भी वह वृथा है अगर उसने अगम राह के आनंद को नहीं पाया और नहीं जाना और न ही उस राह पर चलने का भेद समझा। ३।

किसी ने अनेक तरह के नशे किये हों तो भी जानो कि उसको कुछ नहीं मिला अगर उसने नाम का निर्मल नशा नहीं पिया। ४।

अगर किसी ने अपनी जिंदगी अहंकार और मद में गुज़ार दी तो उसका संतों के चरनों पर सिर रखकर छूना या न छूना बराबर है। ५।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अगर किसी ने साध को नहीं पहचाना तो उसका तन मन धन अर्पण करना या न अर्पण करना दोनों बराबर हैं। ६।

॥ शब्द ४ ॥

बिन गुरु गैल गबन कहँ जैहौ ॥ टेक॥
बाट घाट घर मारग भूले, मूल मिलाप राह नहिं पैहौ॥ १॥
ऊभट बाट चल चलत जुग बीते, अब मारग बिन जम घट सहिहौ॥ २॥
लख सतसंग बदन दिन चारी, हारी जीत समझि सुधि लैहौ॥ ३॥
तुलसी तलब करै कोई दरदी, करि तलास गुरन सँग रहिहौ॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द ४)

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सुरत अपने निज धाम से यहाँ आ कर भवसागर में फँस गई और वह अपने आदि धाम वापिस लौटने का रास्ता भूल गई है, और अपने मालिक से मिलने का मार्ग नहीं ढूँढ़ पा रही। १।

उसे उल्टे सीधे रास्ते पर भटकते हुए कई जुग बीत गये और सच्चा और सीधा रास्ता न मिलने के कारण काल के जाल से निकलना उसके लिये संभव नहीं हो पा रहा है। २।

सुरत को चाहिये कि सच्चे गुरु को खोज कर उनका सतसंग करे और उनके द्वारा बताई गई परमार्थी करनी व जतन निष्ठापूर्वक उनकी (संत सतगुरु की) रहनुमाई में शुरू कर दे। ३।

यह निश्चित रुप से जान ले कि निज घर का सही रास्ता गुरु ही बतावेंगे और वे ही अपने संग सुरत को अन्ततोगत्वा ले जायेंगे। ४।

॥ शब्द ५ ॥

सखी मोहिं नींद न आवै री, एरी बैरन बिरह जगावै॥ टेक॥
सूनी सेज पिया बिन व्याकुल, पीर सतावै री॥ १॥
रैन न चैन दिवस दुख व्यापै, जग नहिं भावै री॥ २॥
तड़फत बदन बिना सुख सइयाँ, सब जरि जावै री॥ ३॥
विषधर लहर डसै नागिन सी, ज्यों जस खावै री॥ ४॥

देवै मौत दई बिरहन को, होते मरि जावै री॥ ५॥
कैफ बिना तुलसी तन सूखै, जिय तरसावै री॥ ६॥
(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द ५)

विरहनी कहती है कि हे सखी! मुझे नींद नहीं आती। यह बैरी बिरह, मुझे रात भर जगाये रखती है। पिया के बिना सेज सूनी है और मन व्याकुल है और बिरह की पीर सता रही है। १।

मुझे रात को चैन नहीं है, दिन भी दुख में बीत जाता है और यह संसार मुझे नहीं सुहाता। २।

पिया के सुख के बिना मेरा बदन तड़प रहा है, ऐसा मालूम होता है कि सब कुछ जल रहा है। उसी तरह सतगुरु के मिलन के बिना सब जीव विशेषकर मुतलाशी, भक्तजन और विरहीजन तड़प रहे हैं। ३।

विरहनी पुन: कहती है कि मुझे जहर की लहर चढ़ रही है जैसे साँप ने काट लिया हो। ४।

विरहनी तंग होकर फिर कहती है कि इससे तो विधाता विरहिन को मौत दे देता और वह पैदा होते ही मर क्यों न गई? ५।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि बिना पिया सुख के विरहिन का तन सूख गया है, और जिया तरस रहा है। इसी तरह भक्त भी संत समागम के बिना तड़प और तरस रहा है और विरहिन की भाषा बोलने पर मज़बूर हो गया है। ६।

॥ शब्द ६ ॥

प्यारी पिया पैहों कौने भेस, मैं तो हारी ढूँढ़ि सारा देस॥ टेक॥
जोग जुगति जोगी ठगे, ब्रह्मा, विष्णु, महेस।
वेद विधी बंधन भये, देव मुनी और सेस॥ १॥
ब्रह्मचार वैराग लौ, सन्यासी दुरवेस।
परमहंस बेदान्त को, पढ़ि भाषत ब्रह्म नरेस॥ २॥
तीरथ बरथ अन्हान को, चार बरन परवेस।

काल करम करता करै, बाँधे जम धर केस ॥ ३ ॥
जगत जाल जंजाल से, कोइ नहिं पावत पेस।
मैं सतगुरु सरना लिया, तुलसी सकल तज ऐस ॥ ४ ॥

(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द ७)

विरहनी अपनी सखी से कहती है कि हे मेरी प्यारी सहेली! मुझे बतलाओ कि मैं पिया से कैसे मिलूँ। वह किस रूप में हैं मुझे नहीं मालूम? मैं सब जगह उनको ढूँढ़ कर हार गई। जोग की जुक्ति करने से जोगी और ब्रह्मा विष्णु, महेश ठगे गये और वेद की रीति देवताओं, मुनियों और शेष के लिए भी एक बंधन हो गई। १।

ब्रह्मचारी, सन्यासी और दरवेश संसार का त्याग करते हैं और परमहंस वेद को पढ़ कर कहते हैं कि ब्रह्म मालिक है। २।

लोग व्रत करते हैं और तीर्थों में जल में स्नान करते हैं और वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं लेकिन वे सब काल और कर्म के आधीन हैं, और अंत में यम उनको केश पकड़ कर बाँधेगा। ३।

मैंने सबको तजकर सतगुरु की शरण ले ली है और समझ लिया है कि बिना सतगुरू के जगत के जंजाल से कोई नहीं बचा सकता। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मैंने संसार के सब ऐशो आराम छोड़ कर सतगुरु की सरन ग्रहण कर ली है। वह ही मुझे काल के जाल से निकालने वाले हैं। ४।

॥ शब्द ७ ॥

पी की मोहिं लहर उठत, खुटत रैन नाहीं।
कहा कहूँ करमन की रेख, हिये को दरदाई ॥ टेक ॥
अँखियाँ ढुर ढुरत नीर, सखियाँ सुख नाहीं।
पपिहा पिउ पिउ के बोल, खोलत खिसियाई ॥ १ ॥
जियरा जरजर पिरात, रात रटत साईं।
लाई स्त्रुति चरन सरन, हित चित चिन्हवाई ॥ २ ॥
मेरे मन की मुराद, साध सँगत चाही।

खोजै खुल खुल, बिसेष लेखै अपनाई॥ ३॥
तुलसी तत मत बिलास, पास प्रेम छाई।
पाई धर धधक घोर रमक सी जनाई॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द ८)

विरहनी कहती है कि मुझे पिया के वियोग की लहर उठती है और रात का समय नहीं बीतता। अपने कर्मों का हाल मैं क्या कहूँ जो मुझे दुख दे रहे हैं? मेरी आँखों से आंसू बहते हैं और मुझे सखी सहेलियों के संग कोई सुख नहीं मिलता। पपीहा का मधुर स्वर मुझे तड़पाता है। जब पपीहा अपनी पपीही से मिलने के लिये पिउ पिउ बोलता है और जब मैं उस बोली को सुनती हूँ, तब मुझे गुस्सा आ जाता है कि मुझे मालिक क्यों नहीं मिल रहे हैं। १।

रात भर पिया पिया रटते रटते मेरा हृदय व्याकुल हो गया। मैं अपनी सुरत को उनके चरन सरन में रखता हूँ और हित चित से उन्हें पहचानता हूँ। २।

मेरे मन में यही चाहत है कि मैं साधों की खोजकर उनके संग रल मिल कर सतसंग करूँ, और मालिक का गुणगान करते हुए दुनिया जो मुझे बिल्कुल नहीं सुहाती, को छोड़ने की तैयारी करूँ। मेरा मन साध संग चाहता है ताकि वह उनसे पिया की खोज ख़बर ले सके और अपना रूप लख सके। ३।

तुलसी साहब फरमाते हैं कि तत्व यानी सत्य की समझ आने से प्रेम के वातावरण में सुख मिलता है और तब अगर किसी को कुछ धीर गंभीरता प्राप्त हो तो वह बाहर उसका थोड़ा सा ही इज़हार करता है। ४।

तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने यह तत्व वस्तु अनमोल जो कि सुरत है यानि जीवात्मा है, उसको स्थान असली पर पहुँचा कर और उनसे मिलकर परम आनंद को प्राप्त कर उनके निज धाम में पहुँच गया। रास्ते में मालिक के धाम से निकलने वाली विभिन्न धुनों को मैंने सुना और मैं उनमें सराबोर हो गया।

॥ शब्द ८ ॥

बिरह में बेहाल बिकल, सुध बुध बिसराई।
रजनी नहिं नींद, नैन दीदा दरसाई ॥ टेक॥

सखियाँ सुन सेज, पास गाज परत आई।
पलँगा पर पाँव धरत, नागिन डस खाई॥ १॥
तड़फत तन तोल, बोल बाक बचन नाहीं।
पल पल पी की उसास, स्वाँसा भरि आई॥ २॥
मोरा कुछ बल विवेक, एक चलत नाहीं।
सतगुरु बिन मेहर, कहर अजगुत दरसाई॥ ३॥
तुलसी तू तरक बाँध, साध समझ लाई।
गाई सब संत, अंत सूरत लखवाई॥ ४॥
(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द ९)

विरहनी कहती है कि मैं पिया की बिरह में बेहाल और व्याकुल हूँ और मेरी सुध बुध जाती रही। मुझे रात को नींद नहीं आती और मेरी आँखें फटी की फटी रहती हैं। यह सुनकर सखियाँ मेरे पास आईं पर जब मैंने पलंग पर पैर रक्खा तो मुझे ऐसा लगा गोया मुझे साँप ने काट लिया। १।

मेरा मन तड़प रहा है। मेरा संतुलन जाता रहा है। मेरा बोलना भी बंद हो गया है। मैं अपने प्रीतम की विरह में पल पल आहें भरती हूँ। २।

मेरा बल विवेक कुछ काम नहीं आ रहा है। बिना सतगुरु की दया के मैं अजीब मुश्किल में पड़ गई हूँ। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अपना बेड़ा बाँधो और सोच समझ और मेहनत से अपनी अंत अवस्था को लखने का जिसका सब संतों ने वर्णन किया है, कार्य आरम्भ करो। ४।

॥ शब्द ९ ॥

मेरे दरद की पीर कसक, किससे मैं कहूँ॥ टेक॥
ऐसा हकीम होय, जोई जान दे दहूँ।
खटके कलेजे बीच, बान तीर से सहूँ॥ १॥
घायल की समझ सूर, चूर घाव में रहूँ।

हीये हवाल हाल, गला काट के लहूँ॥ २॥
जैसे तड़फती मीन नीर, पीर ज्यों सहूँ।
जैसे चकोर चंद, चाह चित्त से चहूँ॥ ३॥
सोची सुबह और साम, पिया धाम कस गहूँ।
तुलसी बिना मिलाप, छुरी मार मर रहूँ॥ ४॥
(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द १०)

विरहनी कहती है कि मैं अपने दर्द की पीर और कसक किससे कहूँ? जो हकीम मेरे दर्द को दूर कर दे, मैं उस पर अपनी जान न्योछावर कर दूँ। जैसे कलेजे में तीर चुभता है इस तरह की पीर मुझे सता रही है। १।

मैं घायल हूँ। घायल की दशा कोई शूरवीर ही समझता है। मुझे ऐसी तड़प लग रही है कि अपना गला काट दूँ। २।

जैसे पानी के बिना मछली तड़पती है उस तरह मैं तड़पती हूँ। जैसे चकोर चंद्रमा को चाहता है, उसी तरह मैं अपने प्रीतम से मिलना चाहती हूँ। मैं रात दिन चिंता में रहती हूँ कि कैसे अपने प्रीतम के धाम में बासा पाऊँ। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि पिया के न मिलने से ऐसा लगता है कि मैं छुरी मार कर मर जाऊँ। ३-४।

॥ शब्द १० ॥

प्यारे बिना पलँग पै जाय, हाय क्या करूँ।
अली ये अबर की पीर, जबर सबर बिन मरूँ॥ १॥
पाटी पकड़ के सीस, रैन रोय के रही।
प्यारी पिया बेपीर, बात नेक ना कही॥ २॥
बीती बदन पै कहर लहर, लगन लाल की।
आह फाँसी फँसी मोह, जबर जक्त जाल की॥ ३॥
ज्यों पपी की प्यास, पीव रात भर रटी।
अरी स्वाँति बिन बुंद, भोर म्यान पौ फटी॥ ४॥

भटकी भौ भेष देख, नेक नजर में।
तुलसी मुर्सिद की मेहर, मूर अजर में॥ ५ ॥

(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द ११)

एक सखी अपनी दूसरी सखी से कहती है कि मेरा प्यारा, पलंग पर विराजमान नहीं है। मैं उसके बिना पलंग पर जा कर क्या करूँ? यह वियोग की पीर बहुत भारी है जिसे सह न सकने के कारण मैं मर जाऊँगी। १।

मैं पलंग की पाटी पर सिर रख कर रात भर रोती रही। हे मेरी प्यारी सहेली! मेरा पिया बड़ा कठोर है, मुझसे तनिक भी नहीं बोलता है। २।

मेरे तन पर मेरे प्यारे के प्रेम की लहर जो क़हर करने वाली है, बीती। ओह! जगत के प्रबल मोह ने मेरे गले में फाँसी डाल दी है। ३।

जैसे पपीहा स्वाँति बूंद के लिये तड़पता है उसी तरह मैं रात भर पीव को रटती रही लेकिन स्वाँति बूंद के बिना मिले ही यानी मालिक के दर्शन की अभिलाषा पूरी होए बिना, दिन निकल आया। ४।

ज़रा नज़र करने पर मुझे मालूम पड़ा कि मैं इस भवसागर में चौरासी के चक्कर में भटकती रही। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मुझे अजर लोक में जो मूल पद है, मुर्शिद यानी सतगुरू की मेहर प्राप्त हुई और मालिक से मिली। ५।

॥ शब्द ११ ॥

प्यारी पिया पीर खली, आधी रतियाँ ॥ टेक॥
सोवत समझ उठी अपने में, क्या कहुँ बरनि बिपतियाँ॥ १॥
चोली बंद बदन बिच खटकै, उमँग उमँग फटे छतियाँ॥ २॥
रोवत रैन चैन नहिं चित में, कूर करम की बतियाँ॥ ३॥
तुलसी देस ऐस बिन पिय के, सोच लिखूँ कित पतियाँ॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द १२)

विरहनी अपनी सहेली से कहती है कि हे मेरी प्यारी सहेली! मुझे आधी रात को पिया की पीर सताती है। मैं सोते में चौंक कर उठती हूँ। मैं अपनी विपता का क्या बखान करूँ? १।

मेरी चोली के बंद बदन में चुभते हैं और मेरी छाती शोक और आवेग में फटी जाती है। २।

मेरी सारी रात रोने में बीतती है। मेरे चित्त में चैन नहीं है। यह मेरे बुरे कर्मों का फल है। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि यदि ऐश और सुख का स्थान मेरे पिया का देश नहीं है तो मैं कहाँ चिट्ठी लिखूँ? ४।

॥ शब्द १२ ॥

अली अलबेली नार, पार पिया पै चली।
सुन्दर कीन्ह सिंगार, सार स्त्रुति से मिली॥ १॥
चढ़ी महल पर धाय, राह रबि कोट है।
जैसे प्रीत चकोर चंद, चित चोट है॥ २॥
अधर अटारी माहिं, लगन पिया से लगी।
जैसे डोर पतंग संग, रँग में पगी॥ ३॥
देखि पिया को रूप, भूप कोई ना लपै।
ज्यों भुवंग मणि, भाव भूमि भूमी दिपै॥ ४॥
तेज पुंज पिया देस, भेष कहो को लखै।
ऐसा अगम अनूप, जाय कहो को सकै॥ ५॥
मैं पिया की बलिहार, प्यार मोहि से कियौ।
दीन्ह पलँग सुख साज, काज हरषौ हियौ॥ ६॥
जाऊँ नित नित सैल, केल पति से करौं।
जिन की तिन को लाज, काज पति से सरौ॥ ७॥
तुलसी कहै विचार, सार सब से कही।
बिन सतगुरु नहिं पार, भिन्न कैसे भई॥ ८॥
(शब्दावली भाग पहला विरह और प्रेम शब्द १३)

एक अलबेली नारी सिंगार करके अपना सुन्दर रूप बनाकर भव सागर को पार करके सार शब्द यानी सत्तलोक के सत्त शब्द से मिली। १।

सुरत दौड़कर महल पर चढ़ी जिसकी राह में करोड़ों सूरजों का उजाला है। जैसे चकोर को चंद्रमा से मिलने की लगन होती है उसी तरह मेरे चित्त में अपने प्रीतम से मिलने की चोट साल रही है। २।

पिया के महल से जो अधर में है मेरी लगन लगी जैसे डोरी पतंग के साथ जुड़कर उसके रंग में रंग जाती है। ३।

पिया का रूप देखा जो ऐसा मनोहर है जैसे साँप की मणि की ज्योति जो भूमि पर चारों ओर चमक रही हो। कोई राजा भी उसका मुकाबला नहीं कर सकता। ४।

मेरे प्रीतम का देश महा प्रकाशवान और तेजोमय है। उसे भेख कैसे लख यानी देख सकते हैं? वह देश ऐसा अगम और अनूप है, वहाँ कौन जा सकता है? ५।

मैं अपने प्रीतम पर बलिहार जाती हूँ कि मुझे प्यार किया। उसने कृपा कर अपना संग दिया और मेरा काज पूरा करके मेरे दिल को खुश कर दिया। ६।

मैं नित्त अपने पिया से मिलकर बिलास करती हूँ और अपनी सुरत को उस धाम में पहुँचाती हूँ। जो मालिक के आसरे हैं उनकी मालिक को लाज है और उनके सब काम मालिक पूरे करेंगे। ७।

तुलसी साहब विचार कर यह सार भेद सबसे कहते हैं कि बिना सतगुरु की मदद के कोई इस भवसागर के पार नहीं जा सकता। और किसी तरह, कोई कैसे तर सकता है? । ८।

॥ शब्द १३ ॥

ब्याकुल बिरह दिवानी, झड़े नित नैनन पानी ॥ टेक ॥
हर दम पीर पिया की खटके, सुध बुध बदन हिरानी ॥ १ ॥
होश हवास नहीं कुछ तन में, बेदम जीव भुलानी ॥ २ ॥
बहु तरंग चित चेतन नाहीं, मन मुरदे की बानी ॥ ३ ॥
नाड़ी बैद बिथा नहिं जाने, क्यों औषध दे आनी ॥ ४ ॥
हिय में दाग जिगर के अंदर, क्या कहुँ दरद बखानी ॥ ५ ॥

सतगुरु बैद बिथा पहिचानें, बूटी है उनकी जानी॥ ६॥
तुलसी यह रोग रोगिया बूझे, जिन को पीर पिरानी॥ ७॥
(शब्दावली भाग दूसरा लटका ६)

विरहनी कहती है कि मैं अपने पिया की प्रीत के वियोग में विरह दीवानी हो गई हूँ। मैं व्याकुल होकर रात दिन रोती रहती हूँ। प्रीतम की याद प्रत्येक पल मेरे हृदय में खटकती रहती है। मुझे न तन की सुध है न मन की सुध है, यानी किसी तरह का कोई होश हवास नहीं है और सब कुछ भूल चुकी हूँ। मेरे मन में अनेक तरंगें उठती हैं और चित्त में चैतन्यता नहीं रही और मन मुर्दे के समान हो गया है। १-३।

मेरी व्यथा, वैद्य नाड़ी देखकर नहीं बता सकता है, तो फिर वह मेरी विपदा यानी रोग दूर करने की उचित औषधि भी कैसे दे सकता है? मेरे तो हृदय में घाव है, जिसमें भंयकर टीस उठती रहती है, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकती हूँ। ४-५।

तुलसी साहब कहते हैं कि मेरी व्यथा के जानकार तो सतगुरु हैं और वे उसकी दवा भी जानते हैं। यह रोग केवल वही व्यक्ति समझता है, जिसके हृदय में भारी पीड़ा व दर्द हो। ६-७।

॥ शब्द १४ ॥

प्रीतम प्रीत पिरानी, दरद कोइ बिरले जानी॥ टेक॥
डसत भुवंग चढ़त सनननन, जहर लहर लहरानी॥ १॥
घनन घनन घन्नाटी आवे, भावे अन्न न पानी॥ २॥
भँवर चक्र की उठत घुमेरें, फिरे दसो दिस आनी॥ ३॥
अंदर हाल बिहाल हलावत, दुरगम प्रीत निभानी॥ ४॥
आशिक इश्क़-इश्क़ आशिक से, करना मौत निशानी॥ ५॥
मुरदा होकर खाक मिले जब, तब पट अमर लिखानी॥ ६॥
पिया को रोग सोग तन मन में, सतगुरु सुध अलगानी॥ ७॥

तुलसी यह मारग मुश्किल का, धड़ बिन सीस बिकानी ॥ ८ ॥

(शब्दावली भाग दूसरा लटका ७)

तुलसी साहब फरमाते हैं कि प्रीतम से प्रीत करना अत्यन्त कष्टदायी है। इसकी पीड़ा कोई बिरला ही जानता है। जैसे भंयकर सर्प के डसने पर उसका जहर बहुत तेजी से तन में चढ़ता है और उसकी तरंगें उठती हैं, चक्कर आते हैं और अन्न व पानी, कुछ नहीं भाता है और जैसे महासागर में, भवँर चक्र की भयानक लहरें सब दिशाओं से उठती हैं, तब जो दशा इनमें फँसे हुए जीव की होती है, वही दशा प्रेमी की उसके अंतर में होती रहती है। इसलिये प्रीतम से प्रीत निभाना बहुत कठिन है। १-३।

प्रीतम से सच्ची प्रीत करना गोया मौत की निशानी है। जब मुरदा होकर खाक में मिलेगा, यानी संसार व संसार के सुखों व बंधनों से विरक्त और विमुख होकर अपने को सतगुरु के चरनों में सम्पूर्ण समर्पित करेगा, तब अमर पट्टा लिखा जावेगा यानी सत्तलोक में जाने का परवाना मिलेगा। ४-६।

तुलसी साहब कहते हैं कि प्रीतम से वियोग का रोग और उसके विरह की वेदना और सतगुरु द्वारा सुध नहीं लेना, ये सब बातें दुखदायी हैं। यह बिना शीश के धड़ को बेचने के समान कठिन व मुश्किल है। तन से सिर अलग हो जाने पर धड़ व्यर्थ व बेकार हो जाता है और उसकी कुछ कीमत नहीं रह जाती है अर्थात् मन का सम्पूर्ण आपा खोना पड़ेगा। ७-८।

॥ शब्द १५ ॥

पिया बिन बिरहिनि बावरी, दइ दुख दियो री कठोर।
मोरि खबर सुधि ना लई, जों बिन चन्द चकोर ॥ १ ॥
चकवा चकई बिछोह की, बरनों कौन बयान।
नदिया पार चकवा रहै, चकई वार बिलाप ॥ २ ॥
रैन बिलग सुनती हती, मोरे हिये बरतत आज।
बिलग पिया से मरिबो भलो, यह दुख सहो न जात ॥ ३ ॥
सब सिंगार फीका लगै, पिया बिन कछु न सुहाय।

हाय हाय तड़फत रहूँ, कहो केहि जाय सुनाय॥ ४॥
लोग बटाऊ री विदेश के, नहिं पर पीर पिछान।
चरन बिना चहुँ दिश फिरी, नहिं कछु जियरा जुड़ान॥ ५॥
कल्प कल्प कलपत भये, जुग जुग जोवत बाट।
कोइ री सुहागिन ना मिली, पूछों पिया घर घाट॥ ६॥
नर तन नगर डगर मिलै, कहैं सब संत सुजान।
फिरि पशु पंछिन में नहीं, जड़वत जीव भुलान॥ ७॥
बिन सतगुरु व्याकुल हिये, जियरा धरत न धीर।
पीर पिया बिन को हरै, तुलसी गगन गंभीर॥ ८॥

(शब्दावली भाग पहला सावन ६)

पिया के बिना विरहिन बावरी हो गई। विरहनी कहती है कि विधाता ने मुझे वियोग का कठोर दुख दिया है। मेरे पिया ने मेरी खोज खबर नहीं ली और मैं पिया के बिना ऐसी तड़प रही हूँ जैसे चकोर बिना चंद्रमा के। १।

चकवा और चकवी के रैन बिछोह का क्या वर्णन करूँ? चकवा तो नदी के पार रहता है और चकवी इस ओर विलाप करती रहती है। २।

चकवा और चकवी के रात्रि वियोग का हाल सुना था। वही हालत आज मेरे ऊपर बीत रही है। पिया के वियोग के दुख से तो मरना भला है। मैं इस दुख और रंज को सह नहीं सकती। ३।

पिया के बिना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। सब सिंगार फीका लगता है। मैं वियोग के दुख में तड़प रही हूँ। पर कौन मेरी इस दशा को पिया से कहे? ४।

यहाँ सब मुसाफ़िर विदेशी हैं। वह दूसरों के विरह के दुख को नहीं जान सकते यानी एक दूसरे के दुख तकलीफ से अनभिज्ञ हैं। अपने प्रीतम के चरनों के बिना मैं चारों ओर भटक रही हूँ पर कहीं भी मुझे चैन नहीं मिलता है। ५।

पिया के वियोग के दुख में कई कल्प व्यतीत हो गये और उनकी बाट

देखते देखते कई जुग चले गये। लेकिन मुझे कोई पिया से मिली हुई सुहागिन नहीं मिली जिससे मैं अपने पिया का पता ठिकाना दरयाफ्त करूँ। ६।

सब सुजान संतों ने कहा है कि पिया से मिलने का मार्ग नर तन में ही मिल सकता है। अगर यह मार्ग मिल जाय तो फिर पशु पंछी की योनि और जड़खान में जाना नहीं होगा। ७।

बिना सतगुरु के हृदय व्याकुल रहता है और हृदय में धीरज नहीं आता। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि पिया के बिना, जो धीर गम्भीर गगन के बासी हैं, कौन मेरी पीर को हरेगा। ८।

॥ शब्द १६ ॥

महबूब से मिलाप, आप अरज यह करूँ॥ टेक॥
हर दम कदम के पास, सीस चरन पै धरूँ।
बिन बिन दिदार, यार प्यार पेच बिन मरूँ॥ १॥
हर वक्त जक्त बीच, जुलम जार में जरूँ।
मेरा उबार बार बार, कदम से तरूँ॥ २॥
होवे रहिम की रमज़, समझ सुरति को भरूँ।
सतगुरु दयाल हुकम, जोर जुलम से लरूँ॥ ३॥
तेरी तवक्के ही में, बे-फहम सी फिरूँ।
ताकत बिना हवास होस, तुलसी मैं मरूँ ॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला पस्तो ६)

विरहनी कहती हैं कि जब मुझे प्रीतम मिलें तो मैं उनसे यह अर्ज़ करूँगी कि मैं हर दम आपके चरनों में रहना चाहती हूँ, मेरा सीस आपके चरनों में रहे। विरहनी पुन: कहती हैं कि मैं आपके दर्शन और प्यार के बिना जीवित ही मर जाऊँगी। १।

मैं यहाँ इस संसार में हर समय काल का जुल्म सह रही हूँ। बार-बार आपके चरनों में कुरबान होने में ही मेरा उबार है। २।

जब दयाल की दया हो तो मेरी सुरत को समझ आवे। अगर सतगुरु दयाल हुक्म देवें तो मैं काल के ज़ोर और जुल्म से लड़ूँ। ३।

हे मालिक ! तेरी आस में ही मैं बुद्धिहीन जैसी घूम रही हूँ। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि विरहिन सुरत विरह से, बिना होश और समझ के मर रही है। ४।

॥ शब्द १७ ॥

पिय बिन सावन सुख नहीं, हिये बिच उठत हिलोर।
बोल वचन भावै नहीं, तन मन तड़पि अतोल॥ १ ॥
पिय बिन बिरहन बावरी, जिय जस कसकत हूल।
सूल उठे पति पीर की, धन सम्पति सुख धूल॥ २ ॥
इत बैरी बदरा भये, गरजि घुमरि घन घोर।
घुमरि घुमरि घर द्वार में, कूकै दादुर मोर॥ ३ ॥
बीज कड़क कस कस करूँ, सुधि बुधि रहत न हाथ।
साथ मिलै पिया पंथ को, मारग चलौं दिन रात॥ ४ ॥
सुरति निरति डोरी करूं, मन मत खंभ गड़ाय।
लै की लहर ऊपर मिली, झूली सुरति चढ़ाय॥ ५ ॥
यै सावन तुलसी कहै, खोजो सतसंग माहिं।
गाइ गवन सज्जन करै, बूझे सत मत पाय॥ ६ ॥

(शब्दावली भाग पहला सावन शब्द ३)

विरहनी कहती है कि पिया के बिना सावन के सुख और आनन्द का अनुभव नहीं होता है। हृदय में रंज की लहर उठती है। कहना सुनना कुछ नहीं सुहाता और तन मन में बड़ी बेकली है। १।

पिया के बिना बिरहिन सुरत बावरी हो गई है और जिय में शूल की तरह कसक है। पति के वियोग की वेदना उठती है और धन सम्पत्ति इत्यादि सुख धूल के समान तुच्छ लगते हैं। २।

बादल जो कि घुमड़ कर गरजते हैं, बैरी की तरह लगते हैं। मेंढ़क और मोर का जहाँ तहाँ बोलना पीड़ादायक लगता है। ३।

बिजली चमक रही है और बादल गरज रहे हैं, उनका क्या वर्णन करुँ? इनके कारण मेरी सुधि बुधि जाती रही है। अगर मुझे कोई साथी (संत सतगुरु) मिल जावें तो मैं रात दिन उनके मार्ग पर चलूँ। ४।

सुरत और निरत की डोरी बनाऊँ। मन और सुमति के खंभ गड़ाऊँ। प्रीतम से आई हुई लहर मुझे ऊपर मिली जहाँ सुरत को चढ़ा कर मैं झूली। ५।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सतसंग में जाकर ऐसे सावन का खोज करो यानी सतगुरु की तलाश करो। कोई सज्जन ही सुमति के मार्ग पर चलता है और सत्त मत को पाकर ठीक समझ बूझ आती है। ६।

॥ शब्द १८ ॥

प्रीतम प्रीति लगन मन फँसियां ॥ टेक॥
निरखत नैन चैन चितवन में, दीप दृगन चढ़ चसियां ॥ १॥
पल पल लगन लगी वोहि मारग, सुरति सिखर पर बसियां॥ २॥
दृढ़ करि डोर पोढ़ पद परखी, लखि गुरू गगन परसियां॥ ३॥
तुलसी तलब तलासी पावे, धार अधर धर धसियां॥ ४॥

(शब्दावली भाग दूसरा टप्पा २९)

विरहनी कहती है कि मेरा मन प्रीतम की प्रीत और लगन में फँसा है। जब मैं अपने प्रीतम के नैनों को ताकती हूँ तब मेरे चित्त को चैन मिलता है और मेरे अंतर के नैन ऊपर चढ़कर दीपक की तरह चमकते हैं। १।

मेरी लगन हर वक्त पिया के मार्ग पर लग रही है और मेरी सुरत चढ़ कर शिखर पर बसती है। २।

मैंने सुरत की डोर से अपने गुरू के चरनों को दृढ़ करके पकड़ा है और गुरू के दर्शन करके गगन पर पहुँची। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि कोई खोजी ही पिया के घर की खबर पाता है और अधर की धार को पकड़ कर अंतर में धसता है। ४।

॥ शब्द १९ ॥

मोरे पिय छाँड़ि रे बिदेस में, सइयाँ सँग भयोरी बिछोह ॥ टेक ॥
बैरन नींद न आवही, सखी सुख भोर न होय।
रोय रैन अँखियां बहीं, सखी भरि स्वांस उसास॥ १॥
बिरह लहर नागिन डसै, बिन सइयाँ तड़प उचाट।
चमक उठै जस बीजुली, छतियन धड़क समात ॥ २॥
प्रबल अगिन हिय में उठे, एरी धूवां प्रगट न होय।
सोई अकेली सेज पै, पूरब लिख्यौ री बिजोग॥ ३॥
खबर खोज का से कहूँ, पतियां लिखूं केहि देश।
अंग भभूत रमाइहौं, करिहौं मैं जोगिनि भेष॥ ४॥
सतगुरु सोधि सरने रहौं, गहौं पिय डगर निवास।
मोर मनोरथ सुरति से, तुलसी मिलन मिलाप ॥ ५॥

(शब्दावली भाग पहला सावन शब्द ५)

विरहनी कहती है कि मेरे पिया ने मुझे विदेश यानी परदेश में छोड़ दिया है। मेरे सइयाँ से मेरा वियोग हो गया है। बैरिन नींद भी मुझे नहीं आती। हे सखी! मुझे सुख की भोर यानी सुख का सबेरा नहीं प्राप्त होता यानि संत समागम अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। रात रो रो कर बीती, आँखें बहने लगी हैं और मैं आहें भरती हूँ। १।

विरह रूपी नागिन ने मुझे डस लिया है। बिना पिया के मैं गमगीन हूँ और तड़प रही हूँ। बिजली की तरह मैं तीव्र वेदना भोग रही हूँ। मेरी छाती धड़क रही है। २।

मेरे हिये में प्रचंड अग्नि जल रही है, अगर्चे धुवाँ दिखलाई नहीं देता। मैं पिया के बिना पलंग पर आकर अकेली हूँ। मालूम होता है कि विधाता ने पहले से ही यह वियोग मेरे ललाट में लिख दिया है। ३।

मैं अपने पिया का पता ठिकाना कहाँ से प्राप्त करूँ और कौन से देश को उनको चिट्ठी भेजूँ? मैं अपने तन पर राख मलूंगी और जोगिन का भेष बनाऊंगी। ४।

मैं सतगुरु को खोजकर उनकी सरन पड़ूँगी और पिया के महल के रास्ते चलूँगी। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मेरा मनोरथ सुरत से है जो पिया से मिलना चाहती है। ५।

॥ शब्द २० ॥

लाज कहा कीजै री, घूंघट खोलो आज ॥ टेक॥
लाजहि लाज अकाज भयो है, सुन्दर यह तन साज॥ १॥
सब तन अंग निहंग निहारे, परदे प्रगट बिराज॥ २॥
स्वामी सब अंतर गति जाने, व्याकुल सकल समाज॥ ३॥
तुलसी तन मन बदन सम्हारो, सोइ साहब सिरताज॥ ४॥

(शब्दावली भाग दूसरा टप्पा ३६)

हे सखि! लाज क्यों करती हो? घूंघट खोलो। लाज करने से ही तो काम बिगड़ा है। इस तन को सजा कर सुन्दर बनाओ। १।

तुम्हारा सब शरीर बे-पर्दे रहना चाहिये। सब पर्दे उतर कर असली सुन्दर रूप अर्थात् जब सब कपट यानि काया के पट हट जायेंगे तब मालिक का दीदार मिलेगा। २।

स्वामी सब जानते हैं कि अंतर में क्या हो रहा है। संसार के सब लोग व्याकुल हैं। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि वही साहब सबका स्वामी है और वही तन मन की रक्षा कर सकता है। ४।

॥ शब्द २१ ॥

बिसरी अधर घर प्यारी रे ॥ टेक॥
मैं चित चोर मोर तन मोटा, खोट खोट धर धारी रे॥ १॥

अंजन अलख पलक नहिं दीन्हा, छाई अधम अँधियारी रे॥ २॥
संगत साध आदि नहिं चीन्हा, उरझी भेष भिषारी रे॥ ३॥
तुलसी तीर गुरन लखवाई, जब देखी उजियारी रे॥ ४॥
(शब्दावली भाग दूसरा ठुमरी २५)

विरहनी कहती है कि मैं अपने प्यारे घर को जो अधर में है, भूल गई हूँ। मेरा चित्त चोर है और मन मोटा है व खोट से भरा हुआ है। १।

मैंने कभी छिन भर के लिए अलख का अंजन नहीं लगाया बल्कि मेरे अंदर अधम अंधेरा छा रहा है। २।

मैंने अच्छी संगत और साध को नहीं चीन्हा और पहचाना और मैं भेख भिखारियों के संग में उलझ गया हूँ। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मेरे गुरू ने किनारा यानी मंजिल का लखाव कराया। जब मैंने उसे देखा यानी दर्शन किये तो मेरे अंदर में उजियारा हो गया। ४।

॥ शब्द २२ ॥

बिपति कासे गाऊंरी माई, जगत जाल दुखदाई ॥ टेक॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवे, जम दारून जग खाई॥ १॥
पिय के ऐन बिन चैन न आवे, हर दम विरह सताई ॥ २॥
ना दिन से पिय सुधि बिसराई, भटक भटक दुख पाई॥ ३॥
तुलसीदास स्वांस सुख नाहीं, पिय बिन पीर सताई॥ ४॥
(शब्दावली भाग पहला बिहाग ६०)

एक सखि दूसरी सखि से कहती है कि हे सखि! मैं अपनी विपत्ति का हाल किससे कहूँ? यह ज़गत जाल बड़ा दुखदाई है। मुझे रात दिन नींद नहीं आती। इस दुष्ट जम ने सब जग को खाया है। १।

पिया के नेत्रों को ताके बिना यानी पिया के दर्शनों के बिना मुझे चैन नहीं है और हर दम विरह सताती है। २।

जिस दिन से मैंने अपने पिया की याद बिसारी है, उस दिन से मैं इधर उधर भटक कर हैरान हो रही हूँ। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि पिया के बिना एक स्वाँस भी सुख नहीं है और निरन्तर पीर सताती रहती है। ४।

॥ शब्द २३ ॥

आली री हिय हर्ष न आवै, ज्यों काले की लहर सतावै ॥ टेक ॥
तन मन सुध बुध सब बिसराई, अन पानी नहिं भावै ॥ १ ॥
काह करूं कित जाऊँ सखीरी, पिय बिन नींद न आवै ॥ २ ॥
है कोई सतगुरु पिय को लखावै, तब पिया पीर बुझावै ॥ ३ ॥
तुलसी तड़फ तड़फ तन सूखे, मन बिच थिर नहिं आवै ॥ ४ ॥
(शब्दावली भाग पहला बिहाग ६१)

हे सखी! मेरे हिये में हर्ष नहीं आता। जैसे साँप के जहर की लहर चढ़ती है, इस तरह मुझे विरह सताती है। तन मन की सब सुधि बिसर गई है। मुझे अन्न और पानी भी नहीं भाता। १।

हे सखी! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मुझे पिया के बिना नींद नहीं आती। २।

क्या कोई सतगुरु विराजमान हैं जो पिया को लखावें? अगर मुझे पिया का भेद मिले तो मेरी पीर शांत हो। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि पिया के वियोग की तड़प में मेरा तन सूख गया है और मन बेचैन है। ४।

॥ शब्द २४ ॥

कछु ना सुहावै मोको, पिया के बियोगी ॥ टेक ॥
बिरह की बेली हेली फैली चहुँ दिसको, दरद दुखी जस रोगी ॥ १ ॥
अस री हिलोर मोर मन आवै, तन तज अब न जियोंगी ॥ २ ॥
हार सिंगार सखि नीक नहिं लागै, माहुर घोर पियोंगी ॥ ३ ॥
रैन न चैन दिवस दुख बीते, आवत नींद न औंगी ॥ ४ ॥
तुलसी तलब मिटे सतगुर से, चित धर चरन छुओंगी ॥ ५ ॥
(शब्दावली भाग दूसरा राग सोरठा १६)

विरहनी कहती है कि पिया के वियोग में मुझे कुछ नहीं सुहाता। विरह रूपी बेल ने अपना जाल फैलाकर चारों ओर से मुझे घेर लिया है और मैं रोगी की तरह दर्द में दुखी हूँ। १।

मेरे दिल में ऐसा विचार आता है कि अब अपने तन को छोड़ दूँ और न जिऊँ। २।

हे सखी! मुझे हार पहनना और सिंगार करना कुछ नहीं सुहाता। मैं अब माहुर (ज़हर) घोलकर पिऊँगी। ३।

मुझे रात को चैन नहीं है और दिन भी दुख में बीतता है। मुझे नींद नहीं आती बल्कि ऊँघ भी नहीं आती। ४।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सतगुरु के चरनों को चित्त लगाकर स्पर्श करने से मेरी अभिलाषा पूरी होगी। ५।

॥ शब्द २५ ॥

सतगुरु मोरी बाँह गहिया, चढ़ि जाऊँ अधर की अटारी अटा ॥ टेक ॥
करूँ फरियाद दाद सब सुनिहैं, जाय पडूँगी चरन गहि पइयाँ।
मोरी सहाय बनाय करेंगे, मार निकारे बिकार करइया।
अमल अलख जब जोर घटा ॥ १ ॥
जब शरमाय हाय कर तोबा, तुम्हरी डगर हम नाहिं रूकइया।
अब तकसीर माफ मोरी कीजे, तुम सतगुरु के हो पास जवइया।
हुकम जबर के अबर फटा ॥ २ ॥
धाय चली सतगुरु को सँध ले, अलग भये मारग अटकइया।
सब ही उपाध आदि की छूटी, लूटे सभी ये बाट चलइया।
मैं सुमिरन कर नाम रटा ॥ ३ ॥
गगन गुफा में धसीरी बसी ज़ब, आगे मिले मोहिं गैल बतइया।
अंग लगाय संग कर लीन्ही, अगम अभय पद पार पठइया।
जब तुलसी हिय हेर हटा ॥ ४ ॥

(शब्दावली भाग दूसरा होली दीपचंदी शब्द ४)

विरहनी खुश होकर कहती हैं कि अब सतगुरु ने मेरी बाँह थाम ली है, इसलिये मैं उनके लोक में महल के सर्वोच्च खंड में चढ़ जाऊँगी। मैं सतगुरु की सरन ग्रहण करके उनके पवित्र चरनों में जा पड़ूँगी और वे मेरी सब पुकार व प्रार्थना सुन कर मेरी सहायता करेंगे और मेरे समस्त विकार नष्ट कर देंगे। इस तरह काल के हुक्म का असर कम हो जायेगा। १।

सतगुरु के पास जाकर और लजा कर, मैं हाय तौबा यानी अपने पापों का घोर प्रायश्चित करूँगी और उनके द्वारा बताये गये मार्ग से विचलित नहीं होऊँगी और अपने गुनाहों के लिये माफी माँगूगी, तभी काल के सख़्त व न मानने योग्य हुक्म का नाश होगा। २॥

जब मैं सतगुरु का पता ठिकाना लेकर अंतर में दौड़कर चली तो मार्ग रोकने वाला काल, अपने आप ही दूर हट गया और मेरी समस्त आधि, व्याधि और उपाधि मिट गई, यानी तन मन चरनों में सम्पूर्ण समर्पित होने पर ही, अमर पट्टा लिखा जावेगा यानी सत्तलोक में जाने का परवाना मिलेगा। ३।

तुलसी साहब कहते हैं कि प्रीतम से वियोग का रोग और उसके विरह की वेदना और सतगुरु द्वारा सुध नहीं लेना, ये सब बातें मुश्किल व दुखदायी हैं। यह बिना शीश के धड़ को बेचने के समान कठिन व मुश्किल है। तन से सिर अलग हो जाने पर धड़ व्यर्थ व बेकार हो जाता है और उसकी कुछ कीमत नहीं रह जाती है। ४।

चितावनी

॥ शब्द २६॥

दिन चार है बसेरा, जग में न कोइ तेरा।
सब ही बटाऊ लोग हैं, उठ जायेंगे सबेरा॥ १॥
अपनी करो फ़िकर, चलने के जो ज़िकर।
रहने का यहाँ न काम है, फिर जा करो न फेरा॥ २॥
तन में पवन बसेई, जावे हवा नस देही।
टुक जीवन के कारने, दुख सहत क्यों घनेरा॥ ३॥

सुख देख क्यों भुलाना, कुछ दिन रहे पै जाना।
जैसे मुसाफिर रात रहकर, जात है सबेरा॥ ४॥
क्या सोवता पड़ा, जम द्वार पै खड़ा।
तुलसी तयारी भोर कर, फिर रात को अँधेरा ॥ ५॥

(शब्दावली भाग पहला रेखता २०)

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि हे जीव! तेरा निवास इस संसार में चन्द दिनों का है और यहाँ तेरा कोई हितैषी और सच्चा मित्र नहीं है। यहाँ पर सभी लोग मुसाफिर के समान हैं, जो सुबह होते ही सराय छोड़ कर चल देते हैं। १।

अपने जीव के कल्याण की चिन्ता तू स्वयं ही कर और चलने से पहले नाम का सुमिरन कर ले, तो जाकर वापस नहीं लौटेगा, यानी जन्म मरन के चक्कर से छुटकारा मिल जावेगा और इस संसार में भी नहीं रहना पड़ेगा। २।

तन में जब तक प्राण हैं, तब तक तो सब ठीक चलता है किन्तु प्राण निकलते ही तन का विनाश हो जाता है। इसलिये थोड़े दिन जीने के लिये, काल के हाथ से दुख क्यों सहता है? ३।

इस संसार के सुख व भोग बिलास देखकर तू क्यों भूल गया है कि चन्द दिनों के बाद ही तुझे यहाँ से जाना है, जैसे मुसाफिर रात भर सराय में रहकर सुबह होते ही चल देता है। ४।

तू क्यों सोया हुआ है यानी क्यों अचेत और गाफिल है, तेरे द्वार पर यमराज के दूत खड़े हैं यानी मौत तुझे लेने आ गई है। जीव को चेताते हुए तुलसी साहब कहते हैं कि जल्दी से चलने की तैयारी कर, सुबह होने वाली है, अन्यथा फिर रात हो जायेगी और अन्धकार छा जावेगा, यानी मृत्यु को प्राप्त होने पर दुर्लभ नर देही बेकार हो जायेगी। ५।

॥ शब्द २७ ॥

कोई नहिं अपना रे अपना, अरे यह जक्त रैन का सुपना ॥ १॥
मिट्टी में मिट्टी मिल जैहै, पै है करम कलपना॥ २॥
काया बिनस खबर नहिं दम की, जम की डगर डरपना॥ ३॥

बन्धन जाल जुगन जम दैहैं, करिहैं काल थरपना ॥ ४ ॥
छूटे जब सतगुरु चरनन पर, तन मन सीस अरपना ॥ ५ ॥
लागी रहे बिरह संतन की, ज्यों जल मीन तड़पना ॥ ६ ॥
सुन्दर सुख सन्मुख सूरज के, सूरति अजपा जपना ॥ ७ ॥
मारग मकर महल दरपन में, मन में माल परखना ॥ ८ ॥
तुलसी मंजिल मूल कहाँ सूझे, बूझे एक हरफ़ ना ॥ ९ ॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी ३७)

इस संसार में तुम्हारा कोई सच्चा हितैषी व साथी नहीं है, और यह संसार रात के स्वप्न के समान मिथ्या व नाशमान है। जो पाप कर्म तुमने किये हैं, उनके लिये विलाप करके, तुम दुखी होवोगे और अंत में तुम्हारा तन भी मिट्टी में मिल जावेगा। १-२।

किस पल इस तन का नाश हो जावेगा यानी मृत्यु कब आ जायेगी, कोई नहीं जानता है और मरने के बाद, काल के मार्ग पर जाने में भारी भय है, क्योंकि वह जीव को अपने जाल में फँसाकर और युगों युगों तक बाँध कर आवागमन में रखता है और अपनी पूजा करवाता है। ३-४।

काल के जाल से व आवागमन से जीव का छुटकारा तभी हो सकता है जब वह अपना तन मन और शीश सतगुरु के पवित्र चरनों में अर्पित कर दें और जैसे जल के बिना मीन तड़पती है, वैसे ही यह भी संतों के दर्शन के बिना, बिरह में तड़पता रहता है। ५-६।

इसकी सुरत निर्मल सुख देने वाले सतगुरु के आगे अजपा जाप करती रहे यानी नाम का सुमिरन अंतर में निरन्तर करती रहे और यह आइने के समान स्वच्छ व निर्मल, मालिक के महल को जाने वाले मार्ग और नाम रूपी दौलत को अपने घट में परखता रहे। ७-८।

तुलसी साहब कहते हैं कि जो परमार्थ का एक अक्षर भी नहीं जानता है, उसे मालिक का धुर धाम कैसे दिखाई दे सकता है, यानि कैसे उसको दीदार नसीब होगा ? ९।

॥ शब्द २८ ॥

देख ले जक्त में लख कोई अमर है।
मरन और जिवन बिच जीव सारे॥ १॥
अंड और पिंड चर अचर को निरखि ले।
काल ने घेर कर पकड़ मारे॥ २॥
देख दिन चार संसार की कार है।
पार बिन सार का भेद हारे॥ ३॥
दास तुलसी कहै बैठ सतसंग में।
माया और मोह कर दूर सारे॥ ४॥
(शब्दावली भाग पहला रेखता २५)

जीवों को चेताते हुए तुलसी साहब कहते हैं कि तुम स्वयं इस बात को देख लो कि इस संसार में कोई अमर नहीं है। सब जीव जन्म मरन के चक्कर में पड़े हैं। १।

पिंड अंड चर अचर सब में देख लो। तुम्हें मालूम पड़ेगा कि काल सबको घेर कर और पकड़ कर मार रहा है। २।

देख लो संसार में चार दिनों का रहना है। अगर अपने जीवन काल में भवसागर के पार न गए तो सार यानी तत्व का भेद मालूम नहीं पड़ेगा। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सतसंग में जाकर बैठो तो माया और मोह सब मन से दूर हो जावेंगे। ४।

॥ शब्द २९ ॥

देखो दृष्ट पसार सार कुछ जग में नाहीं।
दिना चार का रंग संग नहिं जावे भाई॥ १॥
धन संपत परिवार काम एको नहिं आवे।
अरे हाँरे तुलसी दीपक संग।
पतंग प्रान छिन में तज जावे॥ २॥
(शब्दावली भाग पहला ककहरा चौपाई १६)

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि हे भाई! तुम सर्वत्र अपनी दृष्टि फैलाकर देख लो कि इस संसार में कुछ भी सार व सत्य नहीं हैं, यानी यहाँ सब मिथ्या व नाशमान है। यहाँ के राग रंग यानी सुख भी चन्द दिनों के हैं और मृत्यु होने पर यहाँ की कोई चीज साथ नहीं जाती है। धन सम्पत्ति, कुटुम्ब परिवार और कोई भी काम नहीं आयेगा। १।

जैसे पतंगा दीपक का संग करके एक क्षण में प्राण तज कर चला जाता है और दीपक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है, वैसे ही परिवार के जन व अन्य लोग भी तेरी कोई सहायता नहीं कर पायेंगे और तू मृत्यु को प्राप्त हो जावेगा। २।

॥ शब्द ३० ॥

दृष्ट पसार के देख तुही, जग माहिं रह्यो कोई बूझ अमाना ॥ १ ॥
पंडो भभीषन भीम बली, गये खोज गली केहि राह समाना ॥ २ ॥
रावन लंक पती पै हतो, सो रती भर संग न देख निदाना ॥ ३ ॥
तू केहि लेखे में देख कहूँ तुलसी, सतसंग से होत न हाना ॥ ४ ॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी सवैया १०)

तुलसी साहब कहते हैं कि हे जीव! तू ख़ुद ही अपनी दृष्टि सर्वत्र फैलाकर देख कि इस संसार में किसी का गर्व हमेशा नहीं रहा है। पाँडव, विभीषण और भीम जैसे बलवान भी चले गये और किस राह या गली से गये, इसकी खोज कोई नहीं कर सका। १।

लंका का राजा रावण भी मारा गया और अंत समय में किसी ने जरा भी साथ नहीं दिया। २।

फिर तेरी क्या औकात और हैसियत है। इसलिये मैं तुझे कहता हूँ कि ये सब बातें देख ले और समझ ले और सतगुरु का सतसंग कर क्योंकि सतसंग करने से तुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकेगा। ३-४।

॥ शब्द ३१ ॥

इक दिन जाना बेजाना, अरे टुक़ वा की बता चलाना ॥ टेक ॥

सुख संपत यह सब जग लूटै, छूटे माल ख़जाना ॥ १ ॥
धन माया तेरी तू बिचारे, मारै मौत निशाना ॥ २ ॥
माल मुलक हाथी और घोड़े, छोड़े साज समाना ॥ ३ ॥
तलबी हुकम तगादा लावै, खावै काल निदाना ॥ ४ ॥
सब सुन्दर तज महल अटारी, नारी नेह भुलाना ॥ ५ ॥
चलत भार कुछ संग न लीन्हा, कीन्हा हंस पयाना ॥ ६ ॥
झूँठी अंग उल्फत मन मूढ़ा, बूड़ा जनम जहाना ॥ ७ ॥
तुलसी तुच्छ तनक तन स्वाँसा, आस अनन्त बँधाना ॥ ८ ॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी शब्द ३६)

तुलसी साहब बार-बार जीवों को चेताकर कहते हैं कि हे नर! तुझे एक दिन इस संसार को छोड़कर जाना है और अवश्य जाना है। इसलिये इस विषय पर भी कुछ बात करनी चाहिये यानी इस पर भी विचार करना चाहिये। इस संसार में धन सम्पत्ति और माल खजाना तूने लूट कर इकट्ठे किये और जो सुख प्राप्त किया, वे सब अंत समय में यहीं रह जावेंगे। जिस पत्नी और माया के सामान को तू अपना समझता है, मरने पर वे सब यहीं रह जावेंगे। १-२।

राज और राजसी ठाठ बाट, हाथी और घोड़े व अन्य सब साज सामान यहीं छूट जावेगा और जब बुलाने का हुक्म आवेगा तो काल जल्दी से तुझे यहाँ से ले जावेगा और आखिर में मार कर खा जावेगा। ३-४।

सब सुन्दर महल व अटारी और पत्नी का प्यार भूल कर तू चला जावेगा और आत्मा तन छोड़कर विदा हो जावेगी। ५-६।

पुनः स्पष्ट करते हुए तुलसी साहब कहते हैं कि यहाँ का प्रेम सब झूठा और कल्पित है और तेरा मूर्ख मन उसमें अटका व फँसा हुआ है, जिससे तेरा नर जन्म इस संसार में डूब गया यानी व्यर्थ चला गया। तेरे तन में स्वाँस तो गिनती की है और तू ने अनन्त और असंख्य आशाएँ व कामनाऐं बाँध रखी हैं, यानी तू अपार चाहों से बँधा हुआ है। ७-८।

॥ शब्द ३२ ॥

फूले फूले फिरें देख धन धाम बड़ाई।
तन फुलेल और तेल चाम को चुपड़ें भाई॥ १॥
दिना चार का खेल मिले फिर खाक में।
अरे हाँरे तुलसी पकड़ फरिश्ते करें सलाई आँख में॥ २॥

(शब्दावली भाग पहला ककहरा चौपाई २०)

जीवों को भाई सम्बोधित करते हुए तुलसी साहब कहते हैं कि हे भाई! धन सम्पत्ति और मान बड़ाई देख कर तू प्रसन्न होकर गर्व में क्यों इधर-उधर घूमता फिरता है और अपने तन पर तेल व इत्र क्यों चुपड़ता है, क्योंकि यह सब खेल चन्द दिनों का ही है, फिर तो मृत्यु के बाद मिट्टी में मिल जायेगा। १।

तुलसी साहब कहते हैं कि यम के दूत तुझे पकड़ कर ले जावेंगे और तेरी आँखों में सलाई चला कर उन्हें फोड़ देंगे क्योंकि तू ने मालिक की भजन-बंदगी नहीं की। २।

॥ शब्द ३३ ॥

क्या फिरत है भुलाना, दिन चार में चलाना।
काया कुटुम्ब सब लोग, यह जग देख क्यों भुलाना॥ १॥
धन माल मुल्क घनेरे, कह कर गये बहुतेरे।
कितने जतन कर बढ़े, घट तंत ना तुलाना॥ २॥
हुशियार हो दिवाने, चलना मंजिल बिहाने।
बाकी रहे पै आवता, जमराज का बुलाना॥ ३॥
लिखते घड़ी घड़ी, कागज कलम चढ़ी।
तुलसी हुकुम सरकार का, कह देत हूँ उलाना॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला रेखता २९)

तू इस संसार में भूला हुआ क्यों फिरता है, तुझे तो चन्द दिनों के बाद ही यहाँ से चले जाना है, यानी चारों अवस्था-बाल अवस्था, तरूण अवस्था,

यौवन अवस्था व वृद्धावस्था बीतते ही तुझे यहाँ से चले जाना है। फिर तू अपनी देह और कुटुम्ब परिवार के लोगों को और इस संसार को देख देख कर, इस बात को क्यों भूल जाता है।

अनेक लोगों ने धन सम्पत्ति इकट्ठी की और कई देश जीते और विविध उपाय करके समृद्ध व शक्तिशाली बने, किन्तु वे अपने असली घर का भेद नहीं पा सके। १-२।

हे पागल! तू सचेत और सावधान हो जा और चलकर अपनी मंजिल पार कर ले, वर्ना यह काम बाकी रह जायेगा और यमराज का बुलावा आ जायेगा।३।

तुलसी साहब कहते हैं कि मैं बार-बार लिखकर तुझे उलाहना देता हूँ और कहता हूँ कि यह हुक्म सरकार यानि मालिक का है। ४।

॥ शब्द ३४ ॥

इस जग में बूझ विचार ले रे, नहिं साथ तेरे कुछ जावता है॥ १॥
अरे देख अलफत का मत झूठा, यही ख्वाब का खेल कहावता है ॥ २॥
तुलसीदास यह दम से स्वाँस है रे, सोई गम के गोले चलावता है॥ ३॥

(शब्दावली भाग पहला झूलना ७)

तू सब समझ विचार ले, इस संसार से अंत समय में तेरे साथ कुछ नहीं जावेगा। १।

यहाँ का प्रेम सब झूठा है, और यह स्वप्न के खेल के समान है। २।

तुलसी साहब कहते हैं कि यहाँ पर जब तक स्वाँस है, तब तक अनेक गम और दुख भोगता रहता है फिर भी नहीं चेतता। ३।

॥ शब्द ३५ ॥

नर तन संग अंग बिनसन को ॥ टेक॥
यह धन धाम कुटुम्ब और काया, माया तज बन बास बसन को।
खीर खाँड़ घृत पिंड सँवारा, छूटे तन पल माँहि नसन को ॥ १॥
माही मरातिब हुकुम रहे सोइ, कोई मंदिर नहिं दीप चसन को।

तू तुलसी कहो केहि लेखन में, जाता जग जम जाल फँसन को ॥ २ ॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी ३२)

यह मानव शरीर और इसके सब अंग नाशमान हैं। इसलिये धन सम्पत्ति, कुटुम्ब परिवार व माया के सामान त्याग कर तन से बैराग धारण करना चाहिये क्योंकि खीर, खांड और घृत से बने मधुर मिष्ठान खाकर इस तन को हृष्ट पुष्ट रखते हुए भी जब इस तन से प्राण निकल जाते हैं तो इसका तुरन्त नाश होना निश्चित है। १।

रचना के प्रत्येक खंड में उस मालिक का ही हुक्म चलता है, और कोई जीव ऐसा नहीं है जो बिना उसकी चैतन्यता के जीवित रह सके।

तुलसी साहब कहते हैं कि तेरी औकात और हैसियत ही क्या है? समस्त संसार ही काल के जाल में फँसता चला जाता है, बड़े-बड़े इससे नहीं बच पाए। २।

॥ शब्द ३६ ॥

अरे देख निहार बजार है रे, जग बीच न काम कोइ आवता है॥ १ ॥
सुत मात पिता नर नारि त्रिया, देख अंत को संग न जावता है॥ २ ॥
तुलसीदास विचार जम फाँस है रे, विधि बाँधि के काल चबावता है॥ ३ ॥

(शब्दावली भाग पहला झूलना १)

तुलसी साहब कहते हैं कि तू अच्छी तरह देख ले, यह संसार बाजार के समान है, जहाँ पर सब अपने अपने काम में लगे हुए हैं और कोई किसी के काम नहीं आता है। १।

माता-पिता, पुत्र, पत्नी, नर और नारी कोई भी अंत समय साथ नहीं जाता है। २।

तू विचार कर देख ले कि यह संसार काल का जाल है, जिसमें काल अनेक विधि से जीव को फँसा कर बाँध देता है और जीव को चबा कर खा जाता है। ३।

॥ शब्द ३७ ॥

तेल फुलेल करे रस सो, माया के फेल में सार भुलानो ॥ १ ॥
मात पिता सुत नार निहार सो, झूँठ पसार को देख फुलानो ॥ २ ॥
यह दिन चार विचार न लार, सो भूल असार के संग तुलानो ॥ ३ ॥
तासे कहे तुलसी निज के, तन छूट गयो जम देत उलानो ॥ ४ ॥

(शब्दावली भाग पहला)

तुलसी साहब कहते हैं कि हे जीव! तू तेल और इत्र लगाकर दुनियावी सुख भोगता है। इस तरह माया के वशीभूत होकर असली व सत्य बात को भूल गया है। माता-पिता, पुत्र, पत्नी सबको परख ले, यह सब झूठा प्रसार है जिसे देखकर तू गर्व से फूल गया है। इनका साथ चन्द दिनों का है और अंत समय में कोई साथ नहीं जावेगा, तू ये सब बातें भूल गया है और मिथ्या और असार बातों में पड़ गया है। २-३।

तुलसी साहब कहते हैं कि अपना समझ कर तुझसे कहता हूँ कि इस तन से प्राण निकलते ही यमदूत तुझे उलाहना देते हुए ले जावेंगे। अभी समय है अपना काम बनाने का, अबके चूके ठीक नहीं। ४।

॥ शब्द ३८ ॥

चेत सबेरे चलना बाट ॥ टेक ॥
मन माली तन बाग लगाया, चलत मुसाफिर को बिलमाया।
विष के लड्डू ताहि खवावे, लूट लिया स्वादों के चाट ॥ १ ॥
तन सराय में मन उरझाना, भटियारी के रूप लुभाना।
निस बासर वाही सँग रहता, कर हिसाब सतगुरु की हाट ॥ २ ॥
ज्ञान का घोड़ा बनाय के लीजै, प्रेम लगाम ताहि मुख दीजै।
सुरत एड़ दे आगे चलना, भौ सागर का चौड़ा फाट ॥ ३ ॥
क्या सोवे उठ साहब सुमिरो, दसो दिसा काल निज घेरो।
तुलसी कहत चेत नर अंधा, अब क्या पड़ा बिछाये खाट ॥ ४ ॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी शब्द १२)

तुलसी साहब कहते हैं कि हे मुसाफिर! अब तो चेत, सबेरा होने वाला है और तुझे अपनी मंजिल तय करनी है।

किन्तु जैसे माली सुन्दर व मनोहर बाग लगाता है, जो राह चलते मुसाफिरों को लुभा कर रोक लेता है, वैसे ही तेरे मन में अनेक आकर्षण पैदा कर दिये हैं। और तुझे विषय भोग के लड्डू खिलाकर और इन्द्रिय भोग व सुखों में फंसा कर तुझे लूट लिया है, यानी तेरा पतन कर दिया है और तेरा मन, तन रूपी सराय में भटियारिन का सुन्दर व आकर्षक रूप देखकर उसमें उलझ गया है और रात दिन उसी के साथ रहता है, यानि रात दिन इन्द्रिय भोगों में लीन और लिप्त रहता है।

यदि तू अपना छुटकारा चाहता है तो सतगुरु के दरबार में अथवा सतसंग में जाकर अपने कर्मों का हिसाब कर और सतगुरु से ज्ञान रूपी घोड़ा लेकर उस पर सवार होकर और उसके मुँह में प्रेम रूपी लगाम लगा कर, सुरत की एड़ लगाकर, आगे बढ़ जा और भव सागर के चौड़े पाट को पार कर ले। १-३।

तुलसी साहब कहते हैं कि काल ने दसों दिशाओं को घेर लिया है और तू खाट बिछाए निश्चिंत और अचेत होकर सो रहा है। हे नर! तू अंधा यानी अज्ञानी है, अब तो चेत और उठ जा और मालिक का सुमिरन कर। ४।

॥ शब्द ३९ ॥

भोर कोई जागो रे जागो, क्या सोवे नींद भर घोर॥ टेक॥
बदली घुमड़ घोर अँधियारी, पहरू करत है सोर।
जागे जिन जिन तपन निवारी, घर मूसत हैं चोर ॥ १॥
पाँच पचीस बसैं घट माहीं, साईं निपट कठोर।
मोर और तोर देत झकझोला, चलन नेक नहिं जोर॥ २॥
तलबी तीन द्वार पर प्यादे, साधे कपट की डोर।
आवत जात नेक नहिं रोकैं, एक न मानत मोर ॥ ३॥
तुलसीदास बाज यह बसती, कह कह हार निहोर।
कोतवाल कलबूत समाना, हाकिम अंधा घोर ॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला शब्द ६)

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि हे जीवों! अब तुम जागो! क्यों घोर निद्रा में सो रहे हो? बादल उमड़ रहे हैं, घोर अंधेरा छा रहा है और पहरेदार आवाज दे रहे हैं। जो जाग रहा है वह अपने अंदर की तपन दूर कर रहा है। सावधान हो जाओ, चोर घर की वस्तुएँ चुरा रहे हैं यानी मनुष्य शरीर में कार्यरत पाँच चोर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार सक्रिय हो रहे हैं। १।

पाँच दूत और पच्चीस प्रकृतियाँ घर में बस रही हैं। साईं बड़ा कठोर है। मेरा और तेरा यह भाव मन में होने से झकोले सहने पड़ते हैं जिससे बस नहीं चलता। २।

तीन गुण, प्यादों की तरह, कपट की डोर लिए हुए तेरे द्वार पर खड़े हैं। कोई उनके आने जाने पर रोक नहीं लगा सकता। वे मेरा कहना जरा नहीं मानते। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जीवों को कह कह कर मैं हार गया कि इस देश को छोड़ो। यहाँ काल का कारिंदा देह में समा रहा है और हाकिम निपट अंधा है। पर यह सुनता ही नहीं, गाफिल पड़ा है, समय रहते होशियार हो जा। ४।

॥ शब्द ४० ॥

जगत गाफ़िल पड़ा सोता, रैन दिन ख्वाब में खोता ॥ १ ॥
अवादा आन के पहुँचा, खौफ जम का नहीं सोचा ॥ २ ॥
फिरे अलमस्त माया में, पारधी काल काया में ॥ ३ ॥
गऊ सिंघ बाट में घेरे, डगर जिव काल त्यों हेरे ॥ ४ ॥
बचै कोइ संत के सरना, अमर होवे मुक्त चरना ॥ ५ ॥
और कहुँ ना कुशल भाई, कहीं सब सन्त गोहराई ॥ ६ ॥
बिना उन के जनम मरना, भटक भौसिंध में पड़ना ॥ ७ ॥
जुगन जुग कर्म से खाना, बढ़े अघ पाप अभिमाना ॥ ८ ॥
जुलम के हेत हलकारे, मनी मगरूर मतवारे ॥ ९ ॥
पकड़ जम जूतियाँ मारे, बहुर बिल्कुल नरक डारे ॥ १० ॥

देख यह तन नहीं मिलता, कुटुम्ब परिवार में पिलता ॥ ११ ॥
समझ सोहबत बड़ी खोटी, घसीटै काल धर चोटी ॥ १२ ॥
मोह की फाँस में फंदे, जनम बीते बिबस गंदे ॥ १३ ॥
बदन ज्यों ओस का पानी, अरंग यों जान जिन्दगानी ॥ १४ ॥
तेरे संग ना कोई जावे, मार हर वक्त क्यों खावे ॥ १५ ॥
कहै तुलसी जनम बीता, खलक जावे हाथ रीता ॥ १६ ॥

(शब्दावली भाग पहला रेखता ५)

तुलसी साहब जींव को सचेत करते हुए कहते हैं कि तू संसार में अचेत पड़ा सोता है और रात दिन स्वप्न देखता रहता है यानी तुझे होश ही नहीं कि तू क्या-क्या कल्पनाएँ व कामनाऐं पैदा करता रहता है। तुझे यमराज का बुलावा आ गया है, फिर भी तू नहीं डरता है और बेफिक्र व मतवाला होकर माया के पदार्थों में बरतता रहता है। किन्तु तुझे नहीं मालूम है कि काल शिकारी तेरे तन में ही बैठा है। जैसे सिंह, गाय को मार्ग में ही घेर कर रोक लेता है इसी तरह काल भी जीव को मार्ग में ही रोक लेता है और कोई जीव उससे बच नहीं सकता है। १-४।

काल से केवल वही जीव बचता है, जो संतों की सरन में चला जाता है और उनके पवित्र चरनों के प्रताप से वह काल के चंगुल से मुक्त होकर अमर हो जाता है। हे भाई! सिवा संत सरन के इस रचना में अन्य कोई स्थान सुरक्षित नहीं है। सभी सन्तों ने यह बात पुकार-पुकार कर कही है कि संत सतगुरु के बिना, जीव जन्म मरन के चक्कर में पड़ा रहता है और वह बार-बार भटक कर भव सागर में गोते खाता रहता है। ५-७।

जो अन्यायी, अभिमानी, घमण्डी और मदमाते हैं, काल उन्हें पकड़ कर बहुत यातनाऐं व दुख देता है और फिर नर्क में डाल देता है। ८-९।

यह नर देही दुर्लभ है कुटुम्ब और परिवार के संग पचना व खपना, और मोह रूपी फाँसी का फंदा अपने गले में डालना बहुत खराब है क्योंकि ऐसा करने से काल चोटी पकड़ कर घसीटता है और गंदे व बुरे तरीके से जीवन

बिताने के लिये लाचार व बाध्य कर देता है। १०-१३।

यह तन ओस के पानी के समान क्षण भंगुर है और जीवन को भी ऐसा ही रसहीन व अर्थहीन समझना चाहिये। १४।

तुलसी साहब कहते हैं कि अंत समय में तेरे साथ कोई नहीं जावेगा, फिर हर दम काल के हाथ से मार क्यों खाता है? तू ने अपना समस्त जीवन यूँ ही बिता दिया यानी नष्ट कर दिया। अब तू इस संसार से खाली हाथ ही जावेगा। १५-१६।

॥ शब्द ४१ ॥

जगत मद मान में माता, खुदी का खौफ नहिं लाता ॥
कज़ा सिर पर खड़ी द्वारे, फ़रिश्ते तीर तक मारैं ॥ १ ॥
कमानी काल के हाथा, करे जम जीव की घाता ॥
पड़ा मग़रुर क्या सोवे, बहुरि फिर सीस धुन रोवै ॥ २ ॥
अगर यों सोच अपने में, गये दिन बीत सपने में ॥
बदन मट्टी पवन पानी, मलामत हाड़ मल सानी ॥ ३ ॥
गंदगी बीच अंदर में, बदन बदबोय मन्दर में ॥
अरे नित क्या अन्हाता है, मैल मन का न जाता है ॥ ४ ॥
करेले नीम की भाई, कभी जावे न कड़वाई ॥
अरे दुर्गन्ध का भांड़ा, निरखि कोई संत ने छांड़ा ॥ ५ ॥
खलक दो दिन तमाशा यों, परख पानी बताशा ज्यों ॥
अस्म यों जान जिन्दगानी, अबर ओला घुले पानी ॥ ६ ॥
अबस तन यों बिनसता है, इधर घर का न रस्ता है ॥
मिरग की नाभि कस्तूरी, भटक ढूँढ़े जो बन मूरी ॥ ७ ॥
तेरा महबूब तेरे में, वस्तु गई ढूँढ़ डेरे में ॥
सगुनिया संत से पावै, आप में आप दरसावै ॥ ८ ॥
करै सतसंग मन टूटे, मलामत बुद्धि की छूटै ॥
गुरू मिल मैल कूँ काढ़ै, ज्ञान की उग्रता बाढ़ै ॥ ९ ॥

सुरत जब सीलता पावै, गगन की राह चढ़ जावै॥
होय पति प्रीति निरधारा, मिलै तुलसी पदम प्यारा॥ १०॥
(शब्दावली भाग पहला रेखता ६)

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि हे जीव! तू संसारी मान के मद में क्यों मतवाला हो रहा है। तुझे अपनी हानि का खौफ़ नहीं है। मौत सबके द्वार पर खड़ी है और मौत के फ़रिश्ते तीर साध कर खड़े हैं। १।

धनुष की कमान काल के हाथ में है और यम जीव की घात में है। अहंकार में भर कर क्या बेहोश होकर सो रहे हो? फिर तुमको सिर धुन कर रोना पड़ेगा। २।

अगर तुम गौर करो तो तुम्हें मालूम पड़ेगा कि जीवन स्वप्न की तरह बीत गया। देह तो मिट्टी पवन व पानी की बनी हुई है। हड्डियों और मल की मलीनता के कारण यह शरीर घृणा योग्य है। ३।

तेरे अंदर गंदगी भरी हुई है। देह से दुर्गंध निकलती है। नित प्रति के स्नान से बाहरी शरीर बेशक साफ़ हो जाता है पर इस स्नान से मन की मलीनता तो नहीं जाती। ४।

चाहे कुछ करो, नीम और करेले की कड़वाई कभी नहीं जा सकती। देह दुर्गंध का भाँडा है, यह जान कर संतों ने इसे छोड़ दिया। ५।

संसार एक चलायमान तमाशा है और जैसे बताशा पानी में घुल जाता है उस तरह नाश होने वाला यह शरीर है। इसे बादल की तरह जानो या ऐसे जानो जैसे ओला घुल कर पानी हो जाता है। ६।

यहाँ तेरा बस नहीं चलता। तेरा शरीर नाश हो जायेगा। तुझे अब तक घर को जाने का मार्ग हाथ नहीं लगा। तेरी दशा यहाँ ऐसी है जैसे जंगल के हिरन की कि जिसकी नाभि में कस्तूरी है पर उसे मालूम नहीं और वह उसे वन में इधर उधर ढूँढ़ता फिरता है। ७।

तेरा प्रीतम तेरे अंदर विराजता है। उसे अपने अंतर में ढूँढ। उसकी प्राप्ति की राह संतों से मिलेगी और अपने में अपना रूप दरसेगा। ८।

सतसंग करने से मन चूर होगा और अंतःकरण की मलीन बुद्धि से छुटकारा होगा। अगर तुम गुरू से मिलो तो तुम्हारी मलीनता छूटे और ज्ञान की तीव्रता बढ़े। ९।

सुरत में शील अंग आवेगा तब वह गुरू की बतलाई हुई राह से चढ़कर गगन को पहुँचेगी और अपने प्रीतम के प्रेम में मगन रहेगी। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि तब वह अपने इष्ट यानी प्रभु को प्राप्त करेगी। १०।

॥ शब्द ४२ ॥

भौजल लहर उतंग संग कोई खोजो रे खोजो॥ टेक॥
शिव सनकादि आदि मुनि नारद, सारद शेष कुरंग।
व्यासदत्त सुकदेव दिवाने, पावत फिर फिर अंग॥ १॥
श्रृंगी ऋषि पारासर मारे, कीन काम ने तंग।
ऋषी मुनी सब क्रोध कुबुद्धी, भयो तपस्या भंग॥ २॥
ब्रह्मा, विष्णु दसो औतारा, खुल खुल नच्यो अपंग।
और जगत जिव कहँ लग बरनूँ, आसा रंग तरंग॥ ३॥
तुलसी ताव दाव नर देही, सुरत गगन चढ़ गंग।
गूंजत भँवर फूल फुलवारी, कँवल अधर लख भृंग॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला)

इस संसार-सागर में लहरें बहुत ऊँची-ऊँची उठ रही हैं, इसलिये तू संग में चलने वाले साथी की खोज कर। यहाँ पर शिव, सनकादि, आदि मुनि नारद, शारदा और शेषनाग की स्थिति से सब परिचित हैं।

व्यास, दत्तात्रेय और शुकदेव भी बार बार जन्म धारण करते रहे और श्रृङ्गी ऋषि व पाराशर काम के वशीभूत होकर धोखा खा गये। इस तरह सब ऋषि मुनि क्रोध और कुबुद्धि की लपेट में आकर अपनी तपस्या भंग करवा बैठे। यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और दस अवतार भी खुल कर यानी बेरोक टोक नाचे यानी लीलाएँ की। तो फिर संसार के साधारण जीवों का क्या वर्णन किया जाय? वे सब इच्छाओं और कामनाओं की तरंग में बहते रहे । १-३।

तुलसी साहब कहते हैं कि अब किसी अनुकूल संयोग से तुझे नर देही मिली है। तू अपनी सुरत को सुरत शब्द योग द्वारा, अंतर में चैतन्य आकाश में चढ़ा ले, जहाँ पर शब्द रूपी गंगा निरन्तर बह रही है और फुलवारी में पाँच रंगों के फूल खिले हैं जिन पर भँवरे यानी अनेक सुरतें गुंजार कर रही हैं। तू भी भृंग यानी अपनी सुरत से वहाँ सहसदल कँवल के दर्शन कर, जो कि बिना किसी आधार या सहारे के वहाँ पर स्थित है। ४।

॥ शब्द ४३ ॥

बड़ा जगत जंजाल, जाल जम फांसी डारी।
ज्यों धीमर जल माहिं, पकड़ कर मछली मारी॥ १॥
निकर जाय जब प्राण, काल चोटी घर खीसा।
अरे हाँरे तुलसी पड़ि हो जम मुख माहिं, डाढ़ चक्की ज्यों पीसा॥ २॥
(शब्दावली भाग पहला अड़ियल २५)

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि संसार वास्तव में एक बड़ा जाल है। जैसे धीमर मछली पकड़ने और मारने के लिये पानी में जाल ड़ाला जाता है उसी तरह काल ने जीवों के गले में फाँसी डाली है। १।

जब प्राण निकल जाते हैं तो काल उन्हें चोटी पकड़ कर खींचता है। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अंत समय जम के मुख में पड़ोगे। वह दाढ़ में रखकर ऐसे पीसेगा जैसे चक्की अनाज को पीसती है। २।

॥ शब्द ४४ ॥

मुशकिल हो, आसान जान कोई ना करै।
करै तत्त का खोज, काज घट में सरै॥ १॥
बाहर है सब झूठ, लूट जम लेयँगे।
अरे हारे तुलसी तन छूटे, बेहाल बहुत दुख देयँगे॥ २॥
(शब्दावली भाग पहला अड़ियल २६)

तुलसी साहब अफसोस के साथ कहते हैं कि यह जीव अपनी खराब हालत को जान कर भी उससे छुटकारा पाने का उपाय नहीं करता। अगर कोई

सत्य वस्तु की खोज करे तो अंतर में उसका कारज पूरा हो सकता है। १।

बाहर जो कुछ है सब झूठ है। वह सब जम के द्वारा लूट लिया जायेगा। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि तन के छूटने पर तुम्हारी बड़ी कुगति होगी और जम तुम्हें बहुत दुख देगा। २।

॥ शब्द ४५ ॥

क्या सोवत गाफिल चेत, सिर पर काल खड़ा॥ टेक॥
जोर जुलम की रीत बिचारी, कर माया से हेत॥ १॥
जम की जबर खबर नहिं जानी, बाँध नर्क दुख देत॥ २॥
बिनसे बदन अगिन बिच जारे, खीर खाँड़ रस लेत॥ ३॥
फिर फिर काल कमान चढ़ावे, मार लेत खुल खेत॥ ४॥
विष रस रंग संग बहु कीन्हा, कर कर बैस बितेत ॥ ५॥
बिरध बनाय बूढ़ तन भइया, कारे केस भये श्वेत॥ ६॥
सुत दारा आदर अलसाने, बुढ़वा मरे परेत॥ ७॥
छल बल माया कर गई रे, यह दुनियाँ के हेत॥ ८॥
मनी मान से धनी न चीन्हा, चिड़ियाँ चुग गई खेत॥ ९॥
अब पछताये क्या हो तुलसी, पहिले रहा अचेत॥ १०॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी शब्द १)

हे नर! तेरे सिर पर काल खड़ा है और तू अचेत होकर सोया हुआ है। तू ने माया से प्रीत प्रतीत करके, जोर जुल्म और अन्याय का मार्ग अपना लिया है, किन्तु तू नहीं जानता है कि काल कितना जबरदस्त व जोरावर है। वह जीवों को बाँधकर नर्क में डाल देता है और उन्हें बहुत दुख देता है। १-२।

तू तो स्वादिष्ट व मीठा भोजन करके इस तन को हष्ट-पुष्ट करता है, किन्तु काल बार बार तीर कमान चढ़ा कर देखते ही देखते इसे मार गिराता है और मृत्यु होते ही इसे अग्नि में जला दिया जाता है। ३-४।

विषय भोग और इन्द्रिय सुखों में बहुत लिप्त रह कर, तूने अपनी उम्र

बरबाद कर दी और अब वृद्धावस्था आने से तेरा तन भी बूढ़ा हो गया और काले बाल सफेद हो गये हैं। ५-६।

तेरे पुत्र और पत्नी ने तेरा आदर करना छोड़ दिया है और चाहते हैं कि बुड्ढा जल्दी मरे। इस तरह माया तेरे साथ धोखा कर गई। यही इस दुनिया की प्रीत है। ७-८।

तुलसी साहब कहते हैं कि तूने मालिक को भली प्रकार नहीं पहचाना और तू अचेत रहा, जिससे चिड़ियाँ खेत चुग गईं, यानी यह बरबादी हुई और अब पछताने से क्या होता है। ९-१०।

॥ शब्द ४६ ॥

नर का जन्म मिलत नहीं, गाफिल ग़रूरी ना रखो।
दिन दो बसेरा बास है, आखिर फ़ना मरना सही॥ १॥
बेहोश! मौत सिर पर खड़ी, मारे निशाना ताक के।
हर दम शिकारी खेलता, जम सै रहे सब हार के॥ २॥
घेरा पड़ा है काल का, कोई बचन पावे नहीं।
जग में जुलम तोबा पड़ी, इनसे पनाह देवे दई॥ ३॥
चलने के दिन थोड़े रहे, हर दम नकारा कूँच का।
नहिं तूँ तेरा संगी भया, तुलसी तवक्का ना किया॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी रेखता २५)

मनुष्य जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये नर तन पाकर कभी अचेत नहीं रहना चाहिये और न अभिमान करना चाहिये, यानी सदा सचेत, सावधान और दीनता पूर्वक रहना चाहिये। इस संसार में तुम्हारा निवास चन्द दिनों का है। आखिर तो मृत्यु इस तन को अवश्य ही नष्ट कर देगी। १।

हे गाफिल नर! तेरे सिर पर मौत खड़ी है जो ताक कर निशाना मारने वाली है। वह प्रत्येक पल जीवों का शिक़ार करती रहती है। काल के आगे सबको हार माननी पड़ती है, क्योंकि काल बहुत जोरावर व बलवान है। २।

काल ने जीवों को सब तरफ से घेर लिया है और कोई भी उससे बचकर नहीं जा सकता है। उसने संसार में बहुत अन्याय, अत्याचार और घृणा फैला रखी है, जिनसे विधाता ही बचा सकता है। ३।

तुलसी साहब कहते हैं कि यहाँ से तेरे जाने के दिन थोड़े ही रह गये हैं और तेरी विदाई के लिये नगाड़ा निरन्तर बजने लगा है, फिर भी तूने साथ चलने के लिये न तो सच्चा पथ प्रदर्शक लिया और न उसका विश्वास किया। ४।

॥ शब्द ४७ ॥

जात रे तन बाद बिताना ॥ टेक॥
छिन-छिन उमर घटत दिन राती, सोवत क्या उठ जाग बिहाना॥ १॥
यह देही बालू सम भीती, बिनसत पल बेहोश हैवाना॥ २॥
ज्यों गुलाल कुमकुम भर मारे, फेंक फूट जिमि जात निदाना॥ ३॥
यह तन की अन आस अनारी, तैं विष फंदन फाँस फँदाना॥ ४॥
यह माया काया छिन भंगी, रँग रस कर कर डारत खाना॥ ५॥
सुख सम्पत आशक्त इंद्रिन में, विष बस चौज मौज मन माना॥ ६॥
तुलसी ताव दाव नर देही, बासर निस गई भजन न जाना॥ ७॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी शब्द १३)

हे मनुष्य! तेरा नर तन व्यर्थ ही बीता जा रहा है। रात और दिन, तेरी आयु प्रत्येक पल निरन्तर घट रही है। तू बेहोश जानवर की तरह क्या सोता है, रात बीत गई है, उठ जाग और सचेत हो जा। १।

यह तन बालू रेत की दीवार के समान है, जो एक पल में नष्ट हो जाता है, जैसे गुलाल और कुमकुम की मुट्ठी भरकर फेंकने पर उनका कण-कण फूटकर बिखर जाता है। २।

हे मूर्ख! तन की कामनाओं व विषय भोग और इन्द्रिय सुखों के जाल में फँसकर तेरे फाँसी लग गई है। यह माया और काया दोनों ही एक पल में नष्ट होने वाली हैं। माया, जीव को सांसारिक सुखों में लिप्त करके चारों खानों में यानी आवागमन और जन्म मरन के चक्कर में डाल देती है। ३-५।

तुलसी साहब कहते हैं कि सांसारिक सुखों, धन सम्पत्ति और इन्द्रिय भोगों को, जो विष के समान हैं, तेरे मन ने मौज और उसका आनन्द मान लिया है और जो नर देही किसी शुभ संयोग से तुझे मिली थी, उसे तूने नष्ट कर दिया और रात दिन यूँही बिता दिये यानी सुअवसर खो दिया और मालिक की भजन बंदगी नहीं की। ६-७।

॥ शब्द ४८ ॥

गवन गये तजि काया रे हंसा ॥ टेक ॥
मात पिता परिवार कुटुम्ब सब, छोड़ि चले धन माया ॥ १ ॥
रंग महल सुख सेज बिछौना, रुचि-रुचि भवन बनाया ॥ २ ॥
प्यारे प्रीत मीत हितकारी, कोई काम न आया ॥ ३ ॥
हंसा आप अकेला चाले, जंगल बास बसाया ॥ ४ ॥
पुत्र पंच सब जाति जुड़ी है, भूमी काठ बिछाया ॥ ५ ॥
चिता बनाय रची धरि काया, जल बल खाक मिलाया ॥ ६ ॥
प्रान-पती जहाँ डेरा कीन्हा, जो जस करम कमाया ॥ ७ ॥
हंसा हंस मिले सरवर में, कागा कुमति समाया ॥ ८ ॥
तुलसी मानसरोवर मुकता, चुग-चुग हंसन पाया ॥ ९ ॥
कागा कुमति जीव करमन से, फिर भव जनम धराया ॥ १० ॥

(शब्दावली भाग दूसरा बिहाग हंसावली १)

आत्मा नर शरीर को त्याग कर चली गई।

माता पिता, कुटुम्ब परिवार, धन सम्पत्ति, माया के साजो सामान, रँग महल, सुख सेज व सुन्दर बिछौने और मन पसन्द बनाया हुआ भवन, सब कुछ यहीं छोड़कर चली गई। १-२।

प्रिय मित्र और हितैषी की प्रीत भी काम नहीं आई। सब भीड़ भाड़ और धन-दौलत छोड़कर, आत्मा अकेली ही चली गई और उसने एकान्त बास कर लिया। पुत्र, पंच और जाति के सब लोग इकट्ठे हुये, जमीन पर लकड़ियाँ

बिछाई और चिता बनाई और देह को उस पर रखकर आग लगाकर जलाकर खाक कर दिया और मिट्टी में मिला दिया।

तुलसी साहब कहते हैं कि जिसने जैसे कर्म किये, उसके अनुसार प्रानपती यानी जीव को बासा मिलता है। हंस गति के जीव, अपने शुभ कर्मों के कारण, हंस हंसनी रूप धर कर सुन्न लोक में मान सरोवर में निवास करते हैं, वहाँ मोती चुन चुन कर खाते हैं और आनन्द बिलास करते हैं। किन्तु काग गति के जीव दुर्बुद्धि में पड़कर पाप कर्म करते हैं, जिसके कारण फिर जन्म धारण करके भव सागर में आते हैं, और जन्म मरण के दुख सहते हैं।

॥ शब्द ४९ ॥

धरि नर देह जगत में कछु न बनी रे ॥ टेक॥
आप अपनपौ को नहिं चीन्हा, लीन्हा मान मनी रे॥ १॥
यह जड़ जीव नीव जुग जुग को, गहरी ठान ठनी रे॥ २॥
धृग धन धाम सोन अरू चाँदी, बाँधी पोट घनी रे॥ ३॥
जोड़ बटोर किया बहुतेरा, इक दिन फना फनी रे॥ ४॥
ऐसा जनम पाय कर भूले, यह इनसाफ छनी रे॥ ५॥
मन तन धन कोइ काम न आवे, चाम के धाम बनी रे॥ ६॥
तुलसी तुच्छ तजो रँग काँचो, साँचो नाम धनी रे॥ ७॥

(शब्दावली भाग दूसरा राग सोरठा शब्द १)

यह जीव मूढ़ और अज्ञानी है। नर तन पाकर भी इसने अपने उद्धार के लिये कुछ नहीं किया और न इससे कुछ जतन बना। इसने अपने आपको नहीं पहचाना और मान अभिमान में डूबा रहा। १।

इसने संसार में गहरी नींव जमा रखी है, यानी वह युगों युगों से आवागमन में यहाँ चक्कर काट रहा है। इस तरह इस संसार से उसका गहरा रिश्ता हो गया है। २।

इसने जो धन सम्पत्ति और सोना चाँदी बटोर बटोर कर भारी पोट बाँध ली है, वह धिक्कार योग्य है यानी किसी काम की नहीं है, क्योंकि एक दिन

इसका नर तन भी नष्ट हो जायेगा और यह धन दौलत उसके कुछ काम नहीं आयेगी। ३।

नर तन पाकर भी, जिसमें बुद्धि व विवेक है और भक्ति कमाने के साधन हैं, वह ये सब बातें भूल गया और यह न्याय किया कि इसे व्यर्थ में खो दिया। ४-५।

तुलसी साहब कहते हैं कि तन मन धन तो तुच्छ हैं और कुछ काम नहीं आते हैं। इसलिये इनसे प्रीत करना छोड़ो और मालिक का नाम जो सच्चा है, ग्रहण करो, तभी तुम्हारे जीव का कल्याण होगा। ६-७।

॥ शब्द ५० ॥

घर सुधि भूलि भँवर में आनि परयो रे॥ टेक॥
जग सुभ असुभ कर्म मद मन्दा, फन्दा काल करयो रे॥ १॥
आसा नदी बहे तट नाहीं, भारी भर्म भरयो रे॥ २॥
दिन अरू रैन चैन नहिं पावे, तृष्ना माहिं मरयो रे॥ ३॥
लोभ अगिन धर दीन पलीता, जीता जनम जरयो रे॥ ४॥
नर तन पाय परख नहिं कीन्हा, भव सिंध नाहिं तरयो रे॥ ५॥
तुलसी ताव दाव नहिं देखा, मन की चाह चख्यो रे॥ ६॥

(शब्दावली भाग दूसरा राग सोरठा ३)

हे मूर्ख! तू अपने असली घर की याद बिसार कर और यहाँ आकर भव सागर के भँवर में फँस गया है और काल ने तुझे पाप और पुण्य कर्मों में अटका कर, तेरे गले में फाँसी का फन्दा डाल दिया है। १।

यहाँ पर आशा रूपी नदी बहती रहती है, जिसके कोई किनारा नहीं है, यानी अनेकों चाहें और कामनाऐं, जिनका कोई अंत नहीं है तेरे मन में निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं। तेरी रग रग में भर्म भरे हुए हैं। इसलिये तू रात और दिन अशान्त और बेचैन रहता है। तृष्णा तुझे मुर्दा बना देती है और लोभ रूपी अग्नि तेरे मन में पलीता लगाकर तुझे जीते जी जलाती रहती है। २-४।

तुलसी साहब कहते हैं कि नर तन पाकर भी तूने परख यानी सत्य की खोज नहीं की और भव सागर को पार नहीं किया, बल्कि जो शुभ संजोग तुझे मिला था उसे तूने अपने मन की इच्छाओं की पूर्ति करने में ही गँवा दिया। ५-६।

॥ शब्द ५१ ॥

नर धरि देह कुशल कहा कीन्ही ॥ टेक ॥
साधू संग रंग नहिं राँचे, खोटी बुद्धि लटक लौ लीनी ॥ १ ॥
आठों पहर विषय रस माहीं, जुग जुग रही रे सुरति रस भीनी ॥ २ ॥
धुर गुरू आदि उमेद न राखी, चाखी चौरस परस न पीनी ॥ ३ ॥
तुलसी तन बरबाद गयो यों, खायो माहुर मरम न चीन्ही ॥ ४ ॥
(शब्दावली भाग पहला चितावनी शब्द ३३)

हे मनुष्य! नर तन पाकर भी तूने अपने जीव का क्या भला किया? तूने साध पुरुषों के सतसंग का आनन्द प्राप्त नहीं किया और तू कुमति में अटक कर उसी में लिप्त रहा। तू रात और दिन इन्द्रिय भोगों के सुख में डूबा रहा, किन्तु तेरी सुरत युगों युगों से परम आनन्द से वंचित रही। तूने सतगुरु की प्रतीत नहीं की और न उनके पवित्र चरन स्पर्श किये और न चरनामृत पिया। १-३।

तुलसी साहब कहते हैं कि तू सदा विष ही खाता रहा और सार तत्व व उसका असली भेद नहीं जाना। इस तरह तूने अपना दुर्लभ नर तन बरबाद कर दिया। ४।

॥ शब्द ५२ ॥

मान रे मन मस्त मसानी ॥ टेक ॥
पोखि पोखि तन बदन बढ़ाया।
सो तन बन जरै अग्नि निदानी ॥ १ ॥
कुटुम्ब बंधु भैया सुत नारी।
मरत कोऊ संग जात न जानी ॥ २ ॥
यह संसार समझ दुखदाई।

पर बंधन नहिं पड़त पिछानी॥ ३॥
जोइ जोइ पाप पुन्य जिन कीन्हे।
आप आप भौ भुगतत खानी॥ ४॥
फूला वृक्ष फूल गिर जावे।
तें फूले पर कौन ठिकानी॥ ५॥
तुलसी जगत जान दिन चारी।
भारी भव बिच फाँस फँसानी॥ ६॥

(शब्दावली भाग पहला चितावनी शब्द १४)

मन, तू इस संसार में, जो श्मशान है, मस्त हो रहा है। मेरी बात सुनो और मानो। जिस तन को तूने पाल पोस कर बढ़ाया है वह आखिरकार वन में ले जाकर अग्नि में जला दिया जावेगा। १।

तुझे यह समझना चाहिये कि मरते वक्त कुटुम्ब परिवार भाई पुत्र और स्त्री कोई भी तेरे साथ नहीं चलेगा। २।

तुझे यह समझना चाहिये कि यह संसार दुखदाई है पर तू अपने बंधनों को नहीं पहचानता। ३।

जिसने जो पाप कमाया है और पुण्य कर्म किया है, वह आप उसका फल चार खान में पावेगा। ४।

वृक्ष जब फूलता है तो उसके फूल गिर जाते हैं। अगर तू फूलेगा तो तेरा कौन ठिकाना है? ५।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि तुझे यह समझना चाहिये कि संसार में रहना चार दिन का है और तू बंधनों में बँधा हुआ है। ६।

॥ शब्द ५३॥

हम को जग क्या करना री।
टुक जीवन पै मरना री॥ टेक॥
इक दिन देख बदन बिनसेगा।

अगिनि अंग जरना री॥
यों बरबाद नसै नर देही।
भोग उमर भरना री॥
दई गति से डरना री॥ १॥
नारि निहारि जुगन बिधि बाँधा।
मुनि मन को हरना री॥
जग परिवार सकल दुखदाई।
इन सन्मुख से टरना री॥
विपति बस क्यों पड़ना री॥ २॥
काया कलप काल नहिं छूटे॥
नर तन में तरना री॥
सतगुरु मूल मता जुगती से।
गुप्त ध्यान धरना री।
मुक्ति हिरदे चरना री॥ ३॥
औसर आज विदित बनिवे की।
संतन की सरना री॥
जो कोई तोल तरक तुलसी को।
पोढ़ पकरि धरना री॥
लखो चित से नर नारी॥ ४॥
(शब्दावली भाग दूसरा होली २९)

तुलसी साहब कहते हैं कि हमको दुनिया से क्या मतलब? थोड़े दिनों की जिंदगी के बाद मर जाना है। एक दिन देह नाश होगी और इसके सब अंग अग्नि में जलेंगे। उम्र भर नारी को भोग कर अंत में देह की ऐसी दुर्दशा होगी। विधाता की गति से डरना चाहिए। १।

नारी का रूप देखकर मनुष्य युगानयुग के लिये फँस जाता है और मुनियों के मन को भी इसने हर लिया है। संसार और परिवार सब दुखदाई हैं, जीव को इनसे दूर रहना चाहिये। भला इस विपत्ति में क्यों पड़े? २।

काया कल्प करने से भी काल से छुटकारा नहीं हो सकता। इस नर शरीर में ही भौसागर से तरना हो सकता है। सतगुरु की बतलाई समझ धारण करने से और उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलने से और सुरत से उनका ध्यान करने से जीते जी मुक्ति प्राप्त हो सकती है। ३।

अब यह ज़ाहिर है कि आज संतों की सरन लेकर जीवों का कारज पूरा होने का अवसर आया है। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो कोई इस कथन को परखना चाहे, उसे पहले इसको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। सब मनुष्यों को चाहे नर हों या नारी, इस बात पर ध्यान देना चाहिये। ४।

रस्मी और बाहरी कार्रवाई का खंडन

॥ शब्द ५४ ॥

तुलसी जग हाल साल, काल जाल माहीं॥ टेक॥
पंडित और भर्म भेष, देखा सब अंध अचेत।
भूला व्रत इष्ट टेक, पाहन लौ लाई।
तीरथ अश्नान ध्यान, खोजत नर चार धाम।
ढूँढ़त पोथी पुरान, मूरत मन माहीं।
देखा सब जक्त भेष, नेक खोज नाहीं॥ १॥
कोइ कोइ जपें इष्ट जाप, आपा चीन्हें न आप।
बांधे सिर पोट पाप, साफ़ नर्क जाई।
बूझै सतसंग सार, पावै संतन की लार।
मन का मद मूर मार, सार पार पाई।
जाना मन भूल तोड़, पोढ़ सुरत साईं॥ २॥
छिन-छिन तन छीन जात, बूझै नहिं एक बात।

तेरे कोऊ न साथ, जात पांत नाहीं।
सम्पति सुख लार छार, निरखो सुत नहिं नार।
कुटंब बंधु लोक चार, भूला भूल भाई।
यह कोउ तेरे न लार, जग असार जाई॥ ३॥
तुलसी तन होत छार, या से अगमन विचार।
कीजै भौ उतर पार, नौका नसि जाई।
बूझै कोई संत साध, सूझै तब अंत आद।
जूझै चढ़ सुरत नाद, लख अनाद पाई।
पावै पद पुरूष दाद, साध सुरत माहीं॥ ४॥
मानौ सुजान सीख, मँगि हो भौ खान भीख।
भाखो अज अमर लीक, देख द्वार माहीं।
जनमन और मरन छूट, करमन की फांस टूट।
सूझा मत सांच झूठ, लटा जग जाई।
तुलसी मुख कहै बैन, नैन नज़र आई ॥ ५॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जगत का यह हाल है कि काल के जाल में फँसा हुआ दुख पा रहा है। पंडित और भेख दोनों अंधे और ग़ाफ़िल हो रहे हैं। वे व्रतों में भूले हुए हैं, इष्ट की टेक में बँधे हुए हैं और पत्थर की मूर्ति में लगन लगा रहे हैं। वे तीर्थ को जाते हैं और पानी को पवित्र समझ कर नहाते हैं और ध्यान करते हैं। चार धाम में जाकर पोथी और पुरान में सत्य को ढूँढते हैं और अपना चित्त मूर्ति में लगाते हैं। मैंने सब जगत के जीवों को और भेखों को देखा पर किसी को सच्चा खोजी और मुतलाशी नहीं पाया। १।

कोई-कोई अपने इष्ट के नाम का जाप करते हैं, पर अपने आप को नहीं पहचानते कि वे कौन हैं। वे अपने सिर पर पाप की पोट बाँधे सीधे नर्क में जाते हैं। उन्हें समझना चाहिये कि सार वस्तु सतसंग है, जो उन्हें संतों से प्राप्त होगा, तब वे अपने मन के आपे को दूर करेंगे और सार वस्तु को पावेंगे और पार हो

जावेंगे। उन्हें तब मालूम होगा कि मन की भूल भरम को तोड़ देना चाहिये और सतगुरु की मदद से सुरत को पुष्ट करना चाहिये। २।

तेरी देह पल पल क्षीण हो रही है। तू इस बात को ज़रा भी नहीं समझता। कोई तेरा साथी नहीं है। जात पांत सब झूठ है। संसारी सुख सम्पत्ति सब वृथा है। सुत और नारी कोई तेरा साथ नहीं देगा। तू कुटुम्ब मित्र और लोकाचार में भूला हुआ है। यह सब तेरे साथ नहीं है। जगत असार है। कुछ काम नहीं आवेगा। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि तेरा तन राख में मिल जायेगा। इससे तुझे चाहिए कि अपने भविष्य की चिंता करे और ऐसा यत्न करना चाहिए कि भौसागर के पार उतर जावे। यह नौका यानी शरीर नाश हो जायेगा। कोई संत के संग से तुझे सच्ची समझ प्राप्त होगी और तब आदि अंत को बूझेगा। तब तेरी सुरत चढ़ने के लिये जूझेगी और शब्द से मेल करेगी और अनहद शब्द को लखेगी। उसे पुरुष का दर्शन प्राप्त होगा और उसके धाम में बासा पावेगी। अपनी सुरत को इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साध। ४।

सच्ची शिक्षा को ग्रहण करो वरना चौरासी में भरमोगे। अमर मार्ग यानी अमर पद में पहुँचाने वाले मार्ग की महिमा गाओ। अपनी दृष्टि तीसरे तिल पर रक्खो। जन्म मरण का चक्कर छूट जायेगा और कर्मों की फाँसी कट जायेगी। तब तुम्हें सच्चे और **झूठे** मत की पहचान आवेगी और मालूम पड़ेगा कि जगत को काल ने लूट लिया है। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं अपने हिये के नैनों से देखकर यह वर्णन करता हूँ। ५।

॥ शब्द ५५ ॥

पड़े जगत के माहिं भक्ति सुपने नहिं भावै।
ब्राह्मण पंडित भेष सभी पुनि दान करावै॥
जिन कीन्हा तम साज ताहिं से नेह न लावै।
अरे हांरे तुलसी जब जम पकड़े बांह, पूत को कौन छुड़ावै॥

जीव सब दुनिया के कारोबार में फँसे हैं। उन्हें स्वप्न में भी मालिक की भक्ति प्यारी नहीं लगती। ब्राह्मण पंडित और भेख उन्हें दान पुण्य करने की

शिक्षा देते हैं लेकिन जिस मालिक ने उन्हें यह नर शरीर दिया है उनमें प्रेम नहीं लाते। तुलसी साहब फ़रमाते हैं जब ऐसे जीवों को जम पकड़ेगा तब कौन उन्हें छुड़ायेगा ?

॥ शब्द ५६ ॥

वेद पुरान कुरान में देख ले।
नेत ही नेत कर कहत भागी ॥ १॥
जाहि की साख पंडित पढ़ सब कहैं।
बूझ बिन सूझ पढ़ तिमिर लागी॥ २॥
अगम रस राह गुर संत बिन अंत ना।
जक्त मतिमंद का संग त्यागी ॥ ३॥
खोल के चसम लख खसम को खोज ले।
जान भ्रम खान भौ भीख माँगी॥ ४॥
दास तुलसी घर घट्ट में खोज ले।
पट्ट के खुले से सुरत लागी॥ ५॥

(शब्दावली भाग पहला रेखता १२)

वेद पुरान और कुरान इन सबका अध्ययन करके देख लो कि इनको रचने वाले आचार्य मालिक को नेति नेति करके ही भागे हैं यानी उनको सच्चे मालिक का सही ज्ञान न होने से मालिक को नेति नेति कहकर अपना पीछा छुड़ाया। १।

सब पंडित उन ग्रंथों को पढ़कर उनका प्रमाण देते हैं। सत्य बात न जानने से उनकी बुद्धि पर तिमिर छा रहा है। २।

गुरु और संत की मदद के बिना तथा जगत के मतिमंद जीवों का संग त्यागे बिना अगम रस को प्राप्त करने की जो अंतिम राह है वह प्राप्त नहीं हो सकती। ३।

अपने नैनों को खोल कर देखो और मालिक को खोजो। संसार भ्रम की

खान है और संसारी लोग भिखारी हैं, ऐसा बूझो। ४।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अंतर में खोज करो। जब परदा हटेगा, सुरत शब्द से जा मिलेगी। ५।

॥ शब्द ५७ ॥

वेद मत मूढ़ ठहरावै, संत मत गूढ़ नहिं पावै॥
पड़ै भ्रम जाल के मूला, वेद बस कर्म के सूला॥ १॥
करै आली इष्ट मन रच के, मुये भ्रम भाव सब पच के॥
जीवत कोई दरश नहिं पावै, मुये पर मुक्ति गोहरावै॥ २॥
अली यह जगत सब अंधा, पड़े बस काल के फंदा॥
कहन नहिं संत की भावै, बाट कहो कौन विधि पावै॥ ३॥
भूल जुग चार से आई, खानि बस मैल मन माहीं॥
भटक नर देह अब आया, ज्ञान चित चीन्ह घर पाया॥ ४॥
गहे सत संत के चरना, निकर भौ सिंध से तरना॥
समझ लख जीव को काजा, मरे सब जक्त की लाजा॥ ५॥
तुलसी तन छूट जब जावे, बहुरि नर देह नहिं पावे॥
पाहन और इष्ट पानी का, झूठ भ्रम खान जाने का॥ ६॥
निकर निरवार नहिं पावै, समझ सतसंग से आवै॥
जगत दिन चार का सँग है, भीख भौ खान में मँगि है॥ ७॥

(शब्दावली भाग पहला रेखता ८)

मूर्ख लोगों को संतों के मत की जो गूढ़ बातें हैं, खबर नहीं पड़ी और वेदशास्त्र में अटके हुए हैं। वह भर्म में डूबे हुए हैं। वे वेद के बस होकर कर्मों के शूल सहते हैं। १।

जैसा मन चाहता है वैसा इष्ट वे धारण करते हैं। वह भरमों में पच मरते हैं। जीते जी तो किसी को मुक्ति नहीं मिलती पर कहते हैं कि मरने पर मुक्ति मिलेगी। २।

हे सखी! सब जगत अंधा है। सब काल के फंदे में पड़े हैं। संतों का कहा हुआ किसी को नहीं भाता। फिर उन्हें सत्य का मार्ग कैसे मिले? ३।

चारों जुगों से वे भूल में पड़े हैं और खानों में भरमने के कारण मन मलीन हो रहा है। तरह-तरह की योनियों में भटक कर अब नर देही मिली है। अपने हृदय में ज्ञान का प्रकाश करके उन्होंने अब अपने घर को पहचाना है। ४।

अब वे संतों के चरनों को दृढ़ कर पकड़ते हैं क्योंकि भौसागर को पार करने का यही उपाय है। उन्हें यह जान पड़ा कि लोग जगत की लाज में मर रहे हैं। ५।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि यह नर शरीर छूट जाने पर दुबारा नहीं मिलेगा। पत्थर (की मूर्ति) और पानी (नदी के पानी) का इष्ट झूठा है और यह आवागमन में भरमाने वाला मार्ग है। ६।

इस प्रकार के कृत्यों से यहाँ से छुटकारा नहीं होगा। सच्ची समझ सतसंग से आवेगी। जगत में रहना चार दिनों का है। उसके बाद तुम फिर भिखारियों की तरह चारों खानों में भरमोगे। ७।

॥ शब्द ५८ ॥

वेद पुरान सब झूठ का खेल है, लूट बदफ़ेल सब खोसि खाया ॥ १ ॥
भया मन जोश भौ भागवत पढ़े से, चढ़ा मन ज्ञान का मान आया ॥ २ ॥
अगम की राह का खोज कीन्हा नहीं, रोज रस ज्ञान बस लोभ माया ॥ ३ ॥
सुनें जजमान परमान गये खान में, मुक्ति नित कहत भई भूत काया ॥ ४ ॥
दास तुलसी टुक जीभ के कारने, अल्प सुख मान फिर नरक पाया ॥ ५ ॥

(शब्दावली भाग पहला रेखता १६)

वेदों और पुराणों में वर्णित बातों से जीव का कल्याण नहीं होता है। उन्होंने जीवों को सही मार्ग नहीं बताया यानी अवतारों और देवताओं की पूजा करना, बाहरमुखी कार्रवाईयाँ करना, जप, तप संजम यज्ञ आचार तीर्थ व्रत व मंदिरों, मूर्तियों और जड़ पदार्थों की पूजा करना सिखाया और आडम्बर व झूठी टेक पक्ष बँधवाई। इस तरह उन्होंने जीवों को लूट लिया यानी उनकी चैतन्यता

इन असार कार्रवाइयों में खर्च करवा कर क्षीण कर दी और उन्हें सत्य परमार्थ के मार्ग से विचलित कर दिया। १-२।

इस संसार में भागवत की कथा पढ़ने से मन में जोश पैदा होता है और मन अभिमान से भर जाता है कि उसे ज्ञान प्राप्त हो गया। ज्ञान प्राप्त करके भी, उसने मालिक के लोक में जाने की खोज नहीं की और लोभ व माया के वशीभूत होकर, थोथे ज्ञान की बातों में रस लेता रहा। ३।

कहते हैं कि ये ग्रंथ सुनने से जीव को मुक्ति मिलती है, किन्तु जिन गृहस्थियों ने ये ग्रंथ सुने, वे चार खान में चले गये। इसका प्रमाण यह है कि उन्हें भूत की जून मिली। ४।

तुलसी साहब कहते हैं कि थोड़े से जीभ के स्वाद की खातिर, यानी इन ग्रन्थों के पठन पाठन से उसे अल्प सुख मान कर जीव उद्धार नहीं प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि वे नर्क जाते हैं, जहाँ भारी दुख भोगना पड़ता है। ५।

॥ शब्द ५९ ॥

पूजा और सेवा कर घंट बजावे।
कर कर पाखंड लोग बहुत रिझावे॥ १॥
तन के तत मंदिर को देखो जाई।
आतम सा देव जाहि पूजो भाई॥ २॥
पाहन की मूरत का झूँठ पसारा।
पूजें मूरख बेहोश जनम बिगारा॥ ३॥
अरधे और उरधे बिच कर ले मेला।
तुलसी मुश्ताक मेहर अद्भुत खेला॥ ४॥

(शब्दावली भाग पहला गजल १०)

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि लोग बावले मंदिरों में जाकर मूर्ति पूजा व सेवा करते हैं और वहाँ पर घंटा बजाते हैं और अनेक तरह के पाखंड व ढोंग करते हैं और कई प्रकार के स्वाँग व झाँकियाँ बना कर लोगों को आकर्षित व प्रसन्न करते हैं। १।

वे असली परमार्थ से भटके हुए व दूर हैं। हे भाई! अपना तन ही सच्चा मंदिर है। उसमें प्रवेश करके देखो कि वहाँ पर आत्मा रूपी देव विराजमान है, उसकी पूजा करो। २।

पत्थर की मूर्ति की पूजा करना और अन्य बाहरमुखी कार्रवाईयाँ करना, मिथ्या व असार है। जो लोग उनकी पूजा करते हैं, वे मूर्ख और अचेत हैं। उन्होंने अपना मनुष्य जीवन मुफ्त में बरबाद कर दिया। ३।

तुलसी साहब कहते हैं कि यदि तुझे मालिक की मेहर प्राप्त करने और इस अद्भुत खेल को देखने का विशेष शौक है, तो अर्ध और उर्ध यानी घट और औघट के बीच, अपने अंतर में, जहाँ शब्द की धार आ रही है, उससे मेल व सम्पर्क कर ले, तो तेरा कारज बन जावेगा। ४।

॥ शब्द ६० ॥

जग पंडित और भेष जोगी नहिं जानै।
जग इन्द्री रस भोग सकल इन्द्री सुख माने॥
संग्रह त्यागन झूठ सकल यह मन का खेला।
अरे हाँ तुलसी यह कर्म भर्म में जीव फिर फिर पेला॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल २३)

अड़ियल मन (काल) ने जीवों को भरमा कर करम भर्म के जाल में फंसा रखा है। यह संसार और पंडित, भेख, जोगी भी इसको नहीं जान पाये। सभी संसारी लोग इन्द्रियों के रसों और भोगों में लिप्त होकर सुख मान रहे हैं और सांसारिक पदार्थ धन वगैरा का संग्रह कर हर्षित हो रहे हैं।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि संसार और इसके भोग रस सब नाशमान हैं और इनमें सुख नहीं है। यह तुम्हारे मन ने तुमको भरमा दिया है और कर्म पर कर्म कर संसार में पच खप रहे हैं। अतः इस संसार के निमित्त कर्म करना छोड़ो। निःकर्म होने का जतन करो।

॥ शब्द ६१ ॥

शास्तर वेद पुरान पढ़े व्याकरण अठारा।
पढ़ पढ़ मुए लबार संत गति नाहिं विचारा ॥ १ ॥
घर घर कथा पुरान जान कर लोभ बड़ाई।
अरे हाँरे तुलसी कुटुम्ब काज पचमरे।
पेट भर साँच न आई ॥ २ ॥

(शब्दावली भाग पहला कुंडलियाँ २४)

तुमने चारों वेद और अठारह पुरान व व्याकरण आदि धर्म ग्रंथ पढ़े और अनेक बार पढ़ पढ़ कर खप गये, किन्तु उनमें तुम्हें सत्य परमार्थ व गूढ़ तत्व का भेद नहीं मिला। तुम लबार यानी झूठे और गप्पी हो। तुमने इस बात पर तनिक भी विचार व गौर नहीं किया कि संतों की गति यानी पहुँच सर्वोच्च है बल्कि तुम घर घर जाकर पुरानों की कथाऐं पढ़ते रहे और लोभ व मान बड़ाई हासिल करते रहे। १ ।

तुलसी साहब कहते हैं कि तूने कुटुम्ब परिवार की भलाई के लिये तो जी तोड़ मेहनत की, किन्तु सत्य परमार्थ की खोज के लिए कुछ नहीं किया। २ ।

॥ शब्द ६२ ॥

ब्रह्मा विश्नु महेश शेष सब बाँधे तानी।
नारद सुखदेव व्यास फाँस कर डारे खानी ॥ १ ॥
हनूमान और जनक विभीषन बचे न भाई।
अरे हाँरे तुलसी ऋषि मुनी को गिने।
काल धर सबको खाई ॥ २ ॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल २०)

ब्रह्मा विष्णु महेश और शेष भी बंधनों में बँधे हुए हैं। नारद सुखदेव और व्यास को भी काल ने फँसा कर चारों खानों यानी आवागमन में डाल दिया है। १ ।

हे भाई! काल के चंगुल से हनुमान, जनक और विभीषण आदि भी नहीं बचे। २ ।

तुलसी साहब कहते हैं कि ऋषि और मुनी तो कोई गिनती में ही नहीं हैं, काल सबको पकड़ कर खा जाता है।

॥ शब्द ६३ ॥

वेदान्त में ब्रह्म बखान कहे, बिन संत न हाथ कछु आवता है॥ १॥
जड़ चीन्ह चेतन्य का भेद लखे, जड़ गाँठ खुले तब पावता है॥ २॥
तुलसीदास आकाश के पार चढ़े, सोइ पूरन ब्रह्म कहावता है॥ ३॥

वेदान्त में भी ब्रह्मा ने कहा है कि बिना संत के कुछ प्राप्त नहीं होता है और जब जड़ और चैतन्य का भेद संत बताते हैं, तब जड़ और चैतन्य की गाँठ खुलती है, यानी तीसरे तिल पर सुरत, मन और माया इन तीनों की गाँठ लगी है। इनमें सुरत चैतन्य है और मन व माया जड़ हैं। इस तरह जड़ और चैतन्य की गाँठ तीसरे तिल पर लगी है, जिसका भेद व लखाव संत ही बता सकते हैं। तभी आगे का मार्ग खुलता है। तुलसी साहब कहते हैं कि तभी जीव तीसरे तिल को पार करके चैतन्य आकाश में चढ़ सकता है और पूरन ब्रह्म पद प्राप्त कर सकता है। १-३।

॥ शब्द ६४ ॥

अरे संत सुपन्थ का अंत लखें, जोग ज्ञान में ध्यान नहिं आवता है॥ १॥
अलक्ख खलक्क की गम्म नहीं, सो झलक्क पलक्क में पावता है॥ २॥
तुलसीदास लखे कोई सूर पियारा, सुर्त शब्द सिहार निहारता है॥ ३॥

संत वही हैं, जो अंत पद यानी धुर धाम का भेद बताते हैं। वे योगाभ्यास या ज्ञान की बातों की तरफ ध्यान नहीं देते हैं। १।

काल व उसकी रचना की गति जहाँ नहीं है, संत की दया और मेहर से जीव वहाँ की झलक एक पल में पा सकता है। २।

तुलसी साहब कहते हैं कि कोई शूरवीर और संत का प्रेमी भक्त ही, सुरत शब्द योग के द्वारा, उस दृश्य को ध्यानपूर्वक देख सकता है। ३।

॥ शब्द ६५ ॥

नर को यही ठाट बैराट बनो, अस श्रीमत में कहो व्यास बखाना ॥ १ ॥
दुतिया असकंध में बूझ विचार, नहीं कहो पूजन काठ पषाना ॥ २ ॥
गीता में भाष कही भगवान, सो धर्म तजा निज मोहिं पिछाना ॥ ३ ॥
पूरन ब्रह्म वेदांत कहे, तुहि आप अपनपौ आप भुलाना ॥ ४ ॥
पाहन पूजन जनम गयो, कुछ सूझ पड़ी नहिं लाभ न हाना ॥ ५ ॥
आसा से जाय बसे जड़ में, जब अंत समय जड़ माहिं समाना ॥ ६ ॥
वेद की रीत से प्रीत करी, कर्म कांड रचे बहु जनम सिराना ॥ ७ ॥
यह तत ज्ञान कहै तुलसी, तैं पत्थर में परमेश्वर जाना ॥ ८ ॥

(शब्दावली भाग पहला सवैया २)

नर देही की बड़ी भारी महिमा है। नर देही में ही भगवान श्रीकृष्ण ने बैराट रूप धारन किया था, ऐसा वेद व्यास जी ने भी श्रीमद् भागवत में वर्णन किया है। दूसरे स्कंध पुरान में भी काठ और पत्थर की मूर्ति की पूजा करने के लिये कहीं नहीं लिखा है। यह बात तू भली प्रकार विचार करके समझ ले। १-२।

गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो सब धार्मिक रस्म रिवाज व कार्रवाइयाँ त्याग कर मेरी सरन में आ गया, उसी ने मुझे पहचाना है। "सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज"। वेदान्त में भी कहा है कि नर तन के द्वारा साधना करके पूर्ण ब्रह्म पद प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु तूने तो अपने आप को ही भुला दिया, यानी तू अपने आपको ही नहीं पहचानता है। "आप आपको आप पिछानो, कहा और का नेक न मानो॥" १-३।

तेरा पूरा जीवन पत्थर की मूर्ति की पूजा करते बीत गया, किन्तु अभी भी तुझे समझ नहीं आई कि इससे तुझे लाभ हुआ या हानि। संसार की चाहों और कामनाओं को भोगते भोगते तू भी जड़ बन गया यानी तू ने अपनी चैतन्यता क्षीण कर दी। अतः अंत समय यानी मृत्यु के बाद तुझे जड़ में ही बासा मिलेगा। कहा है "अंत मता सो गता।" ४-६।

तुलसी साहब कहते हैं कि तूने वेदों में बताई कर्म कांड की विधि से प्रीत की है यानी कर्मकांड की कार्रवाई ही की है और इस तरह अनेक जन्म बिता दिये और तुमने पत्थर की मूर्ति में ही परेमश्वर जाना है, किन्तु मैंने तुझे तत्व ज्ञान यानी असली व सत्य भेद बता दिया है। ७-८।

॥ शब्द ६६ ॥

पंडित भल चारों वेद पढ़े ॥ टेक॥
गीता ज्ञान भागवत बाँची, जहाँ मछली तहाँ लेत खड़े॥ १॥
कर अस्नान अचार रसोई, हाँड़ी भीतर हाड़ सड़े॥ २॥
भोजन कर जजमान जिमाये, दछिना कारन जाय अड़े॥ ३॥
बकरा मार भवानी पूजें, मूँड़ टका बिन गाज पड़े॥ ४॥
यह अनीत आसा तन खोया, पण्डित नर्क से नाहिं कढ़े॥ ५॥
चार बरन में ऊँचे ठिकाना, जग में मोटे कहत बड़े॥ ६॥
ब्रह्म चीन्ह सोइ ब्राह्मण कहिये, गज़ब जहन्नुम जाय गड़े॥ ७॥
तुलसी पाप पुन्य के मैले, दान धरम मद मोह मढ़े॥ ८॥

(शब्दावली भाग पहला सिंह सम्वाद शब्द २)

पंडित भले ही चारों वेदों को पढ़ लें, किन्तु उससे क्या होता है? वे गीता, ज्ञान की पुस्तकें और भागवत भी पढ़ते हैं, किन्तु मछली खरीदने के लिये इधर उधर या ऐसी वैसी जगह खड़े हो जाते हैं। १-२।

वे स्नान करके यानी बाहरी सफाई करके और लोक धर्म के अनुसार यानी पूरी छुआ छूत के साथ भोजन बनाते हैं और अपनी हाँडी में माँस पकाते हैं। वे स्वयं मांसाहार करके फिर यज्ञ करने वालों को भोजन कराते हैं, किन्तु उन्हें दक्षिणा देने में आनाकानी करते हैं। वे बकरे की बलि देकर भवानी की पूजा करते हैं, किन्तु एक टका दक्षिणा देने में मानो उनके मुँडाऐ सिर पर बिजली गिरती हो, यह अन्याय है। उनके तन में अनेक चाहें भरी हुई हैं, ऐसे व्यक्ति पंडित होते हुए भी नर्क में जा गिरते हैं निकालने पर भी नहीं निकाले जा

सकते हैं। चार वर्ण यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में वे अपने को सबसे उत्तम मानते हैं और संसार में महान कहलाते हैं। ३-६।

तुलसी साहब कहते हैं कि ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को पहचानता है, किन्तु ये पंडित तो पाप पुण्य कर्मों में पड़े हुए और दान व धर्म करके उसके अभिमान व मोह में ओत पोत हैं और भयानक नर्क में जाकर ऐसे गड़ जाते हैं कि वहाँ से निकलना मुश्किल है। ७-८।

संत मत का गूढ़ रहस्य

॥ शब्द ६७ ॥

अली इक बात सुन सुल्टी, बिना समझे लगै उल्टी॥
कही सब संत ने बोली, गूढ़ मत गुप्त नहिं खोली॥ १॥
सुरत मन बुद्ध नहिं जावै, लखन में कौन विधि आवै॥
अरी नहिं वेद ने जाना, कहत कर नेत गुहराना॥ २॥
जुगत जोगी नहीं जानी, ज्ञान नहिं ध्यान विज्ञानी॥
जगत और मेष नहिं जानै, पढ़े पंडित्त भरमानै॥ ३॥
सकल त्रैलोक लौं गावै, निरंजन जोत ठहरावै॥
अगम रस राह नहिं सूझै, संत मत कौन विधि बूझै॥ ४॥
अस्त रवि होत अँधियारा, हिये तम रूप में सारा॥
मिलै गुरु गैल बतलावै, तिमिर तन बीच से आवै॥ ५॥
लखै तब संत के बैना, सुरत सुरमा खुले नैना॥
तरक ताली खुले ताला, निरख तहँ होत उजियाला॥ ६॥
अधर घर सुरत चढ़ धावै, अगम गति गूढ़ तब पावै॥
सुरत जब उलट कर बूझा, उलट सब सुलट कर सूझा॥ ७॥
तुलसी तन बीच में हेरा, सुरत मन बुद्धि को फेरा॥
कहन कुछ और विधि गावै, उलट की सुलट कर भावै॥ ८॥

(शब्दावली भाग पहला रेखता ७)

एक सखि दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी! एक सही बात सुनो जो अगर समझ में न आवे तो उल्टी मालूम होती है। संतों ने जो गूढ़ भेद कहा है उन्होंने उसे छिपा कर कहा है, खोल कर नहीं कहा। १।

वहाँ मन और बुद्धि की गम नहीं है। फिर वह कैसे समझ में आवे? हे सखी! उस भेद को वेद भी नहीं जानता, वह उसे नेति नेति कहता है। २।

इसकी जुक्ति जोगियों को भी नहीं मालूम पड़ी। यह ज्ञान, ध्यान, विज्ञान के परे है। इसे जगत के जीव और भेख नहीं जानते। पंडित भी पढ़ पढ़ कर भरम रहे हैं और ज्योति को ही सच्चा मालिक समझ कर उसकी महिमा गाते हैं। उन्होंने अगम रस की प्राप्ति की राह को नहीं जाना तो फिर उन्हें संतमत कैसे समझ में आवे? ४।

सूर्य छिप गया है। अंधेरा छा रहा है। तन में भी तम छाया हुआ है। अगर गुरु मिलें तो वह निज घर में जाने की राह बतावें और तब तन के अंदर का अंधेरा दूर हो। ५।

तब संतों ने जो बचन कहे हैं, समझ में आवें। अगर सुरत का सुरमा लगाओ तो तुम्हारे नैन खुलें। अगर तुम संसार की कुंजी छोड़ दो तो घट का ताला खुले और तुम्हें अंतर का नूर दिखाई दे। ६।

सुरत जब दौड़ कर अधर घर में पहुँचे और तब तुम्हें अगम गति का भेद मालूम पड़े। सुरत जब यहाँ से उलटे तब वह भेद को समझे। जो पहले उल्टा यानी गलत और खराब मालूम होता था वह सुरत के उलटने पर सुलटा अर्थात् सही और अच्छा मालूम पड़ेगा। ७।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अगर कोई तन के अंदर देखे तो मन बुद्धि सही रास्ते पर आवें। जो जाहिर में उल्टा या ग़लत मालूम होता है वह सुलटा यानी ठीक मालूम पड़े। बिना अपने अंदर में रुख़ करे, ठीक कही हुई बात भी कुछ और ही दरसती है। ८।

॥ शब्द ६८ ॥

संत मता है सार और सब जाल पसारा।

परमहंस जग भेष बहे सब मन की लारा॥ १॥
संत बिना नहिं घाट बाट एको नहिं पावे।
अरे हाँरे तुलसी भटक भटक भ्रम खान।
संत बिन भव में आवे ॥ २॥
(शब्दावली भाग पहला अड़ियल १५)

संत मत ही सच्चा व असली है। संसार के और सभी मत जाल फैलाने वाले और जीव को उसमें फँसाने वाले हैं।

संसार में परमहंस और भेष धारी साधू, सभी लोग मन के कहे अनुसार चलते हैं और भव सागर की गहरी धारा में बह जाते हैं। संत की दया और मेहर के बिना, एक भी न तो अंतर में घाट पा सकता है और न बाट पा सकता है, यानी संत की दया के बिना कोई भी अंतर में चाल नहीं चल सकता और चलने के लिये मार्ग नहीं पा सकता है। १।

तुलसी साहब कहते हैं कि संत के बिना, जीव भरमों में भटक भटक कर चार खान में चले जाते हैं, और बार बार जन्म धारण कर इस संसार में आते हैं। २।

॥ शब्द ६९ ॥

गति को लख पावे संत की ॥ टेक॥
लखन अरूप रूप दरसावत, अगम सुनावत अन्त की॥ १॥
तूल मूल अस्थूल लखावत, ख़बर जनावत कन्त की॥ २॥
दृढ़ कर डगर डोर समझावत, तुरत सुझावत पंथ की॥ ३॥
भव भुवंग तज पार चढ़ावत, सत मत नाव अतंत की॥ ४॥
भेष भये सब साध कहावत, भाषत साख जो ग्रन्थ की॥ ५॥
शिष्य करें गुरू घाट न जानें, तुलसी नहिं गति होत मंहत की॥ ६॥
(शब्दावली भाग दूसरा सारंग १)

संत की सर्वोच्च पहुँच को कोई नहीं जान सकता है। वे अरूप हैं यानी निराकार हैं, फिर भी संत सतगुरू रूप धार कर जीवों को दर्शन देते हैं, और अंत पद यानी धुर धाम का भेद सुनाते हैं। १।

वे मूल यानी असल व निज स्थान सत्तलोक, तूल यानी चैतन्य आकाश या ब्रह्मांड और स्थूल पिंड लोक की पहचान बताते हैं और मालिक का भेद देते हैं। २-३।

वे जीवों को संसार रूपी भयंकर सर्प से छुड़वा कर और उन्हें संत मत रूपी नाव में चढ़ा कर पार लगा देते हैं यानी उनका उद्धार कर देते हैं। ४।

जो भी भेषधारी हैं वे सब साधू कहलाते हैं और वे केवल ग्रंथों यानी धार्मिक पुस्तकों में लिखी हुई बातों का ही प्रमाण देना जानते हैं। ५।

वे गुरू बनकर, शिष्य तो बना लेते हैं, किन्तु अंतर में गुरू का घाट यानी त्रिकुटी तक का भी भेद वे नहीं जानते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि ऐसे महन्तों का कभी उद्धार नहीं होता है। ६।

॥ शब्द ७० ॥

अगम गढ़ राह का किला चढ़ तोड़िया।
नृपति मनराय दल मोह मारा॥ १॥
ज्ञान कासिद विवेक नाकी बने।
जबर सतसंग दी खबर सारा॥ २॥
क्षमा संतोष वैराग दल दया का।
घुरे निस्सान चढ़ किला घेरा॥ ३॥
सुरत चढ़ बुरज की सुरंग में धस गई।
गरज गिरनार बल बुरज ढारा॥ ४॥
पाँच पच्चीस मन मोरचा मिट गये।
मोह मन जकड़ जंजीर डारा॥ ५॥
सत्त का अमल दल सुरत की हाकिमी।
हुकुम जहँ होत है शब्द न्यारा॥ ६॥
दास तुलसी गई फतह कर अगम को।
सुरत सजि मिली जहँ प्रीतम प्यारा॥ ७॥

(शब्दावली भाग पहला रेखता २१)

सुरत अगम गढ़ की राह के बुर्ज़ पर चढ़ी और उसे तोड़ा। वहाँ पहुँच कर नृपति की सेना को और मन के दल, मोह आदि को मारा। १।

ज्ञान उसका दूत और विवेक उसका संतरी बना। इन्होंने ज़बर सतसंग के माध्यम से भेद खोला। २।

क्षमा संतोष वैराग और दया का दल लेकर किले पर चढ़ाई की और उसको घेर लिया और फ़तह का नगाड़ा बजाया। ३।

सुरत बुर्ज़ पर चढ़ कर उसकी सुरंग में धँसी और गरज का बुर्ज़ और पहाड़ को गिरा दिया। ४।

पाँच दूत, पच्चीस प्रकृतियाँ और मन की मलीनता इन सब को दूर किया और मन के मोह अंग को जंजीर से जकड़ दिया यानी वश में कर लिया। ५।

वहाँ सत्त का राज्य है और सुरत की शक्ति का अधिकार है। अनुपम शब्द जो कि "मालिक का हुक्म" है, उस देश में गाज रहा है। ६।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सुरत अगम को फ़तह कर वहाँ पहुँची और सज सँवर कर अपने प्रीतम से मिली। ७।

॥ शब्द ७१ ॥

ढिंग है पूरन वस्तु कसद कोइ ना करे।
गुरु संत बिन भेद पार कैसे परै॥
पढ़ि पढ़ि वेद पुरान ज्ञान कर कर मुये।
अरे हांरे तुलसी कथा सुनै सोइ जौन पौन भूते भये॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल १४)

पूरण वस्तु जीव के पास ही है लेकिन उसे कोई प्राप्त करना नहीं चाहता। गुरु और संत के बिना भव सागर के पार जाना कैसे हो सकता है? १।

वेद पुरान और ज्ञान की पुस्तकें पढ़ पढ़ कर सब मर गये। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो वेद पुरान और इस तरह की पुस्तकों की कथा सुनते हैं वह बजाय मुक्ति पाने के भूत प्रेत की योनि में जाते हैं। २।

॥ शब्द ७२ ॥

हक्क हजूरी संत पंथ कोइ रहै न भाई।
सत साहब सिरदार और कोइ दूजा नाई॥
कागज स्याही कलम रहै नहिं लिखने हारा।
अरे हांरे तुलसी आदि अंत नहिं हता नहीं सत असत पसारा॥
(शब्दावली भाग पहला अड़ियल १७)

जब न सत्य था न संत थे न कोई पंथ था, तब केवल सच्चे कुल्ल मालिक आप थे, और कोई नहीं था। १।

उस समय न कागज़ था, न स्याही, न कलम और न कोई लिखने वाला था। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि तब न आदि था न अंत था न सत्य असत्य की रचना थी। २।

॥ शब्द ७३ ॥

नीच ऊँच नहिं देख पेख सब एक पसारा।
नहिं ब्राह्मण नहिं शूद्र नहीं क्षत्री कोइ न्यारा॥
नहीं वैस की जात सकल घट एक पसारा।
अरे हांरे तुलसी जो कर जाने दोय खोय तिन जनम बिगारा॥
(शब्दावली भाग पहला अड़ियल १८)

ऊँच नीच का भेद मत करो क्योंकि सब एक मालिक के पैदा किये हुए है। न कोई ब्राह्मण है न कोई शूद्र और न कोई क्षत्रिय और वैश्य है क्योंकि अंतर में सब एक ही हैं। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो इनमें भेद करते हैं वे अपना जीवन बिगाड़ते हैं।

॥ शब्द ७४ ॥

छिन छिन सुरत सँवार लार दृग के रहो।
तन मन दरपन माँज साज सुर्त से गहो॥
लगन लगे लख पार सार तब पाइया।

अरे हांरे तुलसी संत चरन की धूर नूर दरसाइया॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल २८)

सुरत को सम्हार कर नैनों में बसो। अपने तन और मन के दर्पण को सुरत से मांजो और सँवारो। १।

अगर अंतर में तुम्हारी लगन लग जाय तो तुम्हें पार दिखलाई दे और सत्य का भेद जान पड़े। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अगर तुम संतों के चरनों की धूर हो जाओ तो तुम्हें नूर दिखाई दे। २॥

॥ शब्द ७५ ॥

जिन जिन सुरत सँवार काल डर ना रही।
चढ़ी गगन पर धाय पाय पति पै गई॥
लिया अगमपुर धाम जाय पिउ भेटिया।
अरे हांरे तुलसी जनम जनम भ्रम भाव दाव दुख मेटिया॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल २९)

जिसने अपनी सुरत को सँवारा उसको काल का डर नहीं रहा। सुरत चढ़ी और गगन पर पहुँच कर तुरन्त अपने पति यानी मालिक से मिली। १।

सुरत अगमपुर में पहुँचकर अपने प्रीतम से मिली। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि तब उसके जन्म-जन्म के भर्म और दुख तकलीफ जाते रहे। २।

॥ शब्द ७६ ॥

ठौर ठिकाना ठाँव गांव पिया को कही।
निरंकार के पार वहाँ तुलसी रही॥
सत्तनाम सुख धाम अमरपुर लोक है।
अरे हांरे चौथा पद जद जाय संत सोई कहै॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल ३०)

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अब वे अपने पिया का ठौर ठिकाना और

गाँव का वर्णन करते हैं। वे फ़रमाते हैं कि उनका प्रीतम ब्रह्म के परे है। १।

सत्तनाम देश अमर और सुख का धाम है। जो कोई चौथे पद यानी सत्तनाम सत्तलोक में पहुँचा वही संत है। २।

॥ शब्द ७७ ॥

संत सरन जो पड़ा ताहि का लगा ठिकाना।
और कहूँ नहिं कुशल सकल बैराट चबाना ॥ १ ॥
काल संत से डरे सीस चरनन पर डारा।
अरे हाँरे तुलसी बिना संत नहिं ठौर।
और कहुँ नाहिं उबारा ॥ २ ॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल ३०)

जो जीव संत की चरन सरन प्राप्त कर लेता है उसका निश्चित ही उद्धार हो जाता है और वह अपने निज घर में पहुँच जाता है। अन्य कोई स्थान सुरक्षित नहीं है क्योंकि काल समस्त बैराट यानी पिंड अंड और ब्रह्मांड में जीवों को चबाये जा रहा है।

काल केवल सन्तों से डरता है और उनके पवित्र चरनों में मस्तक झुकाता है। तुलसी साहब कहते हैं कि संतों की दया और मेहर के बिना कोई जीव सुरक्षित नहीं है और उसका उद्धार नहीं हो सकता है। २।

॥ शब्द ७८ ॥

सुर ज्ञान के मान से खान पड़े, मन दासता होय सो पावता है॥ १ ॥
पढ़ जान के नीच निहार लखे, सोइ ज्ञान का मूल कहावता है॥ २ ॥
तुलसीदास जग आस को दूर करे, सोई संत की बात चित लावता है॥ ३ ॥

(शब्दावली भाग पहला झूलना ३२)

ज्ञान की बातें केवल सुनने से, मन में भारी अभिमान पैदा हो जाता है, जिससे जीव को चारों खान में भटकना पड़ता है, किन्तु जिस मन में दास भाव है, यानी अभिमान नहीं है, वह सुनकर भी ज्ञान की बातें ग्रहण कर लेता है। १।

जो ज्ञान की बातें पढ़ कर निबल और नीचे गिरे हुओं पर दया करता है, वही ज्ञान का असली स्वरूप है। २।

तुलसी साहब कहते हैं कि ऐसे जीव संसार के सुखों की चाह नहीं रखते हैं और वे ही संतों का उपदेश ग्रहण करते हैं। ३।

॥ शब्द ७९ ॥

आदि अंत सब संत सत्त कर कहत सुनाई।
अगम निगम का भेद देत घट में दरसाई॥ १॥
संत बिना नहिं पार सार को कहै ठिकाना।
अरे हांरे तुलसी सुरत चढ़ी आकाश फोड़ कर गई निशाना॥ २॥

(शब्दावली भाग पहला)

सब संत फरमाते हैं कि सत्तनाम सबका आदि और अंत है। वे जीवों को अपने घट में वेदों और शास्त्रों का भेद दरसाते हैं। १।

सतों के बिना मुक्ति नहीं मिलती क्योंकि सार वस्तु का भेद और कौन दे सकता है? तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सुरत जब चढ़ कर आकाश को पार करके आगे जाती है तब वह अपने निशाने पर पहुँचती है। २।

॥ शब्द ८० ॥

भगी सुरत घट माहिं जाय जो देखा भाई।
सुखमनी सेज सँवार सुन्न में सुरत लगाई॥ १॥
मुकर माहिं दीदार दरश कीन्हा सोई जानै।
अरे हांरे तुलसी ज्यों स्वातीं की बूंद सीप विरहन पहचाने॥ २॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल ३२)

सुरत दौड़ कर घट में गई। वहाँ जो उसने देखा उसे वही जानती है। सुखमन की सेज को सँवार के सुरत सुन्न में पहुँची। १।

मुकुर में दीदार प्राप्त होता है। जिसे यह दर्शन मिला, वही जानता है। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि स्वाँति बूंद की महिमा कोई विरहिन सीप ही जानती है। २।

॥ शब्द ८१ ॥

रात दिवस कर खोज रोज रस ज्ञान सुनावै।
घट घट उठै अवाज तास कोउ भेद न पावै॥ १॥
पिंड माहिं ब्रहमंड सकल विधि रहा समाई।
अरे हांरे तुलसी खोल हिये की आंख संत दीन्हा दरसाई॥ २॥

(शब्दावली भाग पहला अड़ियल ३३)

अपने अंतर में निरंतर खोज करो। तब तुम्हें रोज़-रोज़ रसीला शब्द सुनाई देगा। हर एक के अंतर में शब्द हो रहा है पर उसका भेद कोई नहीं जानता। १।

सब विधि ब्रह्मांड पिंड में समा रहा है अर्थात् ब्रह्माण्ड यानी समूची आकाशीय रचना पिंड यानी नर तन में ज्यों की त्यों विराजमान है। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अपने हृदय की आँख खोलो तो तुम्हें संत सब दिखला दें। २।

॥ शब्द ८२ ॥

संतन का प्यारा यार न्यारा भाई।
जहँ नहिं बैराट खोज निरगुन पाई॥ १॥
ब्रह्मा और वेद नहिं जानें भेवा।
शंकर और शेष नहीं जाने देवा॥ २॥
जोगी और ऋषी मुनी पहुँचे नाहीं।
सिमरित और शास्तर की कौन चलाई॥ ३॥
जहाँ जोती निज निराकार कोई न जावे।
संत पंथ राह सोई अगम कहावे॥ ४॥
ब्राह्मन और पंडित जग जीव बिचारा।
जाने क्या भीख मानुष पेट सँवारा ॥ ५॥
जग का मल मैला मानुष जनम बिगारा।
बही बही सब बैल भये भव की धारा॥ ६॥
निरगुन और सरगुन का नाहीं खेला।

संत पन्थ तुलसी कहै अगम अकेला॥ ७॥
(शब्दावली भाग पहला गज़ल २५)

संतों का देश सबसे अलग, न्यारा व निराला है और उसका मार्ग भी अत्यन्त कठिन है। हे भाई! कोई संतों का प्यारा और बिरला भक्त ही उसे प्राप्त कर सकता है।

वहाँ पर बैराट रुप अथवा निरगुन निराकार का भी कोई गम नहीं है और न उसका भेद ब्रह्मा व वेद जानते हैं। १-२।

जोगी, ऋषि और मुनि भी वहाँ नहीं पहुँच सके, फिर स्मृतियों और शास्त्रों की कोई गिनती ही नहीं है। वहाँ पर ज्योति और निरंजन कोई भी नहीं जा सकते हैं। संतों का वह मार्ग अगम है यानी वहाँ किसी की भी पहुँच नहीं है। ३-४।

ब्राह्मण, पंडित और जगत के निर्बल जीव, इन बातों को क्या जानें वे तो भीख माँगकर अपना पेट पालते हैं। उन्होंने सांसारिक सुखों और विषय भोग की कामना (जो विकार हैं) करके अपना मनुष्य जीवन बरबाद कर दिया। वे सब भव सागर की प्रबल धारा में बह गये और उन्हें पशु योनि मिली। ५-६।

तुलसी साहब कहते हैं कि सन्तों का देश सरगुन और निरगुन से परे व आगे है और सबसे न्यारा है। ७।

॥ शब्द ८३ ॥

गगन मंडल के बीच में झिलमिल झलकत नूर।
झिलमिल झलकत नूर सूर कोई बिरला पावै॥ १॥
करे तत्त का खोज नहीं चौरासी जावै।
सतगुरु मिलैं दयाल भेद सब उनसे पावै॥ २॥
करै संत की टहल महल की खबर लखावै।
तुलसी मुर्दा जब बनै तब पावै गुरु पूर॥ ३॥
गगन मंडल के बीच में झिलमिल झलकत नूर।

(शब्दावली भाग पहला कुंडलिया ३४)

गगन मंडल अर्थात् चैतन्य आकाश में मालिक का अक्षय नूर झलकता है जिसका दर्शन, कोई विशेष भक्त ही पा सकता है। १।

अगर तुम सत्य का खोज करो तो तुम्हारा चौरासी से छुटकारा हो जावे। जब सतगुरु दयाल मिलें तो उनसे सब भेद मालूम हो। २।

जो संत की सेवा करेगा उसे निज घर का भेद मिलेगा। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मृतक अर्थात् सच्चा भक्त होने पर जीव पूरे गुरु को पा सकता है। ३।

॥ शब्द ८४ ॥

संत का भेद अभेद अपार, सो सार वहि वहि देश को जाने॥ १॥
सूरत सैल से केल करे, सो अकेल अपेल की साख बखाने॥ २॥
वेद पुरान नहीं मत ज्ञान, सो जोगी को ध्यान न पहुँचे निदाने॥ ३॥
ताको कहे तुलसी विधि खोल, सो संत बिना नहिं भेद पिछाने॥ ४॥
(शब्दावली भाग पहला सवैया ३५)

सत्तदेश का भेद कोई नहीं जानता है। वह देश अपार है। जो मूल तत्व की बात यानी असली जौहर की बात जानता है वही उस सत्तदेश को जान सकता है। १।

सुरत त्रिकुटी से क्रीड़ा करती हुई जब सत्तदेश में पहुँचती है तो वह साक्षी बन सकती है कि वह देश सबसे न्यारा और अटल है। २।

वेद, पुरान और ज्ञान मत भी उस देश का भेद नहीं बता सकते हैं और जोगी भी ध्यान करके वहाँ तक नहीं पहुँच सके। ३।

तुलसी साहब कहते हैं कि उसका भेद खोल कर संतों ने ही बताया है और वे ही उस भेद को जानते हैं। ४।

॥ शब्द ८५ ॥

अली री अकाश सुरत सजि चाली॥ टेक॥
उड़ उड़ बिहँग चढ़त नभ नाली।

भाली भलक भयो उजियास॥ १॥
दृग दीपक मंदिर उजियाली
लाली लाल फैल चहुँ पास॥ २॥
उमँगी सुरत प्रेम प्रण पाली।
माली मीन जल सींच हुलास॥ ३॥
तुलसी रंग रूप रस डाली।
हाल होत हिये ब्रह्म बिलास॥ ४॥

हे सखी! मेरी सुरत सज सँवर कर आकाश को चली। पक्षी की तरह आकाश मार्ग में उड़ी जहाँ भाले की चमक की तरह उजाला है। १।

उसकी आँखों ने दीपक के समान मंदिर में उजाला किया और प्रीतम का लाल रंग चारों ओर छा गया। २।

यह लीला देखकर सुरत उमंग से भर गई और प्रेम के प्रण को निभाया। प्रेम रुपी पानी से सींचने से वह मछली की तरह मगन हुई। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि रंग रुप और रस को प्रयोग करने से उसे अपने अंतर में ब्रह्म का आनंद मिला। ४।

नाम व शब्द की महिमा

॥ शब्द ८६ ॥

नाम लो री नाम लोरी, ऐसी काहे सुरत सुधि भूली री॥ टेक॥
बाद विवाद तजो बहु बायक, नाहक दुख सहौ सूली री॥ १॥
काल कराल भुलावत करमन, भ्रम तज भज पद मूली री॥ २॥
बीतत जन्म नाम बिन लानत, चालत मेटि अदूली री॥ ३॥
स्वाँस स्वाँस जावे तन तुलसी, क्यों भव सिंध सँग फूली री॥ ४॥

(शब्दावली भाग दूसरा कानरा ख़्याल १)

मालिक का नाम जपो, जरुर मालिक का नाम जपो। तुम नाम को इस कदर क्यों भूल रहे हो? वाद विवाद छोड़ो। वृथा क्यों सूली का कष्ट सहते हो? १।

यह काल कराल तुम्हें कर्मों में भुला रहा है। भरम को छोड़कर मूल नाम को जपो। २।

लानत ऐसी जिंदगी पर जो नाम के बिना बीत रही है। इससे तुम सत्य मार्ग से भटक जाओगे। ३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि यह शरीर प्रत्येक स्वाँस के साथ क्षीण हो रहा है। तुम भला इस भौसागर में क्यों फूल रहे हो? ४।

॥ शब्द ८७ ॥

शब्द साख भाषत भये, तन बीत सिराना हो॥ टेक॥
भेष पंथ भूले फिरें, कोइ मरम न जाना हो॥
सुन्न शहर सत द्वार में, चढ़ श्रुति असमाना हो॥ १॥
नभ निवास न्यारी भई, मारग पहिचाना हो॥
पछिम पार पट खोल के, खिड़की नियराना हो॥ २॥
होत जोत जगमग लखे, आतम दरसाना हो॥
कँवल केल आगे चली, दल द्वै दिखलाना हो ॥ ३॥
परमातम पद परस के, लख पुर्ष पुराना हो॥
अगम गली आगे चली, अली आदि अनामा हो॥ ४॥
तुलसीदास दुरबीन में, कौइ संत समाना हो॥
अगम निगम गम गाय के, जिन भाष बषाना हो॥ ५॥

शब्द की महिमा गाते गाते, जन्म अकारथ ही बीत गया, किन्तु किसी ने भी शब्द का सार भेद नहीं जाना। भेष भी सत्य पंथ को भूलकर इधर उधर भटकते फिरते हैं। १।

सुरत, राह रकाना लेकर यानी मार्ग की जानकारी प्राप्त करके, चैतन्य आकाश में चढ़ती हुई जब सुन्न व सत्तलोक के द्वार में प्रवेश करती है, तब वह शब्द की महिमा जानती है। वह नभ यानी त्रिकुटी में कुछ विश्राम करती है फिर वहाँ से वह न्यारी होकर, सुन्न लोक को प्रस्थान करती है। फिर वह

पश्चिम पार यानी सुन्न पार, पर्दा हटाकर भँवरगुफा की खिड़की के निकट पहुँचती है। २।

इस मार्ग को तय करने लिये, सबसे पहले सुरत, दो दल कँवल यानी तीसरे तिल को पार करके सहसदस कँवल में पहुँचती है, जहाँ वह जगमग ज्योति के दर्शन करती है और बिलास करती हुई आगे चलती है। वह सत्तलोक में पहुँचकर परमात्म पद को स्पर्श करके, सत्तपुरुष का दर्शन करती है, जो प्राचीन पुरुष हैं। फिर वह अगम गली यानी अगम लोक से आगे चलकर आदि और अनामी पुरुष (राधास्वामी) से मिलती है। ३-४।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि कोई बिरले संत ही अगम पुरुष से दुरबीन यानी दिव्य दृष्टि प्राप्त करके, अनामी पद यानी राधास्वामी धाम में समाते हैं। अन्यथा अधिकांश साध महात्मा सुन्न और महासुन्न तक पहुँचकर रह गये और इसलिये उन्होंने तो अपनी भाषा बानी में वहाँ का वर्णन किया है यानी वहाँ तक का ही भेद खोला है। ५।

सतगुरु और उनके दर्शन की महिमा

॥ शब्द ८८ ॥

पिया दरस बिना दीदार दरद दुख भारी।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी॥ टेक॥
क्या जनम लिया जग माहिं मूल नहिं जाना।
पूरन पद को छाँड़ किया जुलमाना॥
जुग जुग में जीवन मरन आज नर देही।
सुख सम्पत्ति में पार पुरूष नहिं सेई॥
जग में रहना दिन चार बहुर मरना री।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी॥ १॥

प्रीतम के दर्शन के बिना, आँखें तड़पती हैं और मन में भारी दुख है। बिना सतगुरु के, जीवों का संसार में जीना धिक्कार व लानत के योग्य है। यदि सार व सत्य का भेद नहीं जाना तो इस संसार में जन्म लेकर आना ही वृथा है।

पूरन पद यानी सत्तलोक छोड़ कर इस संसार में आकर इसने अपने जीव के प्रति जुल्म व अत्याचार ही किया है, यानी इसने अपने जीव के कल्याण के लिये कुछ नहीं किया और असंख्य युगों तक जन्म मरन के चक्कर और आवागमन में घूमता रहा। अब सौभाग्य से इसे नर देही मिली है किन्तु सुख और धन सम्पत्ति प्राप्त करके इसने सतगुरु की सेवा नहीं की। अब संसार में जीवित रहने के लिये चन्द दिन ही बचे हैं, इसके बाद इसे फिर मरना पड़ेगा, यानी जन्म मरन के चक्कर में फिर जाना पड़ेगा।

॥ शब्द ८९ ॥

यह नर तन दुर्लभ माहि हाय नहिं लाई।
जाले अँखियों में पड़े करम दुखदाई॥
पिया है हर दम हिय माहि परख नहिं पाई।
बिन सतगुरु कहो कौन कहे दरसाई।
खोजत रही री दिन रात ढूँढ़ कर हारी।
बिन सतगुरु के ॥ २ ॥

नर देही बहुत मुश्किल से मिलती है। नर देही पाकर भी इसने अपने गुनाहों और पाप कर्मों के लिये पश्चाताप नहीं किया। यह अज्ञानी व अन्धा ही रहा और अपने पाप कर्मों के दुख भोगता रहा। प्रीतम अपने अंतर में बिराजते हैं, यह परख पहचान और ज्ञान इसे नहीं मिला। सिवाय सतगुरु के यह ज्ञान कौन बता सकता है? अज्ञानी जीव सतगुरु को निरन्तर खोजता रहा, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली और बिना सतगुरु के, इसका जीवन धिक्कार व लानत के योग्य है। २।

अरी यह मिट्टी तन साज समझ बिनसेगा।
छिन में छूटे बदन काल गिरसेगा।
आसा बंधन जग रोज जनम धरना री।
यह दुख सुख बेड़ी विषम भोग करना री॥
भुगते चौरासी खान जुगन जुग चारी।

बिन सतगुरु के॥ ३॥

यह तन मिट्टी का बना हुआ है और माया, उसके सब साज और सामान भी नाशमान हैं। इसलिये इन सबका निश्चित ही नाश होगा और तन से प्राण निकलते ही, काल आत्मा को तत्काल ही पकड़ लेगा। जीव संसार की चाहों और आसाओं से बँधकर बार बार जन्म लेता रहेगा और मरता रहेगा। इस संसार में दुख सुख की भारी बेड़ी है और इनके भोग दुखदाई हैं और चारों युगों में बल्कि कई युगों तक चौरासी खानों में भुगतता रहेगा, क्योंकि बिना सतगुरु के इस ससांर में जीवन धिक्कार व लानत योग्य है। ३।

सुत मात पिता नर पुरुष जगत का नाता।
यह सब संशय का कोट कुटुम दुख दाता।
टुक जीवन है जग माहिं काल की बाजी।
इन बातों में नहिं परम पुरुष है राज़ी।
पिउ परमारथ सँग साथ सहज तरना री।
बिन सतगुरु॥ ४॥

माता पिता पुत्र पति इत्यादि का नाता तो इस संसार में जब तक जीवित है तब तक ही है, मरने के बाद सब सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। परिवार व कुटुम्ब के सब लोग दुख देने वाले हैं और वे अनेकों संशय व भ्रम उठाते रहते हैं। इस संसार में जीवन चन्द दिनों का ही है और काल ने यहाँ पर जीव के साथ कई चालबाजियाँ की हैं। राधास्वामी दयाल इन सब बातों से प्रसन्न नहीं हैं, वे केवल इस बात से प्रसन्न हैं कि जीव सतगुरु के संग रह कर परमार्थी करनी करे यानी भजन ध्यान सुमिरन व सतसंग करे, जिससे उसका उद्धार सहज में हो जावे। बिना सतगुरु के इस संसार में जीवन धिक्कार व लानत के योग्य है। ४।

कोई भेंटे दीन दयाल डगर बतलावें।
जेहि घर से आया जीव तहाँ पहुँचावें॥
दरशन उनके घट माहिं करें बड़ भागी।
उनके तरने की नाव किनारे लागी।

कहिं वे दाता मिल जाँय करें भौ पारी।
बिन सतगुरु के ॥ ५ ॥

यदि भाग से सतगुरु दीन दयाल जीव को मिल जावें तो वे उसे सत्य परमार्थ का मार्ग बता देते हैं और जीव को अपने निज घर में पहुँचा देते हैं, ऐसा बड़भागी जीव उनके दर्शन अपने अंतर में करता है और वे उसको भवसागर से पार करने के लिये नाव किनारे पर लगा देते हैं। वे सतगुरु दाता, ऐसे भाग्यशाली जीव को ही मिलते हैं और उसे संसार सागर से पार लगा देते हैं यानी उसका उद्धार कर देते हैं। बिना सतगुरु के इस संसार में जीवन धिक्कार व लानत के योग्य है। ५ ।

सतसंग करना मन तोड़ सरन संतन की।
अंतर अभिलाषा लगी रहे चरनन की॥
सूरत तन मन से साँच रहे रस पीती।
कोइ जावे सज्जन कुफ़र काल को जीती।
अमृत हरदम कर पान चुए चौधारी।
बिन सतगुरु के ॥ ६ ॥

जब जीव को सतगुरु दीन दयाल मिल जावें तो उसे चाहिये कि उनकी सरन ग्रहण करके और अपने मन को वश में करके उनका सतसंग करे और उनके पवित्र चरन प्राप्त करने की अभिलाषा अपने में बनाए रखे। तब ही उसकी सुरत, उसके तन मन से न्यारी होकर सत्य आनन्द प्राप्त करेगी और ऐसा भाग्यशाली जीव ही नास्तिक काल को जीत सकता है और अमृत की धार जो निरन्तर बह रही है, उसका सदा पान कर सकता है। ६ ।

सतसंग मारग की प्रीत रीत जिन जानी।
उन सज्जन पर हूँ बार बार कुरबानी।
निस दिन लौ लागी रहे रमक रस राती।
मतवारी मज्जन मुकर मनोरथ माती।
ऐसे जिनके सरधान सुरत बलिहारी।
बिन सतगुरु के ॥ ७ ॥

ऐसा श्रेष्ठ व अधिकारी जीव, जो सतसंग करने की विधि जानता है और जिसे सतसंग से प्रीत है, उस पर मैं बारम्बार कुरबान जाता हूँ। उसकी सुरत रात और दिन शब्द में लीन रहती है और उसका आनंद प्राप्त करती है, जब तक कि तन में तनिक भी स्वाँसा रहती है। ऐसी सुरत जो शब्द रस में मतवाली है, आइने के समान निर्मल है और उसे मनोवाँछित फल प्राप्त होता है। ऐसी श्रद्धावान सुरत पर मैं बार बार बलिहार जाता हूँ। ६।

अलि जो समरथ के साथ सरन में आई।
सो सूरत परम बिलास करे घट माहीं॥
पिउ प्यारी महल मिलाप रहे दिन राती।
तुलसी पट भीतर केल करे पिय साथी॥
सुख सम्पत्ति क्या कहुँ चैन चरन पर वारी।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी। ८।

जो सुरत सर्व समर्थ सतगुरु की सरन में आ गई वह अपने अंतर में परम आनन्द प्राप्त करती है। वह प्रीतम की प्यारी सुरत है। तुलसी साहब कहते हैं कि वह प्रीतम के महल में रात और दिन उनके पवित्र चरनों में लीन रहती है और वह प्रीतम के साथ आनन्द बिलास करती है। वह इस संसार के समस्त सुख धन सम्पत्ति और चैन, प्यारे प्रीतम के पवित्र चरनों में अर्पण कर देती है और सतगुरु के बिना, वह इस संसार में जीना, धिक्कार व लानत के योग्य समझती है। ८।

॥ शब्द ९० ॥

काल कर्म की उपाध, साध सुर्त को लगाय के॥ १॥
कृष्ण कौड़न औतार, राम कोटिन भये छार।
वेद ब्रह्मा नहिं पार, मार मार लिये खाय के॥ २॥
देवन में महादेव, विष्णु नहिं जाने भेव।
करत काल जाल सेव, बाँधे जम धाय के॥ ३॥

संतन के बिना साथ, उबरे नहिं कोटि भाँत।
मारे जम जुगन लात, तुलसी तरसाय के॥ ४॥

साध और संत अथाह होते हैं, यानी वे धीर गंभीर होते हैं और उनकी गति कोई नहीं पा सकता है। वे अपनी सुरत को समेट कर अंतर में शब्द की धुन सुनने में लीन रहते हैं, जिससे काल और कर्म की उपाधि यानी लड़ाई झगड़े उत्पात, उपद्रव इत्यादि उन्हें नहीं सताते हैं। १।

राम और कृष्ण ने करोड़ों बार अवतार लिया, किन्तु उनके अवतार लेने से क्या है, क्योंकि वे तथा वेदों में ब्रह्मा भी साध व संत का भेद नहीं पा सके और काल निरन्तर जीवों को मार मार कर खाता रहा। २।

देवताओं में शिव और विष्णु भी उनका भेद नहीं जानते हैं। वे काल की ही सेवा करते हैं और उसकी आज्ञा में बँधकर दौड़ते रहते हैं। ३।

तुलसी साहब कहते हैं कि काल युगों युगों से जीवों के लात मारता रहा है। सिवाय सन्तों की दया मेहर और सहायता के, जीवों का किसी भी अन्य रीति से उद्धार नहीं हो सकता है। ४।

॥ शब्द ९१॥

साध संत से उपाध, रहत वेश्या के साथ।
बड़ा कुटिल है कुपाथ, चले पन्थ न निहार के॥ १॥
करमन के मैले, और विष रस के पेले।
सो ऐसे हरामखोर दोजख में परत हैं॥ २॥
देखत के नीके, और करनी के फीके।
सो काढ़ काढ़ टीके, उपद्रव को खड़े हैं॥ ३॥
खोट मोट मानी, आठों गाँठ के हरामी।
सो ऐसे कुटिल कामी, काम रागहू से भरे हैं॥ ४॥
देखत के ज्ञानी, कूर खान की निशानी।

अधम ऐसे अभिमानी, सो जान हान करत हैं॥ ५ ॥
साँचे संसार लार, संतन से फेर फार।
तुलसी मुख परत छार, छली छिद्र भरे हैं॥ ६ ॥
(शब्दावली भाग पहला कवित्त २)

वे साध संत से बैर विरोध रखते हैं और वैश्या गामी हैं, वे दुष्ट और कुमार्गी हैं और सत्पथ पर नहीं चलते हैं। वे भाग्यहीन हैं, यानी उनके पुण्य कर्म क्षीण हो गये हैं और वे विषय वासना और इन्द्रिय भोगों में लिप्त रहते हैं। वे पाप की कमाई खाने वाले हैं, इसलिये वे नर्क में जाकर गिरेंगे। १-२।

वे देखने में भले लगते हैं किन्तु परमार्थी करनी से खाली हैं। वे टीका निकाल कर बाह्य आडम्बर व ढोंग करते हैं और लड़ाई झगड़ा करने के लिये तैयार रहते हैं। ३।

वे बुराई व विकारों से भरे हुए हैं, अभिमानी हैं और हर प्रकार से बेईमान हैं। वे अत्यन्त धोखेबाज व काम वासना व सांसारिक सुखों की चाह रखने वाले हैं। ४।

वे देखने में तो ज्ञानी लगते हैं, किन्तु क्रूरता की खान हैं। वे पापी और घमंडी हैं और जीव हिंसा करने वाले हैं। ५।

वे संसार को सत्य मान कर व्यवहार करते हैं और संतों से कपट रखने वाले हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि ऐसे दुष्ट आदमियों के मुँह पर धूल पड़े, क्योंकि वे कपट और विकारों से भरे हुए है। ६।

॥ शब्द ९२ ॥

झँझरी पिया झाँक निहारी।
सखी सतगुरु की बलिहारी॥ १॥
दीना दृग सुरत सम्हारी।
पद चीन्हा पुरुष अपारी ॥ २॥
चली गगन गुफा नभ न्यारी।

जहँ चाँद न सुरज सिहारी॥ ३॥
तुलसी पिया सेज सँवारी।
पौढ़ी पलंगा सुख भारी॥ ४॥

मुझे झंझरी में से झांक कर पिया के दर्शन हुए। हे सखी! मैं सतगुरु पर बलिहार हूँ उनकी दया से मुझे दर्शन मिले। १।

उन्होंने मुझे आँख दी और मेरी सुरत की सम्हाल की। उनकी दया से मैं अपार पुरुष के पद का भेद जान सका। २।

मैं गगन की अनूप गुफा में गई जहाँ चांद सूरज की गम नहीं। ३।

तुलसी साहब फरमाते हैं कि सुरत ने अपने पिया की सेज सँवारी और पलंग पर जाकर भारी सुख प्राप्त किया।

॥ शब्द ९३ ॥

सतगुरु बिन ज्ञान, गई खान में जहाना॥ टेक॥
तीरथ और बरत न्हात, फिरत है जमाना।
कच्छ मच्छ जल जनम, आठ पहर का अन्हाना॥ १॥
शास्तर नर सार, सो व्योहार हूँ न जाना।
आतम तम रूप भूप भवन में समाना॥ २॥
ब्रह्मा बैराट नाभ, कँवल है पुराना।
सोई बैराट मनुष, देह को बखाना॥ ३॥
अगिन और आकाश पवन, बास में बंधाना।
जल थल तत पांच, तीन गुनन में रहाना॥ ४॥
उतपति बरबाद की, उपाधि को न जाना।
खोजे बिन साध, आदि अंत को भुलाना॥ ५॥
नर हर वेदान्त ब्रह्म, देत हैं लखाना।
तुलसी तत मूल छाँड़, पूजते पषाना॥ ६॥

सतगुरु के बिना ज्ञान, जीवों को चारों खानों में भरमाता है। लोग व्रत रखते और तीर्थों में स्नान करते हैं। कच्छ मच्छ की योनि में जन्म लेकर जल में हमेशा रहने से गोया आठ पहर का स्नान करना है। १।

शास्त्र कहते हैं कि नर शरीर उत्तम है पर मनुष्य ने यह नहीं जाना कि जीवन में कैसे बर्तना चाहिए। आत्मा जो कि इस नर शरीर में राजा के समान है, अंधेरे से घिरी हुई है और इस देह में कैद है। २।

पुरान कहते हैं कि ब्रह्म के बैराट स्वरुप का बासा नाभि कँवल में है और मनुष्य शरीर उस बैराट स्वरुप का प्रतिरूप है। ३।

जीव तीन गुन और पाँच तत्व यानी आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी में बँधा हुआ है। ४।

जीव ने जन्म वृथा खो दिया और उसके पीछे जो उपाधि लगी हुई है उसे नहीं पहचाना। साध को न खोजने से आदि और अंत को भूल गया। ५।

इसे नर रुप में हरि यानी गुरु और वेदान्त और ब्रह्म का भेद लखा दिया पर, तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि वह मूल तत्व को छोड़कर पत्थर को पूजता है। ६।

॥ शब्द ९४ ॥

अगम नहिं गुरु बिन सूझ पड़े ॥ टेक॥
चार वेद पढ़े पुरान अठारा, नौ षट खोज मरे॥ १॥
ज्ञानी भये भरम नहिं छूटा, झूंठा बाद करे॥ २॥
बीस बिस्वास आस करमन की, नहिं प्रण टेक टरे॥ ३॥
काल सनाथी जुग जुग खावै, चर और अचर चरे॥ ४॥
बिन सतसंग संत बिन, बेड़ी बिकट को बिपत हरे॥ ५॥
तज निज नेम अचार भार सिर, निर्मल धरन धरे॥ ६॥
कहें गुरु शब्द अकास बास पर, सूरत गगन चढ़े ॥ ७॥
तन बैराट जीव तरे तुलसी, सहजे भौ उतरे॥ ८॥

बिना गुरु की दया व मदद के, अगम की राह नहीं दिखाई देती है। चार वेद, अठारह पुरान, पाँच तत्व, तीन गुन और माया तथा छः शास्त्र (दर्शन शास्त्र, इन सब का गहरा अध्ययन व मंथन किया और ज्ञानी बन गये, किन्तु भ्रम व संशय नहीं मिटे और झूठा शास्त्रार्थ करते हैं। उनमें अनन्त चाहें भरी हैं और झूठी टेक व पक्ष पर अटल रहते हैं।

वे काल को ही भगवान मानते हैं, जो जुगान जुग से असंख्य चर व अचर जीवों को खा रहा है। १-४।

बिना सतसंग व संत की दया मेहर के, जीवों के बंधन और भयंकर विपत्ति कौन दूर कर सकता है? ५।

इसलिये नित नियम और आचार विचार यानी लौकिक धर्म का त्याग करके, इस नर तन को निर्मल बनाना चाहिये, अन्यथा ये सिर पर भारी बोझ के समान हैं। ६।

तुलसी साहब कहते हैं कि आकाश में गुरु संध हैं, यानी अंतर में तीसरा तिल है, वहाँ बसना चाहिये, अर्थात अपनी सुरत को समेट कर यानी एकाग्र करके, वहाँ स्थिर करना चाहिये, तब सुरत आगे चैतन्य मंडल में चढ़ेगी। इसके लिए नर तन उत्तम है, जिसके जरिये सहज ही भव सागर पार करके जीव का उद्धार हो सकता है। ७-८।

९५ बारहमासा लावनी

अली असाढ़ के मास बिरह उठ बादल घहराने॥
चहुँ दिस चमकै बीज बिकल पिया के बिन हैराने॥
ख़बर बिन धीरज नहिं आवे।
तन मन बदन बेहाल बिपत में नहिं कोइ कुछ भावे॥
कहूँ नहिं दिलदारन अटके।
हरदम पिया की पीर दरस बिन मन मोरा भटके॥ १॥

बिरहिन कहती है कि हे सखी! जैसे असाढ़ मास में बादल घुमड़ घुमड़ कर आते हैं और नभ में छा जाते हैं, वैसे ही प्रीतम के वियोग में विरह के बादल उठकर मेरे हृदय में छा गये हैं। चारों दिशाओं में बिजली चमक रही है जिससे मैं प्रीतम के बिना व्याकुल व परेशान हूँ। उनका कोई सन्देशा भी नहीं है, जिससे मेरा मन धीरज नहीं धरता है। मेरा मन व तन व अंग-अंग दुखी है और इस भयानक विपत्ति में मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। मैं क्या कहूँ और किसे सुनाऊँ? मेरे हृदय में भारी पीड़ा है और प्रति पल प्रीतम की याद सताती है और उनके दर्शन के बिना मेरा मन बार-बार इधर उधर भटकता रहता है।

सखी सावन के मास शोक में सुन्दर घबरानी।
रिमझिम बरसै मेह मोर दादुर की सुन बानी॥
जिगर अंदर जिव लहरावै।
तड़पै तन के माहिं हाय पिया खोजै कहाँ पावै॥
रही हिया में पिया को रटके, हरदम पिया॥ २॥

हे सखी! सावन जैसे सरस और सुखदायी मास में भी मैं घबराती रहती हूँ और मेरे हृदय में भारी दुख है। बाहर रिमझिम वर्षा हो रही है और मेंढक व मोर की बोली सुनाई दे रही है, किन्तु मेरे अंतर में बहुत तड़प व बेचैनी है। हाय! मैं प्रीतम को कहाँ ढूँढू, मेरा तन मन व्याकुल व व्यथित है। मैं रात दिन अपने हृदय से प्रीतम को याद करती रहती हूँ। उनके दर्शन के बिना, मेरे मन में भारी पीड़ा है और वह बार-बार इधर उधर भटकता रहता है।

भर भादों जड़ मेघ अखंडित बरसै जल धारा।
आवै पिया की पीर नीर नैनों बहै जल धारा॥
सुरख सब अँखियन में लाली।
मारे गोसा तान तीर हिये ज्यों कसके भाली॥
कलेजे अन्दर में खटके, हरदम पिया ॥ ३॥

पूरे भादों मास में वर्षा की निरन्तर झड़ी लगी हुई है और मेरी अँखियों से भी, प्रीतम के वियोग व विरह में, लगातार आसुँओं की धारा बह रही है और वे

सुर्ख लाल हो गई हैं। वियोग का दुख मेरे कलेजे में, जैसे भाला कसके मारते हैं, और जैसे धनुष को तानकर तीर मारते हैं, और जो भयंकर वेदना व पीड़ा होती है, वैसे ही हो रही है और वह हृदय में सालती है। उनके दर्शन के बिना मेरे हृदय में भारी पीड़ा है और वह बार-बार इधर उधर भटकता है।

ऋतु कुआर के मास आसा कागा सँग सुध बिसरी।
हंस सिरोमन मूल भूल से तज मेवा मिसरी॥
भरम संगत बिन कहँ पाऊँ।
बिन सतगुरु के बाट घाट पर चढ़ कैसे जाऊँ॥
सुरत मन क्यों करके लटके, हरदम पिया॥ ४॥

क्वार यानी आसौज मास में सुरत कौवों का संग करके यानी काग गति के जीवों की संगत में रहकर यह भूल गई कि वह सर्वोत्तम हंस गति की है और उसने मेवा मिश्री यानी सत्तदेश का आनन्द व सुख त्याग दिया है। वह कहती है कि बिना सतसंग के यह भेद मैं कहाँ से पाऊँ, यानी यह भेद सतसंग में ही मिल सकता है। बिना सतगुरु की दया मेहर के मेरे मन और सुरत अंतर में कैसे सिमटें और मैं मार्ग व मंजिलें पार करती हुई अपने असली घर में कैसे पहुँचू, जब कि उनके दर्शन के बिना मेरे हृदय में भारी पीड़ा है और वह बार-बार इधर उधर भटकता रहता है।

कातिक तिल के माहिं जाइ सोइ सुध बुध दरसावे।
अष्ट कँवल दल द्वार पार पद हद सब समझावे॥
सरन होय सतगुरु की चेली।
मैली बुद्धि निकार सार पावे जब लख हेली॥
चाँदनी हियरे में छिटके, हरदम पिया॥ ५॥

सुरत को उसकी सहेली समझाती है कि हे सहेली! कार्तिक मास लग गया है और तू अब तीसरे तिल में प्रवेश करके अंतर में चढ़ाई कर, तब तुझे सुध बुध आयेगी यानी तू भूल गई है कि तू सत्तपुरुष की अंस है और यह घर तेरा नहीं है। सब साध महात्मा योगी और ज्ञानियों ने पार ब्रह्म पद तक ही की

हद्द बताई है और वहाँ तक का ही भेद दिया है।

किन्तु तू अपनी कुबुद्धि त्याग कर सतगुरु की सरन ग्रहण कर ले और उनकी शिष्या हो जा तेरा अंतर प्रकाशित हो जावेगा।

अघ अगहन के मास पाप पुन सब जब जल जावे।
निर्मल नीर बनाय जाय सोई तिरबनी न्हावे॥
करम के भोग भरम छूटैं।
बिन त्रिबेनी अस्नान पकड़ जम धर घर के लूटैं॥
बचै नहिं कोई सब को पटके, हरदम पिया॥ ६॥

अगहन मास लग गया है, जब पाप कर्म क्षीण हो जाते हैं। सुरत, तीसरे तिल को पार करके, जब त्रिवेणी के घाट पर पहुँचेगी तो उसके निर्मल जल में स्नान करने पर उसके पाप और पुण्य कर्मों का नाश हो जावेगा, उसके सब संशय मिट जावेंगे और उसे कर्मों के भोग से छुटकारा मिल जावेगा।

बिना त्रिवेणी में स्नान किये, काल जीवों को पकड़ कर लूट लेता है और उनको पटक कर मारता है। उससे कोई जीव नहीं बच सकता है।

पूस पुरुष की आस बास नहिं जिव निस्तारा।
सतगुरु खेवट गैल गवन कर जब पावे पारा॥
मिलैं जब पिउ परसै प्यारी।
सुन्दर सेज बिछाय पिया सँग सोवे कर यारी॥
अरज कर प्रीतम से हटके, हर दम पिया॥ ७॥

पौष महीना लग गया है। मन में बिना सतगुरु की अभिलाषा लिये और उनकी सरन में गये, जीव का उद्धार नहीं हो सकता है। सतगुरु को अपनी नाव का खेवट बनाने पर ही परमार्थ के मार्ग पर चल सकता है और भव सागर पार कर सकता है। तब ही प्रीतम प्यारे मिल सकते हैं और सुरत उनके चरन स्पर्श कर सकती है और वह सुन्दर सेज बिछा कर अपने प्रीतम के संग आनन्द कर सकती है और उनसे हठपूर्वक प्रार्थना कर सकती है।

माघ मनोरथ प्रीत परम पद की सुध सम्हारी।
ऐसी होय कोई नारि जगत तज तन मन से न्यारी॥
सुरत की डोरी लौ लावे।
मूल मुकर की राह दाब कर सहजहि चढ़ जावे॥
कुमति कुनबे की बुधि झटके, हरदम पिया॥ ८॥

माघ महीना लग गया है। सुरत ने परम पद प्राप्त करने की मनोवांछित प्रीत सम्हाली यानी उसमें परम पद प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत हुई। किन्तु जो सुरत, तन और मन से अलग होकर और संसार के सुखों को त्याग कर ऐसी इच्छा करे, उसका मनोरथ पूरा हो सकता है। वह अपना ध्यान एकाग्र करके और दुर्बुद्धि व परिवार का मोह त्याग कर परमार्थ के मार्ग पर, अंतर में सहज ही ऊपर चढ़ सकती है।

फागुन फरक निकार यार सँग खेलै खुल होली।
आस अबीर उड़ाय गुनन की भर मारे झोली॥
अरगजा घिस चन्दन लेपै।
नील सिखर की राह सुरत चढ़ सुन्दर में चेपै॥
चरन में हित चित से गठके, हरदम पिया॥ ९॥

फागुन मास लग गया है, जो होली खेलने की ऋतु है। सुरत भी मन और माया के विकारों के समस्त परदे दूर करके यानी उनका नाश करके, सतगुरु के साथ खुलकर होली खेलती है यानी वह स्वतंत्र व निर्मल होकर होली खेलती है और इच्छा रूपी गुलाल और गुनों को झोली में भर भर कर मारती है यानी वह अपनी समस्त इच्छाओं और तीनों गुनों को सतगुरु के चरनों में अर्पित करती है। वह अरगजा यानी केसर चन्दन व कपूर से बना सुगंधित द्रव्य का लेपन करती है, यानी अपना सिंगार करती है। वह नील शिखर की राह होते हुए सुन्न में पहुँच कर विश्राम करती है और सतगुरु के पवित्र चरन ध्यान पूर्वक व प्रेम पूर्वक ग्रहण करती है।

चतुर सहेली चेत हेत हियरे से मन लावै।
पल पल पाले प्रीत रीत पिया को जो रस चावै॥
अमल कर होवै मतवारी।
नशा नैन के माहिं बिसर गई सुध बुध सब सारी॥
गरक डोरी बाँधे बटके, हरदम पिया॥ १०॥

सुरत प्रवीण है, इसलिये वह सचेत होकर प्रीतम प्यारे का प्रेम, पल पल अपने हृदय में संजोये रखती है और आनन्द प्राप्त करती रहती है। वह भजन अभ्यास में लीन होकर मतवाली हो जाती है और उसके नैनों में भजन का नशा यानी सरुर व मस्ती छा जाती है। वह सांसारिक सुध बुध यानी भोग बिलास व धन सम्पत्ति की चाह और पारिवारिक बन्धन सब बिसार देती है यानी त्याग देती है और डोरी के वजन बाँध कर उन्हें डुबो देती है।

बुन्द बैसाख की साख सिन्ध गत संतन ने गाई।
सुन के सज्जन होय समरु कर छाँई चुतराई॥
दीन दिल दुर्मत को छोड़े।
मन मकरन्द को जान मान तन मन को सब तोड़े॥
लहर सतसंग की जब चटके, हरदम पिया ॥ ११॥

सुरत सत्त पुरुष रुपी सिंध की एक बूंद है। वहाँ इसकी भारी प्रतिष्ठा थी, किन्तु संसार में आकर वह बेइज़्ज़त और बे-आबरु हो गई है। यह भेद व उपदेश सन्तों ने दिया है। इस भेद को सुनकर सज्जन इस पर मनन करते हैं और कपट पूर्ण व्यवहार व कुबुद्धि त्याग देते हैं। वे हृदय में दीनता धारण कर लेते हैं। जब सतसंग में सतगुरु जोर शोर से बचन फ़रमाते हैं और समझाते हैं कि मन रसों का रसिया है, तो सज्जन अपने तन व मन का अभिमान तोड़ देते हैं, यानी त्याग देते हैं।

ज़बर जेठ की रीत करे कोई किंकर जब होवै।
मन के विषम विकार काढ़ के तुलसी सब धोवै॥

भरम तज भक्ति भजन करना।
मन मूरख को बाँध पकड़कर जीवत ही मरना॥
निकल घट न्यारी होय फटके।
हरदम पिया का पीर दरस बिन मन मोरा भटके॥ १२॥

तुलसी साहब कहते हैं कि ब्रह्मांडी मन बहुत ताकतवर होता है, किन्तु जो सतगुरु का दास है वही उसे परमार्थ के मार्ग पर अपने साथ लेकर चलता है। वह पिंडी मन के समस्त विकार व बुराईयाँ भी धो डालता है और सभी संशय मिटा कर भक्ति व भजन में लीन रहता है। वही इस मूर्ख पिंडी मन को वश में करके जीवित ही मरने का अभ्यास यानी सुरत शब्द योग करता है और अपनी सुरत को तन व मन से न्यारी करके, अंतर में चढ़ाता है।

बारहमासा के अन्य रूप

॥ शब्द ९६ ॥

सत सावन बरषा भई, सुरत बही गंगधार।
गगन गली गरजत चली, उतरी भौजल पार॥ १॥
भादौं भजन बिचारिया, शब्दहि सुरत मिलाप।
आप अपनपौ लख पड़े, छूटें छल बल पाप॥ २॥
कुसल क्वार सतसंग में, रंग रँगो सतनाम।
और काम आवें नहीं, तिरिया सुत धन धाम॥ ३॥
कातिक करतब जब बने, मन इन्द्री सुख त्याग।
भोग भरम भवरस तजै, छूटै तब लव लाग॥ ४॥
अगहन अमी रस बस रहौ, अमृत चुवत अपार।
पाँइ परसि गुरु को लखौ, होय परम पद पार॥ ५॥
पूस ओस जल बुंद ज्यों, बिनसत बदन विचार।
तन बिनसे पावे नहीं, नर तन दुर्लभ छार॥ ६॥
माह महल पिया को लखो, चखो अमर रस सार।

वार पार पद पेखिया, सत्त सुरत की लार॥ ७॥
फिर फागुन सुन में तको, शब्दा होत रसाल।
निरख लखौ दुरबीन से, ज्यों मत मीन निहाल॥ ८॥
चैत चेत जग झूठ है, मत भरमो भव जाल।
काल हाल सिर पर खड़ा, छूटे तन धन माल॥ ९॥
सुनो साख बैसाख की, भाषि गुरुन गति गाय।
सब संतन मत की कहूँ, बूझें सत मत पाय॥ १०॥
जबर जेठ जग रीति है, प्रीति परस रस जान।
आन बात बस ना रहौ, सब मति गति पहिचान ॥ ११॥
जो असाढ़ अरजी करौ, धरो संत स्त्रुति ध्यान।
ज्ञान मान मति छांड़ के, बूझौ अकथ अनाम॥ १२॥
बारह मास मत भापिया, जानें संत सुजान।
तुलसिदास विधि सब कही, छूटै चारौ खान॥ १३॥
(शब्दावली भाग पहला बारहमासा पृष्ठ ९७)

सत्त यानी सत साहेब (तुलसी साहब) फ़रमाते हैं कि सावन में वर्षा होती है और सुरत की धार गंगा की धार की तरह गरजती हुई गगन की गली की ओर चलती है और भव जल के पार पहुँचती है। १।

भादों का महीना भजन में लगने का जिससे सुरत अपने पिया से मिलती है और अपने रूप को लखती है। सब छल बल और पाप नष्ट हो जाते हैं। २।

क्वार के महीने में जीव का भला इसी में है कि सतसंग करे और सत्तनाम के रंग में रँग जावे। सत्तनाम के अलावा और कोई जैसे तिरिया सुत धन धाम इत्यादि काम नहीं आवेगा। इनमें नहीं फँसना चाहिए। ३।

कार्तिक के महीने में इसका काम पूरा होगा, जब यह मन और इन्द्रियों के सुखों का परित्याग कर देगा। जब यह दुनिया के भरम और रस को छोड़ेगा तब इसकी संसार की लाग छूटेगी। ४।

अगहन में अमृत की अपार धार टपक रही है। उसके आनन्द में मगन रहो। गुरु के दर्शन पाकर और चरन स्पर्श कर भौसागर के पार परम पद में पहुँचोगे। ५।

पूस मास में इस बात को समझो कि शरीर पानी के ओले की तरह नाश होने वाला है। जब तन नाश हो जायेगा तो अपना उद्देश्य कैसे पाओगे? यह नर शरीर जो अति दुर्लभ है वृथा बरबाद जावेगा। ६।

माघ में पिया के महल को लखो और सच्चा अमर आनंद प्राप्त करो। तब तुम्हें सुरत से वह देश जो भौसागर के पार है, दिखलाई पड़ेगा। ७।

फिर फागुन मास में सुन्न में पहुँचकर उसे लखो जहाँ मधुर शब्द हो रहा है। दूरबीन से उसको निरखो और जैसे मछली पानी में मगन होती है उस तरह मगन होओ। ८।

चैत के महीने में चेतो और समझो कि यह जगत झूठा है। इसके जाल में मत फँसो और मत भरमो। काल तुम्हारे सिर पर घात करने को खड़ा है और एक दिन तुम्हारा तन और धन माल सब छूट जायेगा। ९।

बैसाख में जीवों की साख और दर्जे का हाल सुनो जो संत दया करके फ़रमाते हैं। मैं सब संतों के मत का वर्णन करता हूँ। अगर कोई संत मत को धारण करे तो वह मेरी बात समझ सकता है। १०।

जगत का हाल जेठ महीने की तरह तपन देने वाला और दुखदाई है। तुम इस बात को जानो कि शब्द के परस से प्रेम का सुख प्राप्त होता है। अन्य बातों के वशीभूत मत होओ और सत्त मत की गति को पहचानो यानी संत मत को बूझो। ११।

असाढ़ महीने में प्रार्थना करो और सुरत से संतों का ध्यान करो। बाचक ज्ञान में अहंकार की मति छोड़कर अकथ और अनाम मालिक को बूझो। १२।

मैंने जो कुछ बारह मास का वर्णन किया है उसे संत जानते हैं। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मैंने सब विधि बयान की है। उसके अनुसार जो चले, उसका चारों खान में भरमना छूट जायेगा। १३।

बारहमासी

॥ शब्द ९७ ॥

गुइयां री गुन मोह गिरा बिच मैं न रहूँगी ॥ टेक ॥

सवैया

अली असाढ़ के मास बिलास।
सो वास पिया बिन मोहिं न भावै ॥
गर्ज अकाश कि भास रबी।
छवि बादर की कहि, बात न जावै ॥
बिजली चमके घन घोर घटा।
घर घाट पिया कोउ नेक न पावै ॥
गोह गुना गिरि बीच बसी।
सो फँसी तुलसी चित चेत न लावै ॥

कड़ी

अगमन आयो असाढ़हिं मास।
गरजत गगन रवी तज भास ॥
भान घटा नभ नैन निहार।
सूरत समझ चली नभ पार ॥
पिय पद साज गहूँगी ॥ १ ॥

हे सखी, मैं तीन गुनों की बस्ती और राज्य में नहीं रहूँगी। बिना प्रीतम के, मुझे असाढ़ के सुहावने मास में कुछ सुख नहीं मालूम होता। आकाश गरजता है तो ऐसा लगता है मानो सूरज छिप गया और बादल की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। बिजली चमक रही है और बादलों की घोर घटा छा रही है। कोई पिया का भेद और घर का हाल नहीं जानता, जीव तीनों गुनों की हद में रहता है। तुलसी साहब फ़रमाते हैं, इसलिये वह फँसा हुआ है और चित्त में चेत नहीं लाता। प्रथम असाढ़ महीना आया। गगन गरजने लगा और सूर्य छिप

गया। सूर्य घटा और आकाश को देखकर सुरत नभ के पार हुई। सुरत सज कर आज पिया के चरनों को स्पर्श करेगी। १।

सवैया

सावन शोर करै वन मोर।
सो दादुर प्यास पपीहा पुकारी॥
ताल मही हरी भूमि भई।
सो नहिं कोइ पंछी न चोंच चुकारी॥
मैं मन में सुनके बिगसी।
जस ताल रबी बिच कंज सुखारी॥
जो तुलसी गुण माहिं रही।
सो भई जस साथ के संग दुखारी॥

कड़ी

सावन सरवर नीर अपार।
बरसत गगन अखंडित धार॥
गैल गली सब हरियल भूमि।
नील सिखर चढ़ी सूरत घूम॥
चमक बिजली की सहूँगी॥ २॥

सावन में मोर की भाँति मेरा मन शोर करता है। मेंढ़क पुकारता है और प्यासा पपीहा स्वाँति बूंद की रट लगाता है। तालाब जल से भर गये हैं और भूमि पर हरियाली छा गई है मगर चोंच से चीखने वाला कोई पंछी नहीं है। मैं अपने मन में शब्द को सुनकर प्रफुल्लित हुई जैसे तालाब में कँवल सूर्य को देखकर सुखी होता है। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो तीन गुनों के घेर में रहा, वह दुखी रहा जैसे दुर्जनों के संग से दुख होता है। सावन के महीने में सरोवर अपार जल से भरे हैं और मूसलाधार वर्षा हो रही है। सब भूमि और रास्तों में हरियाली छाई हुई है। सुरत नील शिखर पर चढ़कर सैर करती है और बिजली की चमक को झेलती है। २।

सवैया

भादों को भेद कहूँ जो निषेद।
सो खेद करम को काढ़ि निकारी॥
सूरत सूर भई मत पूर।
सो नागिन नारि डसी जस कारी॥
चेत चली सो अकाश अली।
सो गली गुन गोह में होत निनारी॥
जो तुलसी सुख नारि भई।
सो गई लै लार लगन के लारी॥

कड़ी

भादों भर्म भेद सब छूट।
काया कर्म कलस गये फूट॥
नागिन बिरह मूल डस खाई।
यह विधि सूरत गगन समाई॥
लगन सँग लार लरुँगी॥ ३॥

भादों मास में उन बातों का मैं जिक्र करता हूँ जो नहीं करनी चाहिये ताकि कर्मों का भेद दूर हो। सुरत जो विरह में व्याकुल थी मानो उसे काली नागिन ने डस लिया हो, अब सूर हो गई और उसे पूरी समझ प्राप्त हुई। वह अब चेत में आकर आकाश को चली जो कि तीन गुनों के घेर से भिन्न और न्यारा है।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि वह सुखी होकर प्रीतम के रंग में रंग गई। भादों में सब भर्म और स्वार्थी कार्रवाई जाती रही। कर्मों से भरा शरीर रूपी घड़ा फूट गया। विरह काली नागिन की तरह है जिसके डस लेने से सुरत व्याकुल हो रही है कि किस प्रकार अपने आदि धाम में पहुँचे। पिया के प्रेम में विकल होकर सुरत आकाश को चढ़ी और वहाँ समाई। ३।

सवैया

कूर कुवार कुमुति को जार।
सो बारि बनी सब खाक मिलाई॥
कूकर काम भये जो निकाम।
सो ठामहिं ठाम जो भूमि भुलाई॥
सुन सूरत भाल सो ताल भई।
गइ मानसरोवर पैठ अन्हाई॥
तुलसी सोइ सत्त के संग अड़ी।
सो खड़ी सुन शब्द में जाय समाई॥

कड़ी

कुमति कुँवार जार जस फूस।
कूकर काम रहे सब भूस॥
मानसरोवर सरस अन्हाई।
सूरत समझ चली रस पाई॥
शब्द सुन सार भरुंगी॥ ४॥

कुवार में कुमति के कूड़े को जलाकर खाक कर दो। नीच काम जो कुत्ते की तरह है अब बे-काम हो गया। इसने जीव को भुलाकर जगह-जगह भटकाया लेकिन अब वह शांत और स्थिर हो गया। सुरत तीर की तरह सुन्न में पहुँची और मानसरोवर में जाकर स्नान किया।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो सत्त के संग जुड़कर स्थिर हुई वही सुन्न के शब्द में समाई। कुवार कुमति को फूस की तरह जला दो। कामी कुत्ता सिर्फ भौंकता है, काटता नहीं। सुरत ने मानसरोवर में मगन होकर स्नान किया। रस पाकर आगे को चली और सच्ची समझ धारण की। उसने सुन्न के शब्द का भरपूर रस पिया। ४।

सवैया

कातिक किरन भये शशि सूर।
सो दूर भये दल बादल सारे॥
भूमि में थीर भये जल नीर।
सो सारे नदी स्त्रुत सिन्धु सम्हारे॥
सिंधहिं बुन्द मिले चढ़ चाल।
सो काल कला जम दूर निकारे॥
तुलसी जिन चाप धनू पै धरी।
सो करी सम सूरत संत पुकारे॥

कड़ी

कातिक किरन भास भये सूर।
सलितहिं समुन्द मिले जस मूर॥
बुंद सिंध बिन फिरत बेहाल।
मिल गया शब्द कटे जम काल॥
सुरत घर चाप चढूंगी ॥ ५ ॥

कार्तिक में सूर्य और चन्द्रमा चमक रहे हैं और बादल दूर हो गये। भूमि के ऊपर का जल शांत और स्थिर हो गया है। इसी तरह सुरत, नाले और नदी की तरह चैतन्यता के समुद्र में समाकर पूर्ण शांत और स्थिर हो गई। बूंद यानी सुरत चढ़कर सिंध से मिली और इस तरह काल की कला और यम को दूर किया। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि संतों का कहना है कि जिसने धनुष को खैंचा (यानी तीसरे तिल़ को पार किया जहाँ दोनों आँखों से धारें कमान की मुआफ़िक मिलती हैं) उसकी सुरत ने शांति और स्थिरता पाई। कार्तिक में सूर्य का प्रकाश उज्जवल हो जाता है। नदियाँ अपने भंडार समुद्र में मिल जाती है। बूंद यानी सुरत अपने चैतन्य सिंध के बिना बेहाल रहती है। जब सुरत का शब्द से मेला हुआ तो उसने यम और काल को जीत लिया। सुरत धनुष को खींचकर यानी तीसरे तिल को पार करके अपने निज घर में जायेगी। ५।

सवैया

अगहन मास अनंद अली।
सो चली पिया पास पलंग बिछाई॥
पायो पलक के पार पती।
सो सती सत सूरत सार लखाई॥
सेज मिलाप भयो पति आय।
सो जीवत जनम सुफल्ल कहाई॥
तुलसी मन में सुख चैन भई।
सो गई बर आदि सो साध समाई॥

कड़ी

अगहन अली पिया पलँग बिछाव।
जीवत जनम मिलो अस दाव॥
पिया की सेज सुख सज स्रुत सार।
नित प्रति केल करुं पति लार॥
अली बर आदि बरुँगी॥ ६॥

हे सखी! अगहन मास आनंद और हर्ष से भरा हुआ है। सुरत पलंग बिछाकर पिया से मिलने चली। पलक के पार पहुँच कर वह पति से मिली और पतिव्रता की तरह अपने वास्तविक रुप में प्रकट हुई। सेज पर उसका पति से मिलाप हुआ और जन्म सुफल हुआ। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जीव का मन सुखी और शांत हुआ और सुरत अपने सच्चे पति से मिली और उसकी इच्छा पूरी हुई। हे सखी! अगहन में अपने प्रीतम का पलंग बिछाओ। तुम्हें जीते जी नया जीवन पाने का मौका मिला है। पिया की सेज सुरत के लिये सच्चे सुख का भंडार है जहाँ पर अपने प्रीतम के साथ नित प्रति बिलास करेगी। हे सखी! वह अपने सच्चे प्रीतम को वरेगी। ६।

सवैया

पूस पुरुष की होश भई।
सो गई सतलोक में शोक सिहारी॥
प्यारी सखी गुर गैल गई।
सो कही पद प्यारे की चोज चिन्हारी॥
छाय रही सुन मंदर में।
घर घाट पिया लख बाट बिचारी॥
पिया रस रीत की जीत भई।
सो कही तुलसी जिन नैन निहारी॥

कड़ी

पूस परम पद पुरुष निवास।
स्रुति सतलोक करे नित बास॥
शिष गुरु गवन मिले मत पाय।
प्यारी पुरुष रही घर छाय॥
सखी सुख जान कहूँगी॥ ७॥

पूस में सुरत को अपने मालिक से मिलने की सुधि आई। वह सत्तलोक में पहुँची और उसके रंज व शोक दूर हुए। प्यारी सुरत गुरू के बतलाये हुए मार्ग पर चली और उसने प्यारे के धाम को चीन्ह कर उसकी सुंदरता और ख़ूबी की तारीफ़ की। उसने सुन्न मंडल में बासा किया। विचार करके बाट को लख कर उसे पिया का धाम प्राप्त हुआ। उसने पिया का आनंद लेने की रीति को चलाया। तुलसी साहब ने अपनी आँखों से देख कर यह हाल कहा। पूस में जीव सबसे ऊँचे लोक में बासा पाता है और सुरत नित्त सत्तलोक में रहती है। शिष्य आगे बढ़ता है, और गुरु से मिलता है जिनसे उसे सच्ची समझ प्राप्त होती है। प्यारी सुरत पुरुष के घर में निवास करती है। हे सखी! मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि इसमें बड़ा सुख है। ७।

सवैया

माघ मनोहर महल चढ़ी।
सो खड़ी खिड़की तक तोल बखानी॥
जान कही सोइ साध सुजान।
सो मानी जिनी सोई पास समानी॥
पानी पै दूध की छान करी।
सो भरी लख सूरत शब्द ठिकानी॥
जीवत ही मर जात सही।
सो कही तुलसी जिन भाख निशानी॥

कड़ी

माघ महल झँझरी चढ़ ताक।
पिया की सेज सुख सत सत भाख॥
कोइ कोइ सज्जन साध बिलास।
पहुँचै अगम पिया घर बास॥
कही जिन जिवत मरुँगी॥ ८॥

माघ मास में सुरत अपने मनोहर महल पर चढ़ी और खिड़की के पास खड़ी होकर उसमें से झाँक कर उसने अंदर का हाल विस्तार पूर्वक कहा। वही सुजान साध है जो अच्छी तरह जानकर हाल वर्णन करता है। सिर्फ वही जो उसकी बात को मानते हैं और उस पर चलते हैं, उसके पास जा सकते हैं। जो पानी में से दूध को छाँट सके, वह सचेत होकर सुरत को शब्द में लगा सकता है।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो जीवित ही मर जाय वह ऊँचे देशों का हाल वर्णन कर सकता है। माघ के महीने में सुरत झंझरी के महल पर चढ़ती है और अंतर में ताकती है। पिया की सेज सत्य सुख का भंडार है। कोई-कोई अधिकारी जीव जिन्हें साध संग के बिलास का अवसर मिला वह पिया के अगम घर में पहुँचे और वहाँ बासा किया। जिन्होंने यह सत्य भेद प्रकट किया उन्हें जीवित ही मरना पड़ेगा। ८।

सवैया

फागुन फहम करोरी सखी।
लख जात बह्यौ संसार असारा॥
सूरत सार के पार लखे।
सो थके मन मारग मौज अपारा॥
संत सिरोमन सैर कही।
सो गई गुर मारग संझ सवारा॥
प्यारे पिया को पकड़ के गही।
सो जकड़ हिये में जंजीरहि डारा॥

कड़ी

फागुन फर्क भयौ संसार।
जिन-जिन सुरत करी तन जार॥
सतगुरु मूल मता मुख बैन।
जब लख लखी संत की सैन॥
समझ सोइ पकड़ धरुंगी॥ ९॥

हे सखी! फागुन मास में विचार करो कि यह असार संसार बहा जा रहा है। इसके विपरीत सुरत सार के पार को देखती है। जो मन के कहे में चलते हैं वह रास्ते में थक जाते हैं और रुक जाते हैं। मौज ऐसी अपार है। संत जो सर्वगुणनिधान हैं फरमाते हैं कि जो सुबह शाम गुरु के बतलाये हुए मार्ग पर चलते हैं वे सैर का आनंद लेते हैं। उन्होंने गुरु के चरनों को दृढ़ कर पकड़ा जैसे जकड़ कर हृदय के आगे हार डाला जाता है। फागुन मास में उनका संसार से छुटकारा हो गया जिन्होंने अपने पिया की याद में तन को खाक कर डाला। सतगुरु अपने बचनों से सच्चे मत का भेद देते हैं। जब जीव सतगुरु के सैन को लखता है तब वह समझ कर उनके चरनों को पकड़ता है। ९।

सवैया

चैत चली सो सुनो री अली।
गइ गैल गली सुन रीत निहारी॥
सेत सरासर भेद लखी।
सो पकी विधि बेनी के घाट बिचारी॥
सारी सरोवर ताल तकी।
पक प्यारी अन्हाय के काज सम्हारी॥
जो तुलसी चढ़ के जो चली।
सो अली खिड़की विधि आन पुकारी॥

कड़ी

चेत चली जिन चरन निहार।
सो उतरी भौ सागर पार॥
आदि रु अंत पंथ घर बाट।
सो पद परस त्रिबेनी घाट॥
चीन्ह खिड़की को चहूँगी॥ १०॥

चैत मास में, हे सखी सुनो, सुरत आगे बढ़ी और मार्ग का भेद सुनकर और देखकर गली में होकर सुन्न में पहुँची। उसे सेत सरोवर यानी मानसरोवर का भेद प्राप्त हुआ और त्रिबेनी के घाट को देखकर उसने जो विधि धारण की वह दृढ़ हुई। उसने मानसरोवर पर व्यापक दृष्टि डाली और उसमें स्नान करके अपना काम पूरा किया।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सुन्न में जो एक खिड़की की तरह है और जिसमें सत्तलोक की झाँकी मिल सकती है, उसमें जो पहुँच जाता है वही उस देश में पहुँचने का भेद बतला सकता है। जिसने चेत कर गुरु के चरनों को ताका वह भौसागर के पार पहुँचा। वह आदि यानी सुन्न, अंत यानी मृत्यु लोक और बीच के सब घाट और पंथ को पार करके त्रिबेनी के घाट पर पहुँचेगा। सुन्न को जो दयाल देश में झाँकने की खिड़की है,चीन्ह कर वहाँ से दयाल देश को झाँकना चाहेगा। १०।

सवैया

बैन बिधी बैसाख बिलास।
सो पास पिया नित सेल सँवारे॥
यार के सार बिहार करे।
सो बिचार बिधी स्रुत तार निहारे॥
प्रीतम मेल भया रस केल।
सो केल किवार के पार पुकारे॥
तुलसी तन में जिन जान लखे।
सो भखे पिया पास के भास निकारे॥

कड़ी

करि बस बास बैसाख बिलास।
छूट गई तन मन की आस॥
प्रीतम प्यारी मिले मन खोल।
रँग रस रीत सुने सब बोल॥
पिया सँग केल करूँगी॥ ११॥

बैसाख में जीव गुरु के बचनों को सुनने का आनंद लेता है जिनमें परमार्थ की विधि कही है। वह इस तरह पिया के पास विहार करता है। वह प्रीतम के आनंद में समाया रहता है जिससे उसकी सुरत को विवेक व विचार की रीति का अनुभव होता है। प्रीतम से भेंट होने से बड़ा आनंद मिलता है और उनके साथ केल करता है। यह केल करना जीव को किवार या पट के पार पुकारता है।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो तन में जान यानी सुरत को पहचानता है वह पिया के तेज और सेहरे का वर्णन कर सकता है। बैसाख में जीव आनंद में मगन रहता है। तन और मन की सब आस छूट जाती है, प्यारी सुरत पर्दा खोलकर यानी पर्दा उठा कर प्रीतम से मिलती है। सुरत प्रेम के रंग में रंग जाती है। वह आनंद से भर जाती है और सब शब्दों को सुनती है। ११।

सवैया

जेठ की रीत करी मन जीत।
सो प्रीत की बात की सैन सुनाई॥
चेल चली तज काल बली।
सोइ जाल जली दुख दूर नसाई॥
जिम धाय जो धीर गम्भीर नदी।
स्रुत सार सम्हार जो शब्द समाई॥
यह मुख वैन कहे तुलसी।
सो लसी सत द्वार जो शब्द को पाई॥

कड़ी

जेठ ज़बर तन मन स्रुत रीत।
सेत सबज चली अगमन जीत॥
सुर्ख जर्द रँग श्याम भुलान।
पांचोइ तत्त करी नहिं कान॥
सखी सुन पार फिरुंगी॥ १२॥

जेठ में उस मास की रीति बरतूँगी यानी मन को जीतूँगी और दूसरे जीवों को मालिक के प्रेम की बात का इशारा करुँगी। बलवान काल को छोड़कर वह आगे बढ़ी। इस तरह उसके सब संसारी बंधन नष्ट हुए और सब दुख जाते रहे। जैसे गाहिर गम्भीर नदी तेज़ी से बहती है और अपने भंडार सिंध में समाती है, इसी तरह सुरत शब्द में समाकर अपने असली सार पद को पाती है।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो शब्द से मेला करता है वह सत्तलोक पहुँचता है। जेठ मास ज़बर और कष्ट दायक है। इसी तरह की वह विधि जो तन मन और सुरत को सेत सब्ज़ (हरा) लाल, पीला और काले रंग को जीतने और उनको भुलाने में करनी पड़ती है। पाँचों तत्वों में से जो उन रंगों के सदृश हैं, चित्त हटाकर सुरत आगे चली। हे सखी! वह सुन्न के पार जायेगी। १२।

सतगुरु भक्ति उपदेश

॥ शब्द ९८ ॥

प्रथम सरन सतगुरु गहो, निरखौ नैन निहार।
बार पार निरखत रहो, गुरु पद पदम अधार॥ १॥
संत चरन चित हित करो, सूरत संध संवार।
आदि अंत घर लखि पड़े, सूझे पिउ दरबार॥ २॥
अब जग की गति मति कहूँ, बिन सतसंग अँधियार।
मन इंद्री गुण लोभ में, बिन सत नाम अधार॥ ३॥
यह भव सिंध अगाध है, बूड़े भव जल धार।
बिन सतगुरु भरमत फिरे, कैसे उतरे पार॥ ४॥
सुरत शहर घर आदि है, पावे सज्जन साध।
दुरजन दुख सुख में रहै, करम बंद बहै बाद॥ ५॥
जग रचना जम काल की, फँस-२ मुये हैं अजान।
ज्ञान गली चीन्हे बिना, भरमत सकल जहान॥ ६॥
पिउ परचै पाये बिना, निस दिन फिरत बेहाल।
जुगन जुगन भटकत फिरे, निज घर सुरत न चाल॥ ७॥
पिय की सेज सूनी पड़ी, कीन और लगवार।
तासु पुरुष घर ना मिले, भयौ कर्म भवभार॥ ८॥
जिन पिया की बिरहा बसै, छिन छिन क्षीण शरीर।
नैन नीर ढुर ढुर बहै, कसके तन मन पीर॥ ९॥
प्रेम प्रीति नदियाँ बहैं, सावन भादों मास।
रात दिवस लागी रहै, बरसे झड़ी निश बास॥ १०॥
पिया की पीर पल पल बसै, सूरत अंत न जाय।
जैसे चंद्र चकोर गति, निरखत नाहिं अघाय॥ ११॥

गरज घुमर बदरी बहै, चमके चम चम बीज।
मोर शोर पिउ पिउ करे, तड़फ तड़फ तन छीज॥ १२॥
धुन सुन धीर न आवही, पाती लिखूं पिय पास।
मन सूरत कासिद करुँ, पहुँचै अगम निवास॥ १३॥
खबर खुशी पिया की सुनू, हरषत हिया हित मोर।
तुलसी तलब पिय की लगी, जग तिनका अस तोर॥ १४॥

प्रथम सतगुरु की सरन लो और उनकी आँखों को ताको। जगत के वार और पार को परखते रहो और गुरु के चरन कँवल को अपना आधार बना लो। १।

संतों के चरनों में हित चित लाओ और अपनी सुरत को सँवारो। तुमको अपना निज घर जो सबका आदि और अंत है, दिखाई पड़ेगा और पिया के दरबार की समझ आवेगी। २।

अब जग का हाल कहता हूँ कि बिना सतसंग यहाँ सब अंधेरा है। बिना सतनाम का आधार ग्रहण किये जीव, मन इन्द्रिय गुन और लोभ के आधीन रहते हैं। ३।

यह भौसागर अगाध और अथाह है और जीव इसमें डूबे हुए हैं। बिना सतगुरु के इधर उधर भटक रहे हैं, वह कैसे पार उतर सकते हैं। ४।

सबका आदि और मूल सुरत का धाम है। उसे कोई साध जो सज्जन हैं, प्राप्त करते हैं। दुर्जन दुख सुख में फँसे रहते हैं और कर्मों में गिरफ़्तार होकर वृथा भरमते हैं। ५।

यह संसार जम और काल की रचना है। अनजान जीव इसमें फँस कर मर गये। सच्चा ज्ञान प्राप्त हुए बिन सारा संसार भरम रहा है। ६।

अपने पिया को जाने बिना जीव रात दिन बेहाल फिर रहा है। इस तरह जीव जुग जुग से भटक रहा है। उसकी सुरत निज घर में नहीं गई। ७।

पिया की सेज सूनी पड़ी हैं। जीव अपने पिया को छोड़कर दूसरे से प्रीत करता है। उसको अपने प्रीतम का घर कभी नहीं मिलेगा। उसके ऊपर और भी ज्यादा संसार और कर्मों का भार चढ़ जायेगा। ८।

जिनके घट में पिया की विरह बस रही है उनका शरीर बराबर क्षीण हो रहा है। उनके नयनों से नीर बहता है और पिया की पीर सता रही है। ९।

सावन और भादों मास में प्रेम प्रीत की नदियाँ बहती हैं और रात दिन प्रेम की वर्षा होती रहती है। १०।

हर दम मन में पिया की पीर सालती रहती है और चित्त किसी दूसरी जगह नहीं जाता जैसे चकोर चंद्रमा का हाल है। चकोर अगर्चे बराबर चन्द्रमा की ओर टिकटिकी बाँधकर देखता है, फिर भी उसकी तृप्ति नहीं होती। ११।

बादल गरजते हैं, वर्षा हो रही और तेजी से बिजली चमक रही है। मोर पिउ पिउ शोर कर रहा है और तड़पते तड़पते जीव मुरझा गया। १२।

जीव कहता है कि मुझे शब्द को सुनकर धीरज नहीं प्राप्त होता। अब मैं अपने पिया को चिट्ठी लिखूंगा। मन और सुरत को दूत बनाऊंगा जो कि अगम घर में पहुँचेंगे। १३।

जब मुझे यह खुशी की खबर मिलेगी कि मेरा पिया मुझसे प्रसन्न है तो मेरा दिल आनंद से भर जायेगा। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जब जीव को अपने पिया से मिलने की चाह पैदा होगी तो उसका संसार से नाता टूट जायेगा। १४।

॥ शब्द ९९ ॥

वाको खोज गँवार सार जिन किया पसारा।
रोम रोम ब्रह्मण्ड कोट छबि रबि उजियारा॥ १॥
अजर अमर वह लोक सोक सब दूर बहावे।
अरे हाँरे तुलसी रामकृष्न औतार दसो नहिं जाने पावे॥ २॥

हे गंवार! (जिसका मालिक में विश्वास नहीं) उस मालिक की खोज कर, जिसने सत्य रचना व दयाल देश रचा है। उसके रोम रोम में करोड़ों सूर्य का आकाश आलोकित है। उसका देश ब्रह्माण्ड से आगे है, अजर अमर है और सब कष्ट क्लेश और दुखों से मुक्त है।

तुलसी साहब कहते हैं कि दसों अवतार भी वहाँ नहीं जा सकते हैं।

॥ शब्द १०० ॥

सतगुरु गत मत सार है, दीन्हा अगम लखाय।
सुरत चढ़ी सत द्वार को, लीला गिर गम पार॥ १॥
नित नित सेर सँवार ही, सेत श्याम के घाट।
बाट लखी सखी संग में, चढ़कर निरख निहार॥ २॥
पिय का नूर लख थक भई, छिन छिन लौ सौ बार।
लार लार लागी रहे, तन मन बदन बिसार॥ ३॥
आदि अंत पिय पट खुले, चढ़ि महलन पर धाय।
तिरबैनी घर घाट पै, न्हावत बिपति नसाय॥ ४॥
पिया परचै जब से भई, कहिया तुलसीदास।
बास बिधी विधि महल की, पहुँची पति पिउ पास॥ ५॥

सतगुरु ने जो मत वर्णन किया है उसकी विधि सब सच है। उन्होंने दया करके अगम देश को लखाया। सुरत सत्तलोक के द्वार पर चढ़ी और उस देश की लीला देखने लगी जो भेखों की समझ और गति के बाहर है। १।

वह बराबर उस स्थान की सैर करने लगी है जो श्याम सेत (तीसरा तिल) है। उसने सखियों के साथ मार्ग को लखा और आगे चढ़कर उस देश को अच्छी तरह देखा। २।

पिया के रुप को लखकर हैरान रह गई। उसका चित्त बार बार उनकी तरफ जाने लगा और उनमें लग गया व उसे अपने तन मन की सुधि नहीं रही। ३।

पिया ने उसके मार्ग के आदि से अंत तक के सब पट खोल दिये और वह दौड़कर एक महल को पार करके दूसरे महल पर पहुँची। त्रिवेणी में स्नान करके उसकी सब बिपता जाती रही। ४।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जब से पिया से परिचय हुआ, उसे अनेक महलों के भेद प्राप्त हुए और अपने प्यारे पति से मिली। ५।

॥ शब्द १०१ ॥

अगम गली गम सार पार चढ़ि पेखिये।
जहँ सतगुरु के वैन नैन नित देखिये॥ १॥
चल सतगुरु के महल टहल तहँ कीजिये।
जीवन जनम सुधार सार कर लीजिये॥ २॥
सखी सुखमन घर घाट बाट पिया की लखो।
तोड़ो जम के दन्त संत सरना तको॥ ३॥
पिया बिन धृग संसार जार जग जोर है।
धृग जीवन बिन दास पास पिया को कहै॥ ४॥
सतगुरु संत दयाल जाल जम काटि हैं।
करि हैं भौ जल पार ठाट सब ठाटि हैं॥ ५॥
सूरत संध सुधार पंथ पिय पाइया।
तुलसी सत मत सार सुरत गति गाइया॥ ६॥

सुन्न के पार जो शब्द है, वही सार शब्द है। सुन्न के परे चढ़ो और अगम की गली को देखो जहाँ तुम्हें सतगुरु के दर्शन और बचन प्राप्त होंगे। १।

सतगुरु के महल को चलो और वहाँ उनकी सेवा करो और अपना जन्म सुफल करो। २।

हे सखी! सुखमन की धार में पिया की बाट लखो। सतगुरु की सरन लेकर जम के दाँत तोड़ो। ३।

कहने का मतलब यह है कि सुखमन की धार जो ऊपर से आ रही है उसमें मन और सुरत को जोड़कर ऊपर चलो, यही रास्ता पिया के पास पहुँचने का है। संत सतगुरु की सरन और दया के आसरे काल की हद के पार पहुँच जाओ। इस प्रकार काल के दाँत तोड़ो। दाँत तोड़ने से मतलब काल की हद से बाहर होने से यानि सुरत का पता और भेद लेकर, ऊपर से जो अमृत की धार, शब्द की धार, पिया के दरबार से आ रही है उसमें सुरत को लगाने और संग

करने से पिया के घर का रास्ता मिलेगा। इस प्रकार यह भेद प्राप्त कर धाम में पहुँचकर, सच्चे मालिक और प्रीतम से मिलने का वर्णन किया है।

पिया के बिना इस संसार को धिक्कार है जो जीव को मज़बूती से अपने जाल से फँसाता है और जिसे अपने प्रीतम का संग नहीं मिला। उसके जीवन को भी धिक्कार है। ४।

संत सतगुरु दयाल हैं, वे जम के जाल को काट देंगे। वह जीव को भौजल के पार कर देंगे और उसके लिए सब सामान का बंदोबस्त कर देंगे। ५।

अपनी सुरत को सुधारो तब तुम्हें पिया का पंथ प्राप्त होगा। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि वही सत्त मत है जो सुरत की गति बतलाता है। ६।

॥ शब्द १०२ ॥

अधर घर सतगुरु सोध करो।
लख सुरत धरन धरो ॥ टेक॥
काया खोज करो कँवलन में।
सो गुरु तत्त तरो॥ १॥
गुर चारों पद चार ठिकाने।
भिन्न भिन्न बरन बरो॥ २॥
पिरथम गुरु दल सहस कँवल में।
कंज काज सुधारो ॥ ३॥
गुरु दूसर गढ़ गगन सिखर पर।
द्वै दल पद सुमिरो ॥ ४॥
गुरु तीसर तीसर कँवला में।
चौदल चरन परो॥ ५॥
चौथे सिंध सतलोक गुरु को।
जाने सो जोई उबरो॥ ६॥
गुरु चार पद पार परम गुर।

सो संतन पकरो ॥ ७ ॥
सुन्न शब्द नहिं आतम आसा।
स्वांस जोग झगरो ॥ ८ ॥
अंड ब्रह्मण्ड से पिंड पसारा।
निरगुन गुन बिगरो ॥ ९ ॥
गुर शिष नाहिं गुरु गुरवाई।
बिन गुर भरम मरो ॥ १० ॥
कनफूंका गहि कंठी बांधी।
इन से जग बिगरो ॥ ११ ॥
आशा बस बंधन शिष कीन्हा।
इन हिय ज्ञान हरो ॥ १२ ॥
पढ़ पढ़ मोट भये मन ज्ञानी।
मान मस्त मगरो ॥ १३ ॥
सुन सतसंग नेक नहिं भावै।
बूड़ जनम बिगारो ॥ १४ ॥
मूल अजर सतगुरु बिन भूले।
नहिं पावें डगरो ॥ १५ ॥
यह शब्दन में परख पुकारे।
यासे भौ उतरो ॥ १६ ॥
अकथ अलोक लोक से न्यारा।
तुलसी अज अजरो ॥ १७ ॥

अधर घर में सतगुरु का खोज करो और सुरत को धरन यानी देह में लखो। कँवलों से काया की खोज करो। इस तरह तुम गुरु के बतलाये हुए सार भेद से तर जाओगे। १।

चार स्थानों पर गुरु के चार ठिकाने हैं। उनकी अलग अलग आराधना करो। २।

गुरु का प्रथम ठिकाना सहसदल कँवल में है। इस कँवल का काज पूरा करो। ३।

गुरु का दूसरा स्थान गगन यानी त्रिकुटी में है। तुमको दो दल के कँवल पर यानी तीसरे तिल पर गुरु के नाम का सुमिरन करना चाहिए। ४।

गुरु का तीसरा ठिकाना तीसरे कँवल पर है जो कि चार दल के कँवल यानी त्रिकुटी के परे है। ५।

गुरु का चौथा धाम सत्तलोक में है जो कि सिंध के समान है। जो उसको जानता है या वहाँ पहुँच जाता है, उसका उबार हो जाता है। ६।

गुरु के इन चार स्थानों के परे गुरु का परम धाम है जो संतों का इष्ट है। ७।

सुन्न के शब्द में जो कि चैतन्य मंडल का शब्द है कोई अपना स्वार्थ नहीं है और न उसकी प्राप्ति के लिये प्राणायाम योग की जरुरत है। ८।

पिंड अंड और ब्रह्मांड का सब पसारा निरंजन यानी काल और तीन गुणों का नाश होगा। ९।

गुरु और शिष्य के रिश्ते में गुरु को शिष्य पर अधिकार जमाने की गुँजाइश नहीं है। बिना गुरु के शिष्य भरमों में भरमता रहता है। १०।

झूठे गुरुओं से संसार बिगड़ा है जो गले में कंठी बाँधकर चेला बनाते हैं और कान में मंत्र फूँकते हैं। ११।

अपने स्वार्थ के लिए चेला करते हैं इसलिए उनका विवेक नष्ट हो जाता है। १२।

धर्म ग्रंथ पढ़ पढ़ कर ज्ञान से मोटा यानी स्थूल हो जाता है और अहंकार में भर जाता है। १३।

सतसंग की बात सुनकर उनको खुशी नहीं होती। वह अपना अगला जन्म बिगाड़ते हैं। १४।

सतगुरु के बिना वह अपने आदि और अजर घर से भूले रहते हैं और सच्चे मार्ग को नहीं पाते। १५।

सतगुरु पुकार कर जीवों को कहते हैं कि अपनी सुरत को शब्द में लगाओ। केवल इसी से भौसागर के पार जाना हो सकता है। १६।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि केवल इसी तरह जीव अकथनीय, अलोक और अजर स्थान पर पहुँच सकते हैं जो कि अनूप और सबसे न्यारा है। १७।

॥ शब्द १०३ ॥

नसीहत नामा

आतम बास बसे सरवर में।
वहि तत वास अकाश कहाई॥
अली अकाश चारों तत कीन्हा।
तत बैराट बनाई ॥ १॥

सरोवर में आत्मा का बास है। वह आकाश कहलाता है। इस आकाश ने चारों तत्व रचे हैं और इन सब तत्वों ने मिलकर कुल सृष्टि बनाई है। १।

सुन नभ वार तार सुर्त श्यामा।
ता में आतम मनहिं कहाई॥
पच इन्द्री कर्म ज्ञान पाँच में।
दस बस फाँस फँसाई ॥ २॥

सुन्न के आकाश के इस पार यानी इस तरफ आत्मा मन ही है जिसने जीव को दस इन्द्रियों यानी पाँच ज्ञान इन्द्रियों और पाँच कर्म इन्द्रियों के आधीन करके इसको फँसाया है। २।

इन्द्री कर्म अशुभ बस बाँधे।
शुभ करके गति ज्ञान गिराई॥
शुभ और अशुभ कर्म मन मारग।
यह दोउ भौ भुगताई॥ ३॥

इन्द्रियों द्वारा अशुभ कर्म करके जीव फँसता है और शुभ कर्म करके ज्ञान की गति पाता है। लेकिन यह दोनों शुभ और अशुभ कर्म मन के मार्ग हैं और जीवों को इसका फल दुख सुख इस संसार में भोगना पड़ता है। ३।

आसा बास बसे करमन में।
फिर फिर जन्म जोन भरमाई॥
यहि विधि आवागमन भवन में।
फिर फिर खान समाई॥ ४॥

कर्मों के अनुसार आसा और बासा होती है जिससे फिर फिर योनि बास करता है। इस तरह आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है और फिर फिर खानों में भरमता है। ४।

यहि विधि संत सभी सब गावें।
शब्द साख सब वर्ण सुनाई॥
बूझै न मूढ़ चलै मन मत के।
सत सत बचन उड़ाई॥ ५॥

सब संतों ने यही भेद बतलाया है और शब्द की महिमा वर्णन की है। मूरख जीव उसे नहीं समझते। वे मन के कहने में चलते हैं और संतों के सत्य भेद की अवहेलना करते हैं। ५।

आतम ज्ञान ब्रह्म बन बैठे।
कहते लाज न मन बिच आई॥
द्वैत भाव भर्म मन बरतै।
अद्वैती दरसाई ॥ ६॥

अपने को ज्ञानी कहते हैं और खुद को ब्रह्म मानते हैं। यह कहते हुए उनको मन में शर्म नहीं आती। बर्ताव में वह द्वैत भाव बर्तते हैं यानी मैं और तू का भेद करते हैं और ऊपर से अद्वैतपन दरसाते हैं यानी ऐसा जाहिर करते हैं कि हम में ''मैं मैं'' और ''तू'' का भेद नहीं है। ६।

तज मन मूढ़ कूर पाखंड को।
झूठ झूठ सब धोखा खाई॥
तन कर नाश बास चौरासी।
फिर फिर जम घर खाई॥ ७॥

जीव को चाहिये कि मूढ़ मन का संग और पाखंड कृत्य छोड़ दे। वह असत्य बातों में पड़ कर धोखा खा रहा है। उसका तन एक दिन नाश हो जायेगा और चौरासी में भरमेगा जहाँ काल इसको फिर फिर खायेगा। ७।

या से मान मनी मति डारो।
लख गुरु गगन गवन बतलाई॥
सूरत डोर लील बिच खेले।
फीड़ के पछिम समाई॥ ८॥

इसलिये मन का मान छोड़ो और सतगुरु को खोजो जो गगन को जाने की राह बतलावेंगे। सुरत डोर लील के मध्य यानी तीसरे तिल में से होकर चढ़ेगी और उसको पार करके सुन्न में समायेगी। ८।

लीला सेत श्याम सुन पारा।
न्यारा द्वार दीदा सरसाई॥
जहँ परमातम आतम नाही।
खिड़की पुरुष लखाई॥ ९॥

सुन्न और महासुन्न के पार एक न्यारा द्वार दिखलाई देगा जो खिड़की की तरह है जिसमें से सत्त पुरुष के दर्शन हो सकते हैं जिसके लोक में आत्मा और परमात्मा नहीं है। ९।

जहँ सतलोक मोष पर बेनी।
मंजन करके सहज अन्हाई॥
चढ़ कर द्वार देख सत साहब।
शुभ और अशुभ नसाई॥ १०॥

सत्तलोक में पहुँचने पर जीव को सच्ची मोक्ष प्राप्त होती जो कि त्रिबेनी के परे है जिसके निर्मल जल में स्नान करके सर्व मलीनता नष्ट हो जाती है। द्वार से गुज़र कर सत्त पुरुष का दर्शन पाया और सब शुभ और अशुभ कर्म जाते रहे। १०।

जे जे बंद फंद करमन के।
सत्त पुरुष दरसत नस जाई॥
यहि विधि भांति सुरत से खेले।
सतगुरु कहत बुझाई॥ ११॥

सत्तपुरुष के दर्शन करने से कर्मों के सब बंधन और फंदे कट जायेंगे। सतगुरु जीवों को समझाते हैं कि इस प्रकार सुरत से कार्रवाई करनी चाहिए। ११।

सतसंग रंग दीन दिल पावे।
मोटे मन तन बूझ न आई॥
जिन मन नीच कीच सम कीन्हा।
उनकी दृष्टि समाई॥ १२॥

जिसका मन दीन हो गया है उस पर सतसंग का रंग चढ़ेगा। जिसका तन और मन मोटा और स्थूल है उसे सतसंग की परख नहीं आवेगी। जिसने अपने मन को कीचड़ के समान तुच्छ कर लिया है उसकी दृष्टि मालिक में समायेगी। १२।

जोगी भेष भर्म मन ज्ञानी।
परम हंस बैराग गुसांई॥
कर कर खोज रोज पच हारे।
वा की खबर न पाई॥ १३॥

योगी, भेख, ज्ञानी, परम हंस, बैरागी और गुसाँई जो हर रोज़ मालिक की खोज में लग रहे हैं, थक कर हार गये हैं मालिक का पता ठिकाना नहीं मिला। १३।

शास्त्र संग विधि साखि बिचारे।
विधि वेदान्त ब्रह्म बतलाई॥
वेद नेति कर कहत पुकारी।
ब्रह्मा आप हिराई ॥ १४॥

शास्त्रों की विधि के अनुसार प्रमाण खोजने पर वे विचार करते हैं। वेदांती, ब्रह्म को सब कुछ मानते हैं। लेकिन वेद उसे नेति नेति कहते हैं। ब्रह्मा स्वयं धोखे में है। १४।

विधि बैराट कँवल नाभी में।
खोजत खोजत फिरि फिरि आई॥
ब्रह्मा भूल वेद कह नेता।
यह दोउ भेद न पाई॥ १५॥

ब्रह्मा की उत्पत्ति नाभि के कँवल से मानी जाती है। वह निरंजन को खोजते खोजते फिर फिर वहाँ आता है। ब्रह्मा भूल में रहा और वेदों ने उसे नेति नेति कहा। इस तरह दोनों ने उसका भेद नहीं पाया। १५।

यह वेदान्त ब्रह्म कस गावे।
या को कहु किन बूझ बताई॥
या के गुरु का भेद बताओ।
बिन गुरु कहु कस गाई॥ १६॥

यह जीव वेदांत और ब्रह्म की महिमा कैसे वर्णन करता है? किसने इनका भेद बतलाया? इनको अपने गुरु का भेद बतलाना चाहिए जिसने इनको यह कहा है क्योंकि बिना गुरु के कोई वेदांत और ब्रह्म को कैसे जान सकता है? १६।

प्रथमे बन बैराट बनावा।
ता पीछे ब्रह्मा उपजाई॥
ब्रह्मा पीछे वेद विधाना।
यह सब खोज न पाई॥ १७॥

पहले ब्रह्म ने विराट स्वरुप बनाया। उसके बाद ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने फिर वेदों की रचना की। जीवों को इस सब भेद का पता नहीं लगा। १७।

वेद विधी से शास्तर कीन्हा।
ता पीछे वेदान्त बनाई॥
यह तौ ब्रह्म ब्रह्म कहि गावैं।
वा ने नेत सुनाई॥ १८॥

वेदों से आगे चलकर शास्त्रों की रचना हुई और फिर वेदांत प्रकट हुआ जिसमें ब्रह्म की महिमा कही गई है पर वेदों ने उसे नेति नेति यानी 'यह नहीं, यह नहीं' कहा। १८।

या की साख समझ नहिं आवे।
झूठ साँच निरनै न बुझाई॥
सोल पोल विधि कोई न विचारे।
टेकै टेक चलाई ॥ १९॥

इसका प्रमाण समझ में नहीं आता क्योंकि उन्होंने इस बात को समझाने में यह निर्णय नहीं किया कि क्या सत्य है और क्या असत्य। यह सब वृथा है। कोई इस पर गौर नहीं करता। सब पुरानी टेक और अंध विश्वास को चला रहे हैं। १९।

ब्रह्मा बाप बैराट कहावै।
जा में आतम ब्रह्म समाई॥
सूर चंद दोउ नैना वाके।
राहु विमान सताई ॥ २०॥

ब्रह्म का बैराट स्वरूप ब्रह्मा का बाप है जिसमें आत्मा और ब्रह्म समाये हुए हैं। सूरज और चाँद दोनों उसकी आँखें हैं, जिनको आकाश में राहू पीड़ा देता है। २०।

ब्रह्मा बाप आप भयौ रोगी।
भोग रोग नित राह सताई॥
उनका बाप आप दुख पावै।
ता का दुख न छुड़ाई ॥ २१॥

ब्रह्मा का पिता स्वयं रोगी है। वह आप भोग और रोग में फँसा हुआ है। ब्रह्मा का पिता आप दुख पा रहा है और उससे छूट नहीं सकता। २१।

वेद भेद संग जगत उबारे।
अस अस पंडित कहत सुनाई॥
पीछे शास्तर नाती कहिये।
आजा दुर्ग दुख पाई॥ २२॥

पंडित कहते हैं कि वेद सत्य का भेद देकर जगत को उबारते हैं। शास्त्र जो बाद में रचे गये, नाती की तरह हैं। उनका पितामह खुद दुख और संताप में पड़ा है। २२।

जग वेदान्त ब्रह्म कहै ज्ञानी।
राहु बैराट ब्रह्म दुखदाई॥
पंडित बूझ सूझ समझाओ।
यह कहु समझ सुनाई॥ २३॥

ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि इस संसार में वेदांत और ब्रह्म श्रेष्ठ हैं लेकिन ब्रह्म के बैराट रूप को राहू दुख देता है। पंडित पहले खुद समझ लें फिर दूसरों को समझाये। यह बात कैसे सही समझी जावे? २३।

तन को तेल फुलेल रसिक में।
खान पान पोशाक सुहाई॥
नित नित सैल करै बागन में।
तन नित माँझ अन्हाई॥ २४॥

तन पर तेल फुलेल चुपड़ते हैं। बढ़िया खान पीना और अच्छी पोशाक सुहाती है। वे रोज़ बाग की सैर करते हैं और तन को मल मल कर नहाते हैं। २४।

यह सब मौज चौज सुख संगा।
तन हबूब बुल्ले सम जाई॥
पल पल घट घड़ियाल पुकारे।
जग जम सोंटे खाई॥ २५॥

यह सब सुख ऐश और आराम पानी के बुलबुले की तरह हवा चलने से उड़ जायेगा। प्रत्येक के घट में मृत्यु का घड़ियाल पुकार रहा है और सब जग को यम की चोट खानी पड़ेगी। २५।

लेत हिसाब जवाब नहिं आवै।
आतम ज्ञान गैल गिर जाई॥
ब्रह्म बूझ बैराट दुखारी।
परलै माहिं नसाई ॥ २६॥

जब उनसे अपनी करनी का हिसाब माँगा जायेगा तो वे उत्तर नहीं दे सकेंगे। उनका ज्ञान यम के मार्ग में जाता रहेगा। उनको समझना चाहिये कि ब्रह्म का बैराट स्वरुप भी दुखी है, और प्रलय से उसका नाश हो जायेगा। २६।

ता के भीतर चेतन बासी।
परलै तन तत कहाँ रहाई॥
ब्रह्मा नाश और वेद नसाना।
जब का भेद सुनाई॥ २७॥

तन के भीतर सुरत चैतन्य का बासा है। लेकिन जब तन का नाश हो जायेगा तब वह कहाँ रहेगा? मैं तब का भेद सुना रहा हूँ, जब ब्रह्मा और वेदों का नाश हो जायेगा। २७।

प्रथम पवन आकाश नसाना।
ब्रह्मा वेद बैराट नसाई॥
कागज स्याही न लिखने हारा।
तब की विधि समझाई॥ २८॥

पहले पवन और आकाश का नाश होगा और ब्रह्मा, वेद और ब्रह्म के बैराट स्वरूप का भी नाश होगा। उस हालत को बयान करने के लिये न कागज़ होगा न स्याही और न ही कोई लिखने वाला। २८।

विधि बैराट नाश सब जावै।
आगे भेद न कहत सुनाई॥

जेहि जेहि पूछौं सोइ अस गावै।
आगे न खबर सुनाई ॥ २९ ॥

विधाता और ब्रह्म का बैराट स्वरूप सब नाश होंगे। आगे का भेद किसी ने नहीं दिया। जिससे पूछा जाय वह, जो बात कही जा चुकी है, उसी को बयान करता है। लेकिन आगे का भेद कोई नहीं जानता। २९।

काल जाल सब चाल बखाने।
वेद नेति शास्तर समझाई॥
या में जोग ज्ञान फँस मारे।
सब को भरम भुलाई॥ ३०॥

काल के जाल की बाबत सब बतलाते हैं और वेद और शास्त्रों का हवाला देते हैं और नेति नेति कहते हैं। इस तरह योग और ज्ञान ने जीवों को फँसा कर भरम में भुला दिया। ३०।

अगम निगम पर नेक न पावै।
वेद नेत आतम कह गाई॥
सोइ शास्तर सुन मुनि जन गावैं।
आगे भेद न पाई॥ ३१॥

अगम निगम (तंत्र और वेद) से कुछ प्राप्ति ही होगी। वेदों ने आत्मा को नेति नेति करके कहा है। इसी को सुनकर मुनिजन ऐसा कहते हैं लेकिन इसके आगे का भेद उनको मालूम नहीं पड़ा। ३१।

आतम ब्रह्म अबाच बतावैं।
कहत दृष्टि नहिं देत दिखाई॥
बिन देखे वर्णन जिन कीन्हा।
नहिं परमाण कहाई ॥ ३२॥

वे कहते हैं कि आत्मा और ब्रह्म अकथनीय हैं, और दृष्टि में नहीं आते हैं। लेकिन बिना देखे जो वे वर्णन करते हैं उसे प्रमाण नहीं कहा जा सकता। ३२।

कहत वेद कोइ देख न पावै।
पुनि अबाच कहु कौन सुनाई॥
बिन बाचा शास्तर नहिं भयऊ।
अरी अबाच किन गाई॥ ३३॥

वेद कहते हैं कि आत्मा और ब्रह्म को कोई देख नहीं सकता। अगर ऐसा है तो उनका कौन वर्णन कर सकता है? फिर शास्त्रों की रचना कैसे हुई? जो अकथनीय है उसका वर्णन कोई कैसे कर सकता है? ३३।

वह अबाच कहु बोलन नाहीं।
बाचा बिन किन खबर सुनाई॥
सुन कहु वेद नाद बाचा से।
या को भेद बताई॥ ३४॥

वह अबाच है, कभी बोलता नहीं। लेकिन बिना बोले उसका हाल कोई कैसे कह सकता है? सुनो, मैं कहता हूँ कि वेद की उत्पत्ति नाद से हुई है। मैं तुम्हें यह भेद बतलाता हूँ। ३४।

पूछौ जित जो अवाच बतावै।
बाचा में बरतंत सुनाई॥
बाचा बचन न जाने पावै।
पूछौ कहौ सुनाई ॥ ३५॥

वे कहते हैं कि वेद अकथनीय हैं। मगर उनसे पूछा जावे तो वे वेद का हाल शब्दों से बयान करते हैं। उनसे पूछना चाहिए कि अगर वह अकथनीय है तो वे उसके बारे में कैसे कुछ कह सकते हैं? ३५।

वाक बचन कहौ बात न मानै।
बिन वाचा में कहौ समझाई॥
सुन द्वैत बिन बाच न आवै।
बानी बिन दरसाई ॥ ३६॥

अगर उनसे शब्दों में कहा जावे तो वे उस बात को नहीं मानते और बिना शब्दों में कहे कोई कैसे समझ सकता है? सुनो, जब तक द्वैत यानी दो नहीं होंगे तब तक शब्द में बात नहीं कही जा सकती और जब तक कोई ख़ुद न देखे वह बयान नहीं कर सकता। ३६।

यह सब काल जाल जग बाँधा।
ज्ञानी पंडित भेष भुलाई॥
मान मनी मद अहँ बतावैं।
यहि विधि जाल जमाई॥ ३७॥

यह सब काल का जाल है जिसमें उसने संसार को फँसा लिया है। ज्ञानी पंडित और भेख सब उसमें भूल रहे हैं। वे मान, मन का मान व अहं का ज़िक्र करते हैं। इस तरह वह काल के फंदे को मज़बूत बनाते हैं। ३७।

पढ़ पंडित रुजगार चलावा।
कुटुम्ब काज परमंच बसाई॥
ता में ज्ञानी जगत अबूझा।
सो सुन समझ सुनाई॥ ३८॥

पंडित वेद शास्त्र आदि इत्यादि पढ़ कर अपना रोजगार चला रहे हैं और कुटुम्ब के लिये सब परमार्थी आडम्बर रचते हैं। ज्ञानी और सारा संसार इसमें धोखा खा रहा है। सुनो, मैं तुमको वास्तविक समझ और ज्ञान सुनाता हूँ। ३८।

यह विधि बुधि बेदन संग बाँधी।
संत मता बेदन सम गाई॥
नाद बेद से संत नियारे।
सो नहिं कोई गति पाई॥ ३९॥

वे वेदों के लिये भी इसी तरह की समझ और दृष्टिकोण रखते हैं और संत मत को वेद मत के बराबर मानते हैं। लेकिन नाद और वेद से संत न्यारे हैं। इसलिये किसी की भी गति नहीं हुई यानी जहाँ के तहाँ रहे। ३९।

यह अबाच पर और अबाचा।
सो कोई संत भेद बतलाई॥
उन देखा सुर्त से चढ़ चौथे।
सो सब संत सुनाई॥ ४०॥

इस अकथनीय पद पर एक और अकथनीय पद है जिसका भेद केवल संतों ने दिया है। उन्होंने अपनी सुरत को चौथे लोक में चढ़ाकर उसे देखा है। ऐसा सब संतों ने कहा है। ४०।

प्रथमे एक अनाम अबाचा।
वा की गत मत संत जनाई॥
सत्त लोक पर नाम अबाचा।
सो पद चौथे माहीं॥ ४१॥

पहले एक अकह और अनाम था जिसका भेद संतों ने खोला। सत्तलोक में वह अकह और अनाम सत्तनाम हुआ जिसका बासा सत्तलोक में है। ४१।

परमातम पद सुन पै अबाचा।
सुन धुन नीचे आतम आई॥
मानसरोवर तेहि कर धामा।
सोई आकाश समाई॥ ४२॥

उस अकथ और अनाम ने सुन्न में परमात्मा का रूप धारण किया। सुन्न के नीचे यह आत्मा हुआ जिसका बासा मानसरोवर में है और जो आकाश में समाया हुआ है। ४२।

जड़ अकाश चेतन जिन कीन्हा।
श्याम सेत बिच नाम गुसांई॥
सोई निज नाम निरंजन भाखा।
वेद अबाच सुनाई॥ ४३॥

श्याम सेत में जो नाम है उसने जड़ आकाश को चैतन्य किया। उसे निरंजन ने निज नाम कहा है और वेद ने उसे अकथ कहा है। ४३।

सहस कँवल मध धाम कहावे।
ता पर तीन अबाच रहाई॥
ब्रह्मा वेद बैराट न पावै।
ऋषि मुनि भरमन माहीं॥ ४४॥

सहसदल कँवल उसका धाम है। उसके परे तीन अकथनीय पद हैं जिनका भेद ब्रह्म, बैराट और वेद ने नहीं पाया और ऋषि मुनि सब भर्म में पड़े हैं। ४४।

शास्तर मिल पुनि आतम गावा।
काल की कला अबाच सुनाई॥
पंडित पढ़ गुन ज्ञान गठाने।
या से जग बौराई॥ ४५॥

शास्त्रों ने आत्मा का भेद बतलाया और काल की कला को अबाच करके वर्णन किया। इसको पढ़कर पंडित यह भेद कहते फिरते हैं। इससे सब जगत भरम रहा है। ४५।

बिन गुरु कंज राह नहिं पावै।
संत सुरत से नित नित जाइ॥
जो वहि देस भेस के भेदी।
जिन जिन खबर जनाई॥ ४६॥

बिना गुरु के कोई सहसदल कँवल की राह नहीं पा सकता। संत हमेशा सुरत से उस मार्ग पर जाते हैं। जो उस देश के भेदी हैं उन्होंने उसका पता ठिकाना बतलाया है। ४६।

उनको जग नास्तिक ठहरावे।
बोल बचन उनके न सुहाई॥
वे पुनि चढ़ चढ़ अगम निहारें।
विधि सब कहत सुनाई॥ ४७॥

संसार उनको नास्तिक मानता है और उनके बचन नहीं सुहाते पर वे तो हमेशा चढ़ कर अगम देश को देखते हैं और स्वयं देखकर वहाँ का हाल वर्णन करते हैं। ४७।

काल निरंजन बाच अबाचा।
कहत नाद विच वेद बनाई॥
आतम तमा अवाच कहावै।
येहि विधि काल जनाई॥ ४८॥

काल निरंजन ने बाच और अबाच दोनों का भेद कहा है कि नाद से वेदों की उत्पत्ति हुई है और आत्मा को अकथ बतलाया है। इस प्रकार काल ने जगत को भेद दिया। ४८।

संत मता कुछ और पुकारे।
आतम जीव मानसर माहीं॥
परमातम सुन खिड़की पारा।
संतन देख जनाई ॥ ४९॥

लेकित संत कुछ और ही कहते हैं। उनके मतानुसार आत्मा का बासा मानसरोवर में है और परमात्मा का बासा सुन्न के परे है। यह भेद संतों ने प्रत्यक्ष देख कर कहा है। ४९।

आगे सत्तलोक चौथे में।
सो अबाच सत्त पुरुष कहाई॥
जहँ नहिं निरगुन वेद विचारा।
यह सब वार रहाई॥ ५०॥

इसके ऊपर सत्तलोक है जो तीन लोक के आगे चौथा लोक है। उसका धनी अकथनीय है और सत्तपुरुष कहलाता है। न वहाँ निरगुन है और न बेचारा वेद यानी उस लोक में निरंजन और वेद की गुज़र नहीं है। यह सब इसी ओर रह गए। ५०।

चौथे पार अनाम अमाया।
नाम न रूप अगम गति गाई॥
सो सब संत करैं दरबारा।
यह गति बिरले पाई ॥ ५१॥

चौथे पद के आगे अनामी पुरुष है जिसमें माया का नामोनिशान नहीं है। उसका न नाम है और न रूप है। वह संतों का दरबार है। बिरले संत वहाँ पहुँचते हैं। ५१।

यह गति धाम अगमपुर ठामा।
जाहि देत जो जाय जनाई॥
या की साख वेद नहिं जाने।
संत कृपा से पाई ॥ ५२॥

संत यह गति पाते हैं और उस अगमपुर धाम में बसते हैं जिसके बारे में दूसरों को वही बतला सकता है जो वहाँ का वासी हो। उसकी महिमा वेद नहीं जानता है। वह गति केवल संतों की कृपा से प्राप्त होती है। ५२।

संत सरन बिन पंथ न पावै।
सतगुरु गैल खेल खुल गाई॥
मन होय छोट मोट छल छांड़े।
तब सत सुरत लखाई ॥ ५३॥

संतों की सरन लिये बिना मालिक की प्राप्ति का मार्ग नहीं मिलता है। सतगुरु ने इस मार्ग का साफ़ साफ़ वर्णन किया है। अगर मन दीन हो जावे और छल और अहंकार छोड़ दे तब सुरत का जो कि सत्त है लखाव हो सकता है। ५३।

सत मत रीत जीत जब जाने।
ज्ञान मान मद दूर बहाई॥
मन और कर्म बचन बुधि साँची।
काची कुबुधि उठाई ॥ ५४॥

जब यह सत्त मत की रीति को समझेगा तब ज्ञान, मद और मान को दूर करेगा, और मनसा बाचा कर्मणा करके बुद्धि निर्मल होगी। कुबुद्धि दूर होगी। ५४।

संत दयाल चाल जब चीन्हें।
लीन दीन दिल लेत लगाई॥
सब अस भाँत जात पक परखे।
तरके तन बिच जाई॥ ५५॥

संत दयाल जब इसकी चाल को परखेंगे कि यह चित्त से दीन और लीन हो गया है तब वे दया करके इसको अपने चरनों में लगावेंगे। संत जो कि अंतर का हाल गौर से देखते हैं, सब जीवों को इस तरह भली भाँति परखते हैं। ५५।

वे अंदर घट घाट विचारें।
कर कर फ़ेल गैल नहिं पाई॥
कूर कपट सब झाड़ निकारे।
जब रस राह लखाई॥ ५६॥

वे जीवों की अंतरी हालत को देखते हैं जब कि जीव सब यत्न करके भी मार्ग को नहीं पाता। जब संतों की दया से जीव की बुराइयाँ और कपट दूर होते हैं तब वह मार्ग को पाकर हर्षित होता है। ५६।

संतमत सुरत निरत नित न्यारी।
सारी समझ बूझ बतलाई॥
नील सिखर पट परदे माहीं।
पल पल मनहिं लगाई ॥ ५७॥

संत मत में सुरत और निरत अनूप जौहर है जो सबसे न्यारा है। संतों ने यह सब भेद खोल कर कहा है और जीवों को अपनी सुरत लगातार तीसरे तिल पर रखने की हिदायत दी है। ५७।

काग भुसुंड धाम धस पावै।
कँवल कंज करिया के माहीं॥

ता पर सेत सुरत सत द्वारा।
चढ़ चढ़ सुन्न समाई ॥ ५८ ॥

काग भुसुंड (एक ब्राह्मण जो लोमस ऋषि के श्राप से कौआ हो गया था) यानी तुच्छ जीव ने अंतर में धस कर सहसदल कँवल में बासा किया। उसके परे सत्तलोक के जाने का सेत दरवाजा है यानी सुन्न जिसमें सुरत चढ़ कर समाई। ५८।

सुन धुन ताल तरँग आतम जिव।
पछिम दिसा दिस देत दिखाई॥
खिड़की खोल अबोल अबाचा।
सो रचि जीव जनाई॥ ५९॥

ताल यानी मानसरोवर का शब्द सुन कर जीव, आत्मा की गति को पाता है और पश्चिम देश यानी सुन्न को देखता है और खिड़की को खोलकर अबोल और अकह पुरुष का दर्शन करता है। यह सब संतों की दया से प्राप्त होता है। ५९।

ताल निहार पार चलि आगे।
सुन्न सिखर फाटक में जाई॥
तहँ कहुँ ताक भाष दोउ द्वारा।
पारब्रह्म पद पाई ॥ ६० ॥

मानसरोवर को देखकर सुरत आगे चली और सुन्न शिखर के फाटक में गई। उसके आगे जाकर पार ब्रह्म पद में पहुँची। ६०।

सुरत सैल जहँ खेल निहारी।
लख लख गगना अंड अथाई॥
जा विच सुरत सरोमन पेली।
ज्यों चींटी सम जाई॥ ६१॥

सुरत ने वहाँ की सैर की और खेल देखा। वहाँ जाकर गगन को देखा जो अथाह है। सुरत शिरोमन उनके बीच में चींटी की तरह धँसी। ६१।

अस भुसुंड भिन अंड निहारा।
राम रमा मुख जाय समाई॥
रामायण लख साख सुनाऊँ।
हिये दृग देत दिखाई॥ ६२॥

भुसुँड ने राम के मुख में समाकर भिन्न भिन्न मंडल देखे। यदि रामायण देखी जाय तो यह विवरण मिलेगा और जिसकी अंतर की दृष्टि खुले उसे यह सब दिखलाई भी दे। ६२।

चर और अचर खान सब सारी।
भिन भिन भेद भुसुंड सुनाई॥
काग भुसुंड काया के माहीं।
लख निज जान जनाई॥ ६३॥

काग भुसुण्ड ने चर और अचर सब खानों का भेद दिया। वास्तव में काग भुसुण्ड काया में बसता है। वहाँ उसने देख कर सब बयान किया है। ६३।

या से परख पार पद न्यारा।
पारे चले चढ़ चशम चिन्हाई॥
सुन धुन आतम पद परमातम।
इनके पार लखाई ॥ ६४॥

इसके पार एक अनूप पद है। उसके परे चलो तो अपनी आँखों से पहचान लो। जब जीव आत्मा और परमात्मा पद के शब्द को सुनता है तब संत दया करके उसके पार का स्थान लखाते हैं। ६४।

यह दोउ वार पार सतलोका।
परदा तीन फोड़ जोइ जाई॥
सूरत शब्द पुरुष पद पारा।
जब घर अपने आई॥ ६५॥

यह दोनों लोक इस ओर हैं और सत्तलोक उस पार है वहाँ जीव तीन पर्दे फोड़ कर पहुँचता है। जब सुरत महापुरुष के शब्द से मेल करती है तब वह अपने घर में पहुँचती है। ६५।

तापर धाम नाम नहिं न्यारा।

तारा चन्द न सुरज रहाई॥

धरती न गगन गिरा नहिं बानो।

जानी जिन जिन गाई॥ ६६॥

उसके परे जो धाम है वह अनाम और अनूप है। वहाँ सूरज चाँद तारे कुछ नहीं हैं। न वहाँ धरती है, न गगन। वहाँ शब्द भी नहीं है। जो उसका भेद जानते हैं उन्होंने उसकी महिमा गाई है। ६६।

पिंड ब्रह्मंड न अंड अकारा।

न्यारा अली अलोक कहाई॥

जहँ सब संत पंथ पद माहीं।

नित नित सेल समाई॥ ६७॥

वहाँ पिंड अंड ब्रह्मांड नहीं है और न कोई आकार है। वह सबसे न्यारा है। वह स्थान या लोक भी नहीं कहा जा सकता। वह सच्चा अलोक कहलाता है। ६७।

सतगुरु साख हाथ हित पावे।

संत सरन स्रुत सार लखाई॥

सतसंग संत बिना नहिं पावे।

फिर फिर करमन माहीं॥ ६८॥

उसका भेद सतगुरु से प्राप्त होगा, अगर उनमें प्रतीत हो। संतों की सरन लेने से सुरत को सार वस्तु दरसेगी जो कि बिना संत और सतसंग के प्राप्त नहीं होगी। बल्कि जीव फिर फिर कर्मों में भटकता रहेगा। ६८।

आगे सुन गुन ज्ञान बताऊँ।
जीव कर्म बस ब्रह्म बँधाई॥
ब्रह्म जीव बस कर्म विचारे।
जड़ संग ज्ञान गिनाई॥ ६९॥

अब मैं तुम्हें ज्ञान के बारे में बतलाता हूँ। ब्रह्म ने जीवों को कर्मों में बाँधा है। जीव कर्मों के बस होने से ब्रह्म को मानता है और जड़ का संग करने से जो अनुमान होता है उसे ज्ञान समझता है। ६९।

अब या की सुन साख सुनाऊँ।
भागवत मत बिध ब्यास बताई॥
जब बैराट ठाट ब्रह्म भइया।
देवन जाय उठाई॥ ७०॥

सुनो मैं इसका प्रमाण देता हूँ। व्यास ने भागवत का हवाला दिया है। जब ब्रह्म ने बैराट रूप धारण किया तो देवताओं की उत्पत्ति हुई। ७०।

नहिं बैराट उठा बिन आतम।
पुरुष अंश आतम जब आई॥
मधि बैराट जीव आतम अस।
तब तन तुर्त उठाई॥ ७१॥

लेकिन बिना आत्मा के बैराट रूप नहीं प्रकट हो सकता। जब ऊपर से पुरुष की अंस सुरत आई और उसने बैराट रूप के खोल में आकर जीव आत्मा स्वरूप धारण किया तब तुरन्त बैराट रूप की उत्पत्ति हुई। ७१।

अंस जीव आतम कहुँ कहँ से।
आया सो विधि खोज कराई॥
सो स्वामी का कहु कहँ बासा।
जिन से अंश जो आई॥ ७२॥

यह अंस यानी जीव आत्मा कहो कहाँ से आई और उस पुरुष का बासा कहाँ है जिससे इस सुरत अंस का निकास हुआ। ७२।

अंश बुंद आतम तन बासा।
सिंध खोज कहुँ अंत रहाई॥
यहि बिन संत पंथ नहिं पावै।
फिर फिर जड़ तन माहीं॥ ७३॥

आत्मा का तन में बासा है जो कि चैतन्य सिंध की बूंद है, जिसका बासा और कहीं है और जिससे मिलने का मार्ग बिना संत के नहीं प्राप्त हो सकता। और जीव को फिर फिर जड़ तन धारण करना पड़ेगा। ७३।

बिन साखी संध फंद नहिं टूटै।
छूटै न ज्ञान जो कोटि कराई॥
बिन बिधि सुरत संध नहिं पावे।
बिन सिंध बुंद बहाई॥ ७४॥

बिना भेदी के यानी संत सतगुरु के जीव अपना निशाना यानी लक्ष्य नहीं कायम कर सकता और न ही उसके बंधन कट सकते हैं और न बाचक ज्ञान जो मन में भरा है दूर हो सकता है। बिना चैतन्य सिंध के यानी उससे दूर होने पर यह बूंद भौसागर में बह जाती है। ७४।

चेतन जड़ तन गांठ बँधानी।
छूटै बिन बस ब्रह्म न भाई॥
छूटै गाँठ गगन चढ़ चीन्हें।
तब विधि ब्रह्म कहाई॥ ७५॥

चैतन्य की जड़ के साथ गाँठ बँधी हुई है। जब तक यह न छूटे जीव ब्रह्म स्वरुप नहीं होता। जब यह चढ़ कर गगन में पहुँचेगा तब जड़ चैतन्य की गाँठ खुलेगी और इसको इस बात का पता चलेगा, तब यह ब्रह्म कहलायेगा। ७५।

जैसे गगन रवी रहे बासा।
किरन भास भूमी पर आई॥
जबसबसिमटभासगतिरविमें।
बुंदा सिंध कहाई ॥ ७६॥

सूरज आकाश में रहता है और उसकी किरणें भूमि पर आती हैं। सूरज की किरणें और सूरज का भास सब सिमट कर सूरज में समा जावे, उस तरह अगर यह बूंद उलट कर सिंध में पहुँच जाय तो सिंध स्वरुप हो जाय। ७६।

नाश अकाश सूर शशि बिनसे।
तब रवि कहे कहो कहँ जाई॥
सो ठेके का खोज लगाओ।
वो पद कौने ठांई॥ ७७॥

जब आकाश, रवि और शशि सब नाश हो जायेंगे तब यह सूरज कहाँ जायेगा? इस बात का खोज लगाओ कि वह ठिकाना कहाँ है? ७७।

शास्तर ने गति गैल भुलाई।
ब्रह्म बाँध जड़ जीव रहाई॥
यहि विधि भूल फूल मन मारग।
या से गति नहिं पाई॥ ७८॥

शास्त्रों ने सच्ची राह को भुलाकर जीवों को भटका दिया और ब्रह्म ने जीवों को जड़ पदार्थों में बाँध दिया। इस तरह यह भूल में पड़ गया। फूला फूला फिरता है और मन के कहे में चलता है। इससे उसका ठिकाना नहीं लगता। ७८।

ज्ञान ठान दृढ़ शास्तर भाखा।
परमहंस ज्ञानी उरझाई॥
चार अवस्था भाख बताई।
सो सब कहत सुनाई ॥ ७९॥

शास्त्रों ने दृढ़ता से ज्ञान की महिमा वर्णन की और परम हंस और ज्ञानियों को ऐसे ज्ञान में उलझा दिया। उन्होंने जीव की चार अवस्थाओं का वर्णन किया और सबको यह बताया। ७९।

सब ज्ञानी तुरिया गति गावैं।
पूँछौ भेद सो मनसुख माहीं॥
जाग्रत स्वप्न सुषुपति तुरिया।
तुरियातीत सुनाई ॥ ८०॥

सब ज्ञानी तुरिया की महिमा गाते हैं। अगर उनसे उसका भेद पूछा जावे तो मन के वश होकर उसका उत्तर नहीं देते। जागृत स्वप्न सुषुप्ति तुरिया और तुरियातीत का वे सिर्फ जिक्र करते हैं। ८०।

जाग्रत स्वप्न का भेद न बूझैं।
सुखपति तुरिया मुख से गाई॥
तुरियातीत रीति मन मारग।
आगे भेद न पाई ॥ ८१॥

वे जागृत और स्वप्न की अवस्थाओं का भेद नहीं समझते। सुषुप्ति तुरिया और तुरियातीत का वर्णन वे अपने मन की मति अनुसार करते हैं और उनसे आगे का भेद नहीं जानते। ८१।

बानी चार लार कहि बोलें।
परा पसंती मधमा भाई॥
बैखरी विधि बोलें सब बोली।
कँवल पेट के माहीं॥ ८२॥

वे चार प्रकार की वाणी परा पश्यंती मध्यमा और बैखरी का वर्णन करते हैं। जब आवाज मुँह से निकलती है और सबके सुनने योग्य होती है तब उसे बैखरी कहते हैं। इन सब वाणियों या शब्दों या नादों का उत्थान पेट के कँवल से हुआ है। ८२।

यहाँ से बानी उठत बतावैं।
बिष्ठा बास बतावत आई॥
जहँ से बानी उठत अवाजा।
वहँ का खोज न पाई॥ ८३॥

वे इस स्थान से शब्दों या वाणियों का उत्थान बतलाते हैं जो कि विष्ठा की जगह है। पर वास्तव में जहाँ से इनका उत्थान हुआ है उसका भेद नहीं जानते। ८३।

ज्ञान तीन गति गाय सुनावैं।
रेचक पूरक कुंभ कहाई॥
यह सब ज्ञानी बानी बूझैं।
मन संग बुद्धि बहाई॥ ८४॥

ज्ञान मत रेचक पूरक कुंभक का वर्णन करता है। यह ज्ञानी केवल वाणियों में उलझे रहते हैं और मन और बुद्धि के संग बह जाते हैं। ८४।

मन विधि ज्ञान बुद्धि बस देखे।
ब्रह्म ब्रह्म कर कहत सुनाई॥
आतम को अद्वैत बतावैं।
या से बूझ न आई॥ ८५॥

बुद्धि के बस होकर यह मन क्रे ज्ञान को पहचानते हैं और सबको ब्रह्म की महिमा बतलाते हैं। आत्मा और ब्रह्म में भेद नहीं मानते। इससे उन्हें सच्ची समझ नहीं आती। ८५।

आतम कुबुधि बंध करमन में।
ब्रह्म ज्ञान गति कहत बुझाई॥
रहे अज्ञान बास जड़ देही।
ता बिच गांठ बँधाई॥ ८६॥

वे कर्मों के फंदे में पड़े हैं, इसलिये उनकी आत्मा कुबुद्धि से भरी हुई है। मुँह से ब्रह्म ज्ञान का वर्णन करते हैं पर वास्तव में वे अज्ञानी हैं और देह में फँसे हुए हैं। उनकी जड़ के संग गाँठ बँधी हुई है। ८६।

ठटकर टाट ठटे जब सूरत।
अंडा फोड़ अगम गति पाई॥
शब्द सिंध सूरत चढ़ जावै।
जब पावै पद आई॥ ८७॥

जब सुरत साज सामान से सुसज्जित होती है तो वहाँ भिन्न-भिन्न मंडलों को फोड़कर अगम गति को प्राप्त होती है। जब सुरत शब्द के सिंध में चढ़कर पहुँचती है तब वह अपने निज पद को पाती है। ८७।

तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जाने।
संत पंथ कहि कहत सुनाई॥
मैं मति नीच कीच सम किंकर।
सतसंग समझ सुनाई ॥ ८८॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मैं तुच्छ हूँ और कुछ नहीं जानता। मैंने सिर्फ संत मत का वर्णन किया है। मेरी हीन मति है और मैं किंकर और कीचक की तरह तुच्छ हूँ। मैंने सतसंग की समझ का वर्णन किया है। यह दीनता की पराकाष्ठा है। ८८।

सत्तलोक व राधास्वामी धाम का इशारे में वर्णन

निम्न पदों में तुलसी साहब ने सत्तलोक का भेद लिखा है :-

॥ शब्द १०४ ॥

एरी आली खोज खबर धस धाई।
गवन भवन भिन भेद लखाऊँ॥
सत मत जोत नाद नहिं जाई।
अलख जोत बिन खलक समाना॥
जाना जिन जिन गाई।
नाम निवास बास सतलोका॥
जेहि का कंवल तेज सुन माहीं।
परमातम पद सुन पूरे धामा॥
सुन धुन आतम आई।

हे सखी! मुझे सत्तलोक की खोज खबर यानी भेद व पता मिल गया। अत: मैं जल्दी से दौड़कर अंतर में धँसती चली गई और उस धाम तक पहुँच गई। मैं यह भेद तुझे बताती हूँ, जो सबसे भिन्न है। सत्तलोक में ज्योति यानी माया और नाद यानी ब्रह्म की गति नहीं है।

खलक यानी तीन लोक की रचना से न्यारा व अलग हुए बिना सत्तलोक की अलख ज्योति में नहीं समाया जा सकता है। जिस जिसने यह भेद जान लिया, उसी ने इसका वर्णन किया है, यानी उसी ने यह भेद खोला है।

उसका नाम सत्तनाम है और वह धाम सत्तलोक है। उसके कँवल का प्रकाश सुन्न लोक तक है यानी सुन्न लोक उसके प्रकाश से ही प्रकाशित व आलोकित है।

सुन्न के परे परमात्म पद ही सत्तलोक है, जहाँ सुरत शब्द को सुनती हुई पहुँचती है यानी सुरत शब्द योग द्वारा वहाँ पहुँचा जा सकता है।

॥ शब्द १०५ ॥

गगन के गुमठ पर गैब का चाँदना।
संत बिन भेद नहिं हाथ आवै॥
हद्द बेहद्द के पार परचा मिले।
होय निज हंस सोई महल पावे॥
अगमपुर बास जँह नाहिं जम त्रास है।
काल का अमल बल नाहिं जावे॥
दास तुलसी हुजूर दरबार है।
अलख और खलक दोउ नाहिं आवे॥

गगन यानी त्रिकुटी के शिखर पर अदृश्य मालिक का नूर झलकता है। उसका भेद सन्तों की दया के बिना, कोई नहीं जान सकता है। पिंड और ब्रह्मांड के पार पहुँचने पर ही यह भेद मालूम हो सकता है और सच्ची हंस गति प्राप्त होने पर ही उस लोक में यानी सत्तलोक में प्रवेश मिल सकता है।

अगमपुर यानी सत्तलोक में न तो काल का बास है और न उसका भय है। वहाँ उसका हुक्म व जोर जबरदस्ती नहीं चलती है।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि वह सत्तपुरुष का दरबार है और काल व काल की रचना दोनों का वहाँ गम नहीं है।

॥ शब्द १०६ ॥

जहँ सत्तलोक मोष पर बैनी।
मंजन करके सहज अन्हाई॥
चढ़ कर द्वार देख सत साहब।
शुभ और अशुभ नसाई॥
जे जे बंद फंद करमन के।
सत्तपुरुष दरसत नस जाई॥
यहि विधि भांति सुरत से खेले।
सतगुरु कहत बुझाई॥

मोक्ष के द्वार यानी सुन्न में त्रिवेणी है। सुरत उसमें स्नान करके निर्मल हो जाती है। इसके बाद सत्तलोक है। सुरत सत्तलोक के द्वार में प्रवेश करके पुरुष का दर्शन करती है और दर्शन करते ही उसके पुण्य और पाप कर्मों का नाश हो जाता है। जीव के कर्मों के जो बंधन और फांसी लगी हुई है, सत्तपुरुष का दर्शन करने पर सब कट जाते हैं यानी जीव को मुक्ति मिल जाती है।

सतगुरु जीवों को समझाते हुए फरमाते हैं कि जो इस विधि से सुरत द्वारा अभ्यास करता है उसका उद्धार हो जाता है।

तुलसी साहब ने निम्न पदों में सुन्न, भँवरगुफा व सत्तलोक का वर्णन करते हुए राधास्वामी धाम का भेद खोला है –

॥ शब्द १०७ ॥

सुन संत गति अति भारी
अली जोग जुगत से न्यारी
जँह शब्द न सुन्न अकारी
सुन सुन्न महासुन्न पारी
नहिं गुन निरगुन मद झारी
सत्त नाम पिया पद भारी
तुलसी निज नाम निहारी
जँह आदि अनाम अपारी

हे सखी! सुन, सन्तों की महिमा बहुत भारी है। यह योगाभ्यास या अन्य किसी साधना या विधि से नहीं जानी जा सकती है। संतों के देश में न शब्द है, न रुप है। वह सुन्न और महासुन्न के परे है। वहाँ तीनों गुण, ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा निरगुन यानी निरंजन की पहुँच नहीं है। वह सत्तनाम पिया का धाम है जो महान है और वहाँ सत्तनाम विराजते हैं। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि उससे ऊपर आदि, अनाम और अपार कुल्ल मालिक का सच्चा नाम है।

॥ शब्द १०८ ॥

संत मता कुछ और पुकारे

आतम जीव मानसर माहिं
परमातम सुन खिड़की पारा
संतन देख जनाई
आगे सत्त लोक चौथे में
सो उवाच सतपुरुष कहाई
जँह नहिं निरगुन वेद विचारा
यह सब वार रहाई
चौथे पार अनाम अमाया
नाम न रुप अगम गति गाई
सो सब संत करैं दरबारा
यह गति बिरले पाई

संत मत में कुछ न्यारा ही भेद बताया है। संतों के मत के अनुसार आत्म पद, सुन्न लोक में मानसरोवर में है और परमात्म पद, सुन्न के परे और भँवरगुफा की खिड़की के पार सत्तलोक में है। संतों ने यह भेद प्रत्यक्ष देख कर ही बताया है।

सुन्न के सत्तलोक चौथे खंड में है। उसका धनी सत्तपुरुष कहलाता है। उसका स्वरुप अवर्णनीय है। उस लोक में निरगुन यानी निरंजन और वेद मत की पहुँच नहीं है। ये सब तो इस ओर ही रह गये।

चौथे खंड में, सब के पार अनामी पुरुष (राधास्वामी) हैं जिनमें माया का नामो निशान भी नहीं है। वह अनामी है, अरुप है और उनकी गति अगम है यानी वहाँ तक कोई भी नहीं पहुँच सकता है। वह संतों का निज दरबार है और कोई बिरले संत यानी परम संत ही वहाँ पहुँचते हैं।

॥ शब्द १०९ ॥

एक अगत्त अगाध अनाम, सो धाम न गाम न ठौर ठिकाना
जहाँ लख्य अलख्य का खेल नहीं, सो ख़लक्क़ बिचारे ने काहै को जाना

ता की विधि कोई संत लखै, सो अपेल अकेल का रुप न जाना
आतम हंस परमातम बंस, सो इन दोऊ नहीं यह देश पिछाना
जहाँ ब्रह्म न जीव अजीब को बास, सो चंद न सूर जमी अस्माना
पिंड ब्रह्माण्ड जो तत्त नहीं, जहाँ सत्तहु लोक नहीं अस्थाना
सो साहब सत्त के पार बसे, सो अगाध अनाम जो संत समाना
जा की विधि तुलसी लख पाई, सो देख अनाम को जान बखाना

अनामी पुरुष तक कोई नहीं पहुँच सकता है और न कोई उसकी थाह पा सकता है। उसके धाम को न तो गाँव कह सकते हैं और न ठौर ठिकाना कह सकते हैं यानी वह लामुकाम है।

उसके यहाँ न कोई प्रकट है और न गुप्त है। इसलिए बेचारे संसारी जीव उसके बारे में क्या जान सकते हैं। उसकी विधि यानी उसके पास पहुँचने की जुगत सिर्फ संत ही जानते हैं। उस अचल और अकेले अनामी पुरुष का रुप और नाम भी नहीं है।

आत्मा और परमात्मा ने उसे नहीं जाना। वहाँ ब्रह्म, जीव, जड़, वस्तु, चांद, सूरज, जमीन व आसमान भी नहीं हैं।

वहाँ पिंड, ब्रह्मांड और यहाँ तक कि सत्तलोक की पहुँच भी नहीं है यानी वह अनामी पुरुष ब्रह्मांड और सत्तलोक के भी परे है। वह कुल्ल मालिक, जो सत्तलोक के परे है, सबसे आगे है और अनाम है। संत वहाँ जाकर समाते हैं।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि उस अनामी पुरुष यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी का भेद उन्होंने लखा है और उसे प्रत्यक्ष देखकर व जानकर वर्णन किया है।

॥ शब्द ११० ॥

कहँ तुलसी सुन अगम संदेसा, आदि अंत दरसाओं देखा
प्रथम रहै इक पुरुष अनामा, चौथे पद के पार ठिकाना
जब नहिं रहे गगन आकासा, चंदा सूरज नहिं परकासा
धरती अगिन व पवन निवासा, पानी जगत रहे नहिं बासा

पिंड ब्रह्माण्ड लोक नहिं होई, और अलोक विधि नहिं सोई
चौथा पद रचना नहिं ठानी, ता के आगे पुरुष अनामी
तासु लहर सत साहब भयेऊ, सत्तनाम संतन ने कहेऊ
याकी बिधी बिधी गति गाई, बिन सतसंग नहीं दरसाई
होइ सतसंग कहौं सब लेखा, खुलै नैन हिरदे से देखा
तीनों लोक पार है चौथा, ता के परे अनामी सो था
तासु लहर उपजा सतनामा, चौथे पद की रचना ठाना

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मैं उस देश का संदेश सुनाता हूँ, जहाँ कोई नहीं पहुँच सकता है। मैं उसका आदि से अंत तक वर्णन करता हूँ, जो मैंने प्रत्यक्ष देखा है।

सबसे पहले केवल एक अनामी पुरुष था कि जिनका धाम चौथे पद के पार है। तब आकाश, गगन मण्डल, चन्द्र, सूर्य व उनका प्रकाश, धरती, अग्नि, पवन, संसार पिंड लोक व अन्य किसी लोक की रचना नहीं हुई थी। चौथे पद में यानी दयाल देश में अगम, अलख और सत्तलोक की भी रचना थी। चौथे पद में यानी दयाल देश में अगम, अलख और सत्तलोक की भी रचना नहीं हुई थी। इन सबसे आगे केवल एक अनामी पुरुष था। उससे लहर उठी और जिससे सत्तपुरुष की उत्पत्ति हुई। संतों ने उन्हें सत्तनाम कहा है। यह उत्पत्ति किस विधि से हुई, मैं यह तुम्हें बताता हूँ, किन्तु बिना सतसंग किये तुम इस भेद को नहीं जान सकते हो। जब कुछ समय तुम सतसंग करो तो मैं तुम्हें यह भेद बताऊँ, तब तुम इसे अपने हिये के नैनों से देख सकते हो। तीन लोक-पिंड लोक, अंड लोक और ब्रह्माण्ड लोक-के परे चौथा लोक दयाल देश है, उसमें सबसे परे व आगे केवल एक अनामी पुरुष "सो" यानी स्वामी कुल्ल मालिक था। उसी से सत्तनाम की उत्पत्ति हुई और चौथे लोक की रचना हुई। अकह अपार अनामी पुरुष, जो रचना से पूर्व कुल्ल मालिक-स्वामी का रुप था, उसका संकेत तुलसी साहब ने "सो" शब्द के द्वारा किया है। राधास्वामी मत के संस्थापक आचार्य स्वामी जी महाराज ने भी अपनी बानी में, इस विषय में, इस प्रकार फरमाया है :-

संत दयाल जीव हितकारी। भेद कहैं अब निज कर भारी
नहिं खालिक मखलूक न खिल्कत। कर्ता कारन काज न दिक़्क़त

दृष्टा दृष्टि नहिं कुछ दरसत। वाच लक्ष नहिं पद न पदारथ
ज़ात सिफ़ात न अव्वल आखिर। गुप्त न परघट बातिन जाहिर
राम रहीम करीम न केशो। कुछ नहिं कुछ नहिं कुछ नहिं था सो
जेठ मास

दयालु संत जो जीवों का कल्याण करने वाले हैं, अब सत्य भेद प्रकट करते हैं। तब न तो कर्ता था और न रचना थी और न कुछ दृष्टि थी। वाच, लक्ष, पद (धाम) और पदार्थ भी नहीं थे। न सार था और उसके गुण थे, न कोई प्रथम था और न अंतिम था। न कोई प्रकट था और न गुप्त था। न कोई बाहर था और न कोई अन्दर था। तब राम, रहीम, करीम और केशव भी नहीं हुए थे। तब कुछ नहीं था यानी पिंड लोक, अंड लोक और ब्रह्माण्ड लोक व उनकी रचना नहीं थी केवल ''सो''.था यानी स्वामी अनामी कुल्ल मालिक था। यही तथ्य तुलसी साहब ने अपनी बानी में ''ता के परे अनामी सो था'' के द्वारा वर्णन किया है।

सुन्दर दास जी ने इसी बात को इस तरह वर्णन किया है :

यहु नहिं, यहु नहिं, यहु नहिं, होवे इसदै परे, सो तू ही
वह अवशेष रहे सो सुन्दर, सो तू ही सो तू ही

स्वामीजी महाराज ने स्वयं फरमाया-

नानक और कबीर बखाना
तुलसी साहब निज कर जाना

हुजूर महाराज ने स्वामीजी महाराज की सेवा में भेजे हुए पत्रों में कई स्थानों पर तुलसी साहब की 'घट रामायण' व शब्दावली का उल्लेख किया है। सतसंग के बारे में रामायण में कहा है :

मिलेहु गरुड़ मारग मँह मोही। कवन भाँति समझावहुँ तोहि
तबहिं होई सब संसय भंगा। जब बहु काल करिये सतसंगा
हिये के नैन खुलने पर ही अंतर में दिखाई दे सकता है।

स्वामीजी महाराज ने फरमाया है :-

गुरु निरखो री, हिये नैन खुले
गुरु देखो री

॥ शब्द १११ ॥

शब्द भेद साखी लखै सोई साध सुजाना हो
अगम निगम गम चीन्ह के बानी पहचाना हो
सुरत शिष्य शब्दा गुरा मिल मारग जाना हो
लख अकाश औंधा कुआँ तामें सुरत समाना हो
गगन गिरा गरजत भई फोड़ा अस्माना हो
गरा जमन बिच सरस्वती बेनी अस्नाना हो
जोग ज्ञान गम न लखे आली अगम ठिकाना हो
तुलसी दरस दुरबीन का कोई तोड़ निशाना हो
सिन्धु बुन्द सागर मिला सोई सिन्धु समाना हो

तुलसी साहब कहते हैं कि जो अनहद शब्द का भेद और शब्द मार्ग को जानता हो और सुरत शब्द योग की साधना करके ऊँचे मुकामों में पहुँचे और उसका प्रत्यक्ष लखाव कर सकें, वही चतुर व साध पुरुष हैं।

सुरत, इस मार्ग पर, शब्द गुरु की शिष्य बनकर, यानी शब्द के अधीन होकर और शब्द से मिलकर ही जा सकती है और वह अगम व निगम यानी सुन्न व महासुन्न को पार करके, सत्तलोक की बानी यानी सत्त शब्द को पहचान सकती है।

सुरत, चैतन्य आकाश में औंधें कुँए को देखकर उसमें प्रवेश करती है, यानी वह घट से औघट में प्रवेश करती है, जिसका मुँह उलटे कुएँ के समान है। सुरत चैतन्य आकाश को पार करके त्रिकुटी में पहुँचती है, जहाँ वह बादल के समान घोर गर्जना करती है।

फिर सुरत सुन्न में पहुँचती है, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती यानी त्रिवेणी का संगम है। उसमें स्नान करके, वह निर्मल और पवित्र होती है।

जोग ज्ञान गम न लखे

सुन्न के आगे का भेद जोगियों और ज्ञानियों को नहीं मिला। इसलिये सुन्न से आगे की चढ़ाई योगाभ्यास या ज्ञान मत द्वारा नहीं की जा सकती है।

यह गति मति है सबसे न्यारी
ज्ञानी जोगी मर्म न जान
(राधास्वामी साहब)

अगम ठिकाना हो

सबसे ऊँचा अगम ठिकाना हो, जो सत्तलोक और अगम लोक के आगे है। वहाँ पर जोगी और ज्ञानी नहीं पहुँच सकते हैं। यही राधास्वामी पद व धुर धाम है।

तुलसी दरस दुरबीन का, कोई तोड़ निशाना हो

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अगम ठिकाने में यानी राधास्वामी धाम में राधास्वामी दयाल के दर्शन करने के लिये, सतगुरू से शब्द मार्ग का भेद लेकर और सुरत शब्द योग द्वारा चढ़ाई करके और सत्तलोक में सत्तपुरूष से दुरबीन यानी दिव्य—दृष्टि प्राप्त करके ही, पहुँचा जा सकता है।

यहाँ से चढ़ पहुँची सतपुर में
सतगुरू पूरे मिले अधर में,
नाना धुन सुन बीन बजाई
सत्तपुरूष दुरबीन लखाई
द्वारे धँस गई अलख लोक में
अगम लोक फल पाया छिन में
राधास्वामी पद दरसाना
क्या कहूँ महिमा अजब ठिकाना
(राधास्वामी साहब)

सिंधु बंद सागर मिला, सोई सिंधु समाना हो

वह अगम ठिकाना चैतन्य का सिन्धु है और सुरत उस चैतन्य सिन्धु की

एक बूँद है। अंत में, सुरत को वह चैतन्य सिन्धु मिल गया और वह उसी में जा समाई।

अनामी ही राधास्वामी है :-

सब की आदि कहूँ अब स्वामी। अकह अगाध अपार अनामी
तिन से अगम पुरुष प्रगटाये। अगम लोक में आसन लाये
अलख पुरुष का हुआ उजाला। अलख लोक उन चौकी डाला
फिर सतनाम पुरुष संत होई। सत्य सत्य रचना जहँ होई

(बचन २३ शब्द १)

अकह अपार अगाध अनामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी
हैरत रुप अथाह दवामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी
अगम रूप धर आय अनामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी
अलख धाम के फिर हुए धामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी
सत्तलोक में हुए सत्तनामी। वह मेरे प्यारे राधास्वामी

(बचन ५ शब्द १)

मौज अनामी क्या कहुँ लेखा
बरना न जाय रूप जस देखा
सोई रुप धरा राधास्वामी
जीव काज आये निज धामी

(बचन ३५ शब्द ३)

सारबचन छंद बंद

पिछले संत जो यहाँ पधारे उनको राधास्वामी का भेद मालूम था मगर उस समय, सत्तनाम तक का ही भेद और उपदेश देने का हुक्म था। वह वक्त और उस वक्त का अधिकार ऐसा ही था। स्वामीजी महाराज ने अपनी बानी में जहाँ पाँच नाम के भेद का बयान किया है, वहाँ पाँचवा नाम यानी सतनाम का वर्णन खत्म करके उसी के आगे, अलख, अगम और अनामी का वर्णन किया है। वह कड़ियाँ नीचे लिखी जाती हैं :-

ताके परे धाम सतनामा
बीन बजे सतलोक ठिकाना
सुनत सुरत फिर आगे चढ़ी
अलख लोक में जाकर धरी
कोटन अरब सूर उजियारा
अलख पुरुष छवि अद्‌भुत धारा
तहाँ से अगम लोक को चली
अगम पुरुष से जाकर मिली
खरबन सूर चन्द्र परकासा
धुन का वहाँ की अगम बिलासा
धुन का वर्णन कैसे गाऊँ
जग में कोई दृष्टांत न पाऊँ
ताके आगे रहत अनामी
निज घर संतन बरना स्वामी

(सारबचन छंद बंद)

॥ शब्द ११२ ॥

शब्द शब्द सब कहत हैं और शब्द सुन्न के पार
शब्द सुन्न के पार सार सोई शब्द कहावे
पछिम द्वार के पार पार के पार समावे
दो दल कँवल मँझार मध्य में आवे
संतन दिया लखाय सार सोई शब्द कहावे
तुलसी सत सतलोक से कहुँ कुछ भेद निनार
शब्द शब्द सब कहत हैं और शब्द सुन्न के पार

शब्द की महिमा सब कोई करते हैं, किन्तु असली व सच्चा शब्द, सुन्न के पार, सत्तलोक में है और वह सार शब्द और सत्त शब्द यानी सतनाम है।

पश्चिम द्वार के पार यानी सुन्न के पार, महासुन्न है, उसके पार भँवर गुफा है और उसके पार सत्तलोक है, उसमें समाना चाहिये। संतों ने जिस पद में जाकर समाने के लिये कहा है, वह सत्तलोक है।

सत्तलोक में पहुँचने के लिये, दो दल कँवल यानी तीसरे तिल के मध्य में आना चाहिए यानी दोनों आखों की दोनों धारों को समेट कर, तीसरे तिल पर जमा कर, नाम का सुमिरन करना, ध्यान लगाना और शब्द को सुनना चाहिए। सतों ने यह सार भेद बताया है। शब्द के ज़रिये ही सुरत अंतर में ऊपर चढ़ सकती है और सत्तलोक में पहुँच सकती है।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अब वह भेद बताता हूँ जो सत्तलोक से न्यारा व आगे है, यानी सत्तलोक के आगे अलख लोक, अगम लोक व राधास्वामी का धाम का भेद बताता हूँ।

सत्तलोक में सार शब्द है और वहाँ समाने के लिये तुलसी साहब आदेश कर रहे हैं किन्तु इसके आगे संत तुलसी साहब फिर कहते हैं :-

''तुलसी सत सतलोक से कहूँ कुछ भेद निनार''

अर्थात् मैं सत्तलोक के परे यानी अलख अगम और अनामी का जो न्यारा भेद है, वह कहूँगा। संत तुलसी साहब ने इस प्रकार यद्यपि उपदेश सत्तनाम तक का ही किया है, पर यहाँ संकेत कर रहे हैं कि सत्तलोक के आगे भी कुछ न्यारा भेद है। उन्होंने उस भेद को स्पष्ट करके उपदेश नहीं किया। कहीं कहीं अनामी शब्द का का प्रयोग करके संकेत मात्र किया है।

सत्तनाम की महिमा में तुलसी साहब ने फरमाया है :-

सत्त का भेद अभेद अपार, सो सार वहि वह देश को जाने
सूरत सैल से केल करे, सो अकेल अपेल की साख बखाने
वेद पुरान नहिं मत ज्ञान, सो जोगी को ध्यान न पहुँचे निदाने
ताकी कहे तुलसी विधि खोल, सो संत बिना नहिं भेद पिछाने

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सत्तलोक का भेद अपार है, उसको कोई नहीं

जानता है। उसका सार वही जानता है जो उस देश में पहुँचा हुआ है और उस देश को जानता है।

सुरत वहाँ पर अद्‌भुत लीला बिलास करती है और वहाँ के धनी सत्तपुरुष जो अकेले और अटल हैं उनके गुणगान करती है। वेद, पुरान, ज्ञान मत और जोगी भी ध्यान द्वारा वहाँ नहीं पहुँच सकते हैं।

तुलसी साहब कहते हैं कि वहाँ पहुँचने की जुक्ति मैं खोल कर बताता हूँ, किन्तु बिना संत की दया के उस भेद को कोई नहीं जानता है।

तुलसी साहब की कुण्डलिया

॥ कुण्डली ११३ ॥

देखा जगत पसार लार कछु चले न भाई।
धाय धाय सब मरें धन को धावें जाई॥
प्रान निकट जब जाय नहीं संग खर्चा लीन्हा।
अरे हाँ तुलसी अंधरा जग सत संगत नहीं चीन्हा॥

संसार के सब कारोबार, धन सम्पत्ति को सब लोग देखते हैं कि मरते वक्त जीव के साथ कुछ भी नहीं जाता है, यहीं छोड़ कर जाता है। फिर भी धन प्राप्त करने के लिए जतन और मेहनत करता है। यह भी देखता और जानता है कि प्राण निकलते समय यानि मृत्यु होने पर धन किसी काम नहीं आता और प्राणों को निकलने से कोई नहीं रोक सकता है, फिर भी सब लोग धन दौलत बटोरने के लिये खप रहे हैं।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि संसार अंधा है। संतों की संगत नहीं प्राप्त हुई। यदि सतसंग संतों का मिला होता और असली और सत्य धन प्राप्त होता तो हमेशा साथ रहता रखता और काम आता।

॥ कुण्डली ११४ ॥

जम है बड़ा जबर कराल, चाल कोई लखे न भाई।
जम कस बांधे हाथ, संत बिन कौन छुड़ाई॥

बड़े कहो भगवान तारहि को मार गिराया।
अरे हाँ तुलसी, राम कृष्ण औतार नहीं बचने पाया॥

जम यानि काल बड़ा शक्तिशाली और कठोर है, कब आकर पकड़ कर ले जावे, दिखाई नहीं देता है। उसके पंजे से संत ही छुड़ा सकते हैं और कोई नहीं। जिनको लोग बड़ा कहते हैं और उन्हें भगवान मानते हैं, उनको भी जम ने मार दिया। राम, कृष्ण और औतार भी नहीं बचे यानि वे भी मृत्यु को प्राप्त हुए और सदा अमर नहीं रहे।

॥ कुण्डली ११५ ॥

इस जहान में मौत ने मार लिया, कोई सोत के पोत से आवता है।
पंछी गुलाल ज्यों काल मारे, कर जाल में डाल के लावता है॥
तुलसी तलाश कर पास पिया, गुरु बिन नजर नहीं आवता है॥
(शब्दावली भाग पहला - कुण्डलिया ८)

इस संसार में जीव को काल ने अपने बस में कर लिया है, और जीव जन्म मरण के चक्र में घूमता रहता है, और इसमें काल रस लेता है और जीव का उद्धार नहीं होने देता है, अर्थात् वह चौरासी के चक्कर में फंसाये रखता है।

तुलसी साहब कहते हैं कि तुम्हारा पिया (संत सतगुरु-मालिक, तुम्हारे अत:करण में है उसे खोजो और उसकी भक्ति करो वही काल के जाल से निकाल सकते हैं, गुरु के अलावा मुझे और कोई नज़र नहीं आता है।

॥ कुण्डली ११६ ॥

संसार सराय का बास हैरे, दिन बीस बसेरा पावता है॥
रावन विक्रम और भीम सोई, तज माल मुल्क कुल जावता है॥
तुलसी विनास ने घेर मारा, नहीं पास के बास को पावता है॥
(शब्दावली भाग पहला कुण्डलिया ९)

जैसे सराय यानी धर्मशाला में यात्री थोड़े दिन रहकर अपने घर चला जाता है, वहाँ हमेशा नहीं रहता है, इसी तरह जीव भी इस संसार में थोड़े दिन

रहता है, और इस संसार को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त होता है, रावण जैसा प्रतापी राजा, राजा विक्रमादित्य जो कि न्यायप्रिय था, भीमसेन जैसे महाबली योद्धा सब लोग यहाँ की सम्पत्ति, व देश को छोड़कर चले गये, सब का अंत हुआ। उन्होंने अपने अत:करण के मालिक (सतगुरु) को नहीं पाया।

॥ कुण्डली ११७ ॥

घट घट में रचना होय रही, स्त्रुति सैल से संत निहारते हैं॥
सत मत का अंत लखाव लखै, सो पकाय के पार सुनावते हैं॥
तुलसी जो दास का दास कहिये, गुरु बैन के चैन से पावते हैं॥
(शब्दावली भाग पहला कुण्डलिया १०)

मनुष्य शरीर उत्तम योनि है इस शरीर के द्वारा ही मालिक से मिला जा सकता है क्योंकि इसमें चक्र कवंल पदम और केन्द्र (Centre) बने हुए हैं, जिसकी सूक्ष्म धारों के द्वारा ऊँचे लोकों से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। कहा भी है "पिण्डेशु ब्रह्माण्डे" अर्थात् इसी पिंड में ब्रह्माण्ड बसता है। हमारे घट में सारी रचना मौजूद है जिसे सुरत द्वारा संत नित्य देखते हैं। संत सतगुरु जीव को निर्मल करके उसे आदि धाम का लखाव कराते हैं। संतों के बचन अमृतवाणी है परावानी, आकाशवानी है जिसे कि (उन्होंने अंतरमुख अभ्यास करके देखा व सुना उसे ही उन्होंने अपनी बानी में फर्माया) उसे संतों के दासों के दास (गुरुमुख शिष्य) सुन कर तृप्त हो जाते हैं।

॥ कुण्डली ११८ ॥

संत सरन जो पड़े ताहि का लगा ठिकाना।
और कहीं नहीं कुसल सकल वैराट चबाना॥
काल संत से डरे सीस चरनन पर डारा।
अरे हाँ तुलसी बिना संत नहीं ठौर नहीं उबारा॥

संत सरन में जो आया उसको निज घर का पता और भेद और वहाँ पहुँचने की जुगत मालूम हो गई। काल केवल संत सतगुरु से डरता है। सत्तपुरुष स्वरुप सतगुरु से काल का दरजा नीचा है। बिना संतों की सरन लिये,

काल और माया की हद्द से पार कोई नहीं जा सकता है। संतों की सरन लेने के सिवाय और कोई उपाय काल के जाल से बचने का नहीं है।

॥ कुण्डली ११९ ॥

भवजल अगम अथाह नहीं मिले ठिकाना।
सतगुरु केवट मिलें पार घर अपना जाना॥
जग रचना जमजाल जीव माया ने घेरा।
अरे हाँ तुलसी लोभ मोह बस करैं, चौरासी फैरा॥

भवसागर अगम अथाह है, उसके पार कोई भी जीव अपने आप नहीं जा सकता। संसार और उसकी सारी रचना में जम यानि काल ने जीवों को यहीं फंसाये रखने का जाल बिछाये रखा है, और माया ने अनेक प्रकार के भोगों में जीवों को बांध लिया है और लोभ मोह के बस जीव चौरासी खान में घूमता फिरता है। अगर जीवों को सतगुरु मिल जावें और संत समागम हो जाये तो भवसागर पार कर निज घर का भेद और रास्ता मिल सकता है।

मिश्रित शब्द

॥ शब्द १२० ॥

कोई चुरियाँ लो री बँगरिया ॥ टेक॥
चुरियाँ मन मनिहार पुकारे, पार अधर घर गढ़ियाँ॥ १॥
छल्ला गढ़ सुन धाम सुनरियाँ, पहिनो अगम अँगुरियाँ॥ २॥
फूल फूल माला दई मलियाँ, पहिनो प्रेम पियरियाँ॥ ३॥
लालू सुरत सजी सिंगारा, सत मत घेर घघरियाँ॥ ४॥
अँगिया अंग अंग से न्यारी, गो गुन गन बस करियाँ॥ ५॥
तुलसी तेज तरस से निकली, सौदा सतगुरू करियाँ॥ ६॥

अरे कोई चूड़िया ख़रीदो। चूड़ियाँ बनाने वाला मन कहता है कि यह इस देश के पार अधर घर की बनी हुई हैं। १।

सुनार ने यह छल्ला सुन्न देश में बनाया है। वह पुकार कर कहता है कि इस अमूल्य छल्ले को पहनो। २।

माली यह फूलों की माला देता है और प्यारी सुरत से निवेदन करता है कि इसे पहनो। ३।

सुरत ने लाल वस्त्र पहनकर अपना सिंगार किया और सत्त मत का लहँगा पहना। ४।

उसने ऐसी अंगिया पहनी जो हर प्रकार से अनूप है और इन्द्रियों, तीनों गुन व मन को वश में किया। ५।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि उसके चारों ओर तेज फैल रहा है। यह सब सतगुरु के प्रताप से हुआ। ६।

॥ शब्द १२१ ॥

नहिं लागत लाज मंहत को ॥ टेक ॥
गाड़ी ऊँट अटा ले चालत, लानत ऐसे पंथ को ॥ १ ॥
चेला करत फिरत घर घर पर, आस बास दुख अंत को ॥ २ ॥
इंद्री सुख भोजन नित ख़ावत, जम घर तोड़त दंत को ॥ ३ ॥
काया बस माया सँग फूले, भूल मूल तज कंथ को ॥ ४ ॥
बदन बनाय काया जिन कीन्हा, चीन्ह चरन लख संत को ॥ ५ ॥
गुर घट भान जान सिष किरनी, नभ चढ़ मिल गुर मित्र को ॥ ६ ॥
कनफूंका सँग बाट न पैहौ, गुरु चेला बहे अंत को ॥ ७ ॥
गुरु अपना गुरु आदि न जाना, खानी परत परंत को ॥ ८ ॥
तुलसी किरन गगन गुरु भेंटत, भेटें काल दयंत को ॥ ९ ॥

महंत को तनिक लाज नहीं आती। ऊँट और गाड़ी लेकर चलता है। ऐसे पंथ को धिक्कार है। १।

घर-घर जाकर चेला बनाता है। इस तरह की आसा और बासना के कारण अंत को दुख सहता है। २।

इन्द्रियों के सुख भोगने और पेट भर भोजन करने में मस्त है। उसको जम पकड़ेंगे और दाँत तोड़ेंगे। ३।

काया के बंधन में गिरफ्तार है और माया के संग फूल रहा है। अपने मालिक का संग छोड़ दिया इसलिये अपने मूल पद को भूल गया। ४।

संतों को चीन्हो और उनके चरनों को लखो जिन्होंने तेरी काया बनाई है। यह भी समझ कि गुरु का तेज सूर्य की तरह तेरे अंदर विराज रहा है और अपने गुरू से जो सच्चे हिमायती हैं, मिलो। ५-६।

झूठे गुरु के संग जो कान में मंत्र फूँकते हैं, तुझे सच्चा मालिक नहीं मिलेगा। ऐसा गुरु और चेला दोनों अंत में बह जायेंगे। ७।

तैंने अपने सच्चे गुरु को नहीं पहचाना। इसलिये चारों खानों में भरमेगा। ८।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अगर कोई सच्चे गुरु से मिले जिनका तेज सूर्य की तरह गगन यानी त्रिकुटी में फैल रहा है तो वह काल को जीत लेगा। ९।

॥ शब्द १२२ ॥

कोई बूझै न परख प्रबन्ध, शब्द की संध को॥ टेक॥
ज्ञानी गुनी कवीश्वर पंडित, क्या जाने जग अंध॥
पंथ अंत को भेद न पावै, मन मूरख मति मंद॥ १॥
आस अनंत अपार असंखन, माया के फरफंद॥
आवा गवन भवन में भूले, सहन लगे दुख दुन्द॥ २॥
ऋषि मुनी तप बन फल खाते, सब जड़ मूली कंद॥
जगत त्याग बन भाग बसत हैं, रिध सिध उड़ेरी सुगंध॥ ३॥
आपन में आपा नहिं देखा, अन्दर माहिं अनन्द॥
सतगुरु गगन सोध नहिं कीना, चीन्हा न मन मकरंद॥ ४॥
तुलसी तुरत तत्त तन खोजै, छाँड़े धोखे धंध॥
सुरत डोर सुन द्वार शब्द में, पिया संग केल करंद॥ ५॥

इस बात को कोई नहीं जानता कि रचना में कैसे बंदोबस्त हो रहा है और शब्द का भेद क्या है। ज्ञानी विद्यावान कवीश्वर और पंडित वास्तव में कुछ नहीं जानते। सारा जगत अंधा है। पंथ का अंत यानी लक्ष्य क्या है, इसको कोई नहीं जानता। मन मूरख और मति मंद है। १।

जीवों के अंदर बे-शुमार आशाएं जिनका अंत नहीं है, भरी हुई हैं। जीव माया के धोखे में गिरफ़्तार है और आवागमन में भरम रहा है और अनेक तरह के दुख तकलीफ़ व लड़ाई झगड़ों में मुब्तिला है। २।

ऋषि मुनी जग में तप करते हैं और फल व कंद मूल खाते हैं और संसार को त्याग करके वन में बसते हैं लेकिन ऋद्धि सिद्धि की सुंगध वहाँ उड़ती है यानी ऋद्धि सिद्धि की इच्छा उनके अंदर रहती है। ३।

उन्होंने अपने आपको नहीं पहचाना और न यह जाना कि सच्चा आनन्द अंतर में ही है। उन्होंने सतगुरु और ऊँचे स्थानों का खोज नहीं किया और मन को नहीं पहचाना जो कि हाथी की तरह अभिमानी है। ४।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि अगर जीव शीघ्र ही भरम और असार कार्रवाईयों को छोड़कर अपने घट में तत्व का खोज करे और अपनी सुरत की डोरी को सुन्न द्वार के शब्द में लगावे तो उसे पिया का बिलास प्राप्त हो। ५।

॥ शब्द १२३ ॥

हक्क़ हज़ूरी संत पंथ कोई रहै न भाई।
सत साहब सिरदार और कोई दूजा नाई॥
कागज स्याही कलम रहै नहिं लिखने हारा।
अरे हांरे तुलसी आदि अंत नहिं हता नहीं सत असत पसारा॥

जब न सत्य था न संत थे न कोई पंथ था, तब केवल सच्चे कुल्ल मालिक आप थे और कोई नहीं था। १।

उस समय न कागज़ था, न स्याही, न कलम और न कोई लिखने वाला था। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि तब न आदि था न अंत था न सत्य असत्य की रचना थी। २।

॥ शब्द १२४ ॥

डगर संत का पंथ अंत कहो को लखै।
जग पंडित और भेष भूल भौ में पके॥
तीरथ नेम अचार भार सिर पर लिधा।
अरे हांरे तुलसी करम धरम अभिमान जान कर यह किया॥

उस अंतिम पंथ को जिसका मार्ग संतों ने बतलाया है, कौन जान सकता है? पंडित और भेख भूल भर्म में पड़े हैं। १।

तीरथ नेम और आचार करके उन्होंने सिर पर भार चढ़ाया है। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि वे जान बूझ कर करम धरम के अभिमान में पड़े हैं। २।

॥ शब्द १२५ ॥

पिया परसत भई री अमोल, खेल खुद आप जनाई।
अटल अडोल बोल नहीं जाके, सो पिया ने अपनाई॥
आऊँ री आय फिर जाऊँ, कोई लखन नहीं पाई।
जगत में रहूँ सदाई॥
मैं अली अपना भेद छिपाया, कोई सुपने नहीं पाई।
रहू री विदेह देह दरसाऊँ, ता से सूझ न आई॥
अलख बस पलक बसाई।
कर्त्ता काल खलक से न्यारी, प्यारी पुरुष दुलारी॥
स्वांस विनाश आकाश विनाश, मैं परले नहीं जाई।
पकड़ बांह पिया ने गले लगाई॥
तुलसी अतोल तुले नहीं अविनाशी, बासी सत शब्द बताई।
पास ही पुरुष पिया पद दासी, नित-नित रहूं निवासी॥
संत कोई पंथ लखाई।

सुरत कहती है कि स्वामी के चरन स्पर्श मात्र से मैं (सुरत) पूर्ण चैतन्य हो गयी, चेत में आ गई और चरनों में रत हो गई, अमोल हो गई।

स्वामी कुल्ल मालिक अकर्त्ता कर्त्ता, अटल अडोल अबोल सत्त धाम के बासी हैं, ने आप ऐसी मौज धारण करी और मुझे चरनों में मिला लिया, अपने अंग लगा लिया। मैं आती हूँ और लौटकर स्वामी के चरनों में जाती हूँ। मैं निरन्तर स्वामी के चरनों के सम्पर्क में रहती हूँ। मुझे कोई न देख पाया और न पहचान ही पाया।

मालिक कहता है कि मैं देह व सर्व बंधनों से मुक्त विदेह रहता हूँ। नर शरीर में आकर जीवों को ऊपर का भेद और रास्ता बताता हूँ।

इस रचना का कर्त्ता काल और उसकी बस्ती और हद्द के परे की बासी सुरत, सत्तपुरुष की प्यारी और प्रिय अंश है और वह मालिक की सरन में है। मालिक ने उसे गले से लगा लिया है। गल्हार बना लिया है, तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि सत्त शब्द स्वरुपी अविनाशी पुरुष की कोई तुलना नहीं है। वह अतोल है। सच्चे मालिक के धाम और पद में पहुँचने का रास्ता संत ही बता सकते हैं। मालिक-पिया पास में ही है। सत्तपुरुष रुप से प्रत्यक्ष है और घट अंतर में अपने शरीर में है, पास ही है।

उपरोक्त शब्द में तुलसी साहब ने बताया है कि मैं कितना गुप्त होकर संसार में रहा और मेरा भेद कोई नहीं जान पाया। मैं विदेह रहा पर संसार को देही दिखाई दी। किसी को सूझ नहीं पड़ी। पाँच तत्त्व नाश होकर जल में समा जावेगा पर हम प्रलय रहित स्थान के वासी हैं।

॥ शब्द १२६ ॥

अरी सखी प्रीतम संग केल करत रतियाँ बिताई।
अली सुरत संग कीन्हा पिया प्रेम रस पीना॥
बहियाँ पकड़ पलंग सुलाई।
जल भर झारी लाई-मन मथ कर मेवा खाई॥
रहस रहस पिया गले लगाई।
सखी सुख कहा ना जाई जस मेहर पिया की पाई॥
भव भूल सब विधि बखसाई।

जुग जुग संग में पाऊँ पिया की मेहर चाहूं॥
सत्तलोक में कुटी दई छुवाई।
कलप कलप दुख मैं पाई साईं की सरन अब आई॥
महल की खबर दई बताई।
तपन की ताप सब तोरी भव की भटक सब मिटोरी॥
ओढ़ अगम चीर चित लाई।
मरन और जीवन छूटा पिया संग सुख लूटा॥
दुलारी कर पिया अंग लगाई।
तुलसी साध संग मांहि-आदि भेद लख पाई॥
सुरत बुन्द सिंध मिल समुद्र समाई।

हे सखी! वही प्रीतम के संग केल करती हुई रत अवस्था को प्राप्त होगी अर्थात् वही मालिक के चरनों के आनंद और बिलास को प्राप्त होवेगी कि जिसको संत सतगुरु का संग यानि सतसंग मिलेगा। वही उनके अमृत रुपी वचनों को समझेगी, ग्रहण करेगी। मनन करेगी उसी में सतगुरु का प्रेम प्रीत पैदा होगी, उसी की सुरत तीसरे तिल के ऊपर जायेगी, जहाँ शब्द की धार-अमृत की धार जो ऊपर से आ रही है उससे स्पर्श करके, धुन सुनकर मगन हो जावेगी और मन का मंथन करके यानि सत्य वस्तु सार वस्तु शब्द को सतगुरु की मदद से प्राप्त करती हुई, पिया सत्तपुरुष के धाम में पहुँचेगी और पिया के गले मिलेगी। हे सखी, उस आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है। संत सतगुरु ने जो मेहर दया, प्यारी सुरत पर करी, कहने में नहीं आ सकती।

इस मेहर दया से भवसागर के सब दुख भूल गई। सुरत की आस और चाह जुगान जुग से पिया के देस में रहने की है, वह कहती है कि मैं पिया के संग रहूँ और मेरा घर वहीं बन जाय। अब तक मैंने बहुत दुख दर्द पाए, अब सतगुरु की सरन में आने से, मालिक के महल यानी धाम का भेद और जुगत मिल गई जिससे प्रीतम से मिलने की विरह अग्नि भड़क गई।

अन्तोगतवा मेरा जन्म मरण का चक्कर समाप्त हो गया और सतपुरुष का संग प्राप्त हो गया। प्रीतम ने मुझे अपने अंग लगा लिया।

तुलसी साहब कहते है कि साध के संग और सतसंग के करने से, उनकी कृपा से सर्वोच्च धाम का भेद मिल गया और सुरत जो आदि सिंध की बूंद है, मालिक से एकाकार हुआ और उसमें समा गई।

बानी में कहा है–

"सोई तो सखी पिया की प्यारी
जो भींज रही गुरु रंग सारी"

॥ शब्द १२७ ॥

पढ़े क्या बाँच रे तेरे अंदर उपजी न साँच ॥ टेक॥
पढ़ गुन सोध, भागवत गीता, फिर जजमान जाँच रे॥ १॥
नेमी नेम प्रेम रुपयन से, ज्यों कसबिन को नाच रे॥ २॥
पूरन होत कथा जब ऐसे, सब जुड़ बैठे पाँच रे॥ ३॥
करत विचार दंड राजन ज्यों, लूट जगत में गाछ रे॥ ४॥
मोट गरीब गरज लेने से, सुथरे दरस न आँच रे॥ ५॥
पंडित मुक्ति करें यों तुलसी, सो जग झूठे साँच रे॥ ६॥

तेरे मन में सत्य का उदय तो हुआ नहीं है, फिर ये धार्मिक पुस्तकें पढ़ने से क्या लाभ है, यदि तुझे पढ़ना ही है तो तू अपने घट की पोथी पढ़।

तू गीता भागवत आदि धार्मिक पुस्तकें पढ़ कर और मनन करके, निर्णय कर ले और जजमानों यानी यज्ञ करने वालों को भी जाँच ले तो तुझे असलियत का ज्ञान हो जावेगा। १।

यज्ञ करने वाले सिर्फ रुपयों से प्रेम करते हैं और रुपये प्राप्त करने के लिये वैश्या के समान नाच नचाते रहते हैं। २।

वे कथा सम्पूर्ण करके, सब के सब राजा की तरह दंड धारन करके बैठ जाते हैं और आज्ञा देकर व हथियार की नोक पर, संसारियों से धन लूटते हैं। ३-४।

किन्तु जब उन्हें किसी से कुछ गर्ज़ होती है तो वे गरीब भी बन जाते हैं। वे आँच में तपाने पर भी स्वच्छ नहीं होते हैं। ५।

तुलसी साहब कहते हैं कि ये पंडित इस संसार में झूठ साँच करके जीवों को मुक्ति दिलाने का ढोंग रचते हैं। ६।

॥ शब्द १२८ ॥

भौजल लहर उतंग संग कोइ खोजो रे खोजो॥ टेक॥
शिव सनकादि आदि मुनि नारद, सारद शेष कुरंग।
व्यासदत्त सुकदेव दिवाने, पावत फिर फिर अंग॥ १॥
श्रृंगी ऋषि पारासर मारे, कीन काम ने तंग।
ऋषि मुनी सब क्रोध कुबुद्धी, भयो तपस्या भंग॥ २॥
ब्रह्मा, विष्णु दसो औतारा, खुल खुल नच्यो अपंग।
और जगत जिव कहँ लग बरनूँ, आसा रंग तरंग॥ ३॥
तुलसी ताव दाव नर देही, सुरत गगन चढ़ गंग।
गूंजत भँवर फूल फुलवारी, कँवल अधर लख भृंग॥ ४॥

इस संसार-सागर में लहरें बहुत ऊँची ऊँची उठ रही हैं इसलिये तू संग में चलने वाले साथी की खोज कर। यहाँ पर शिव, सनकादि, मुनि नारद, शारदा और शेषनाग आदि की स्थिति से सब परिचित हैं।

व्यास, दत्तात्रेय और सुकदेव भी बार-बार जन्म धारण करते रहे और श्रृङ्गी ऋषि व पाराशर काम के वशीभूत होकर धोखा खा गये। इस तरह सब ऋषि मुनि क्रोध और कुबुद्धि की लपेट में आकर अपनी तपस्या भंग करवा बैठे। यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और दस अवतार भी खुलकर यानी बेरोक टोक नाचे यानी लीलाएँ की। तो फिर संसार के साधारण जीवों का क्या वर्णन किया जाय? वे सब इच्छाओं और कामनाओं की तरंग में बहते रहे। १-३।

तुलसी साहब कहते हैं कि अब किसी अनुकूल संयोग से तुझे नर देही मिली है। तू अपनी सुरत को सुरत शब्द योग द्वारा, अंतर में चैतन्य आकाश में चढ़ा ले, जहाँ पर शब्द रुपी गंगा निरन्तर बह रही है और फुलवारी में पाँच रंगों

के फूल खिले हैं, जिन पर भँवरे यानी अनेक सुरतें गुंजार कर रही हैं। तू भी भृंग यानी अपनी सुरत से वहाँ सहसदल कँवल के दर्शन कर, जो कि बिना किसी आधार या सहारे के वहाँ पर स्थित है। ४।

॥ शब्द १२९ ॥

यह तन दुरलभ देव को, सब कोइ कहत पुकार।
सब कोइ कहत पुकार, देह देही नहिं पावें।
ऐसे मूरख लोग, स्वर्ग की आस लगा वें।
पुण्य छीन सोइ देव, स्वर्ग से नर्क में आवें॥
भरमें चारों खान, पुन्य कह ताहि रिझावें॥ २॥
तुलसी तन मन तत्त लखे, स्वर्ग पर करे खखार।
यह तन दुरलभ देव को, सब कोइ कहत पुकार॥ ३॥

सब लोग यही कहते हैं कि देवताओं के देही नहीं होती है यानी वे तन धारण नहीं करते हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं वे अज्ञानी हैं और वे स्वर्ग की प्राप्ति की चाह रखते हैं किन्तु वे नहीं जानते हैं कि देवताओं के भी जब पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तो उन्हें स्वर्ग से उतर कर नर्क में जाना पड़ता है। और देह धारण करके चारों खान में भटकना पड़ता है किन्तु लोग उन्हें यह कह कर प्रसन्न करते हैं कि वे अपने पुण्यों के प्रताप से सब जगह विचरण करते हैं। १-२।

तुलसी साहब कहते हैं कि जो तन मन का विचार नहीं करके तत्त यानी सार बात देखता है और स्वर्ग पर थूकता है यानी स्वर्ग की चाह नहीं रखता है, वही देवपुरुष है। ३।

घट रामायण भाग १

भेद पिंड और ब्रह्मांड का

॥ सोरठा ॥

स्त्रुति बुँद सिंध मिलाप, आप अधर चढ़ि चाखिया।
भाखा भोर भियान, भेद भान गुरु स्त्रुति लखा॥

॥ शब्द १३० ॥

॥ छन्द स्त्रुति सिंध ॥

सत सुरति समझि सिहार साधौ, निरखि नित नैनन रहौ॥
धुनि धधक धीर गँभीर मुरली, मरम मन मारग गहौ॥ १॥
सम सील लील अपील पेलै, खेल खुलि खुलि लखि परै॥
नित नेम प्रेम पियार पिउ कर, सुरति सजि पल पल भरै॥
धरि गगन डोरि अपोर परखै, पकरि पट पिउ पिउ करै॥ २॥
सर साधि सुन्न सुधारि जानौ, ध्यान धरि जब थिर युवा॥
जहँ रुप रेख न भेष काया, मन न माया तन जुवा॥ ३॥
अलि अत मूल अतूल कँवला, फूल फिरि फिरि धरि धसै॥
तुलसि तार निहार सुरति, सैल सत मत मन बसै॥ ४॥

तुलसी साहब ने इस छंद में सुरत व शब्द के मिलाप का वर्णन किया है। सुरत जो कि वास्तव में स्वयं और स्वतंत्र सुख और आनन्द रुप है यानी जिसको रस और ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी जरिये। औजार और पदार्थ की जरुरत नहीं है। जब सुरत तन, मन और इन्द्रियों की कैदों जो कि स्थूल सूक्ष्म और कारण को तोड़कर, अपने असली स्थान में पहुँची अर्थात् उसका मिलाप अपने मालिक या सिंध से हुआ तो उसे अतंर का रस प्राप्त हुआ। यह भेद की बात है।

हे साधो! तुम सुरतवंत बनो और अंतर अभ्यास के द्वारा हमेशा मालिक

के ध्यान में मगन रहो और तीसरे तिल के पार पहुँच कर ऊपर के देशों का आनन्द और बिलास जो कि शब्दों के झनकार के रुप में है, देखते रहो। भँवरगुफा जो कि ब्रह्माण्ड का सबसे ऊँचा स्थान है वहाँ मुरली की सुरीली आवाज सुनोगे। १।

तुम अपने को सील क्षमा संतोष धीरज इत्यादि गुणों से सुसज्जित कर लो ताकि तुम्हारी पैठ ऊँचे के देशों में हो सके। प्रतिदिन नेम से अपने मालिक को प्यार करो अर्थात् उनका सुमिरन ध्यान करते रहो उसी तरह से जिस तरह से कि पपीहा स्वाँती बूँद के लिए पिऊ पिऊ रटता रहता है, तब ही तुम गगन के पार पहुँच कर अपार 'मालिक' को अर्थात् बिना जोड़ या गाँठ का यानी जो कि चैतन्य ही चैतन्य है, जिसमें जड़ पदार्थ तन मन व इन्द्रियों की गाँठ नहीं है उसका दर्शन करोगी। २।

मालिक का ध्यान करने पर जब तन मन स्थिर हुआ तो सुरत का अपना रुप प्रकट होता है और वह शब्द की धार को पकड़ कर सुन्न यानी संतों के दसवें द्वार पर पहुँचती है जहाँ कि रुप रंग रेखा नहीं है केवल आनन्द ही आनन्द है। ३।

जिस तरह कमल के फूल के चारों ओर भृंगी घूमती रहती है और जब वह उसके अन्दर घुस जाती है तो वह भँवरा बन जाती है और उसका रस लेती रहती है। उसी तरह सुरत नाम के सुमिरन और शब्द के श्रवण के द्वारा सफाई हासिल करके मालिक के देशों की सैर करती है। ४।

॥ छन्द ॥

गाया घट लेखा अगम अलेखा, जिन जिन देखा सार सही।
महुँ पुनि भाखी देखा आँखी, सूरति धसि दस द्वार गई॥

मैंने यह घट का भेद गाया। पिछले संतों ने जो भी अपने अतंर में देखा था उसका उन्होंने अपनी वाणी में वर्णन किया। मेरी भी सुरत अभ्यास करके सुन्न यानी दसवें द्वार में पहुँची और मैंने भी अपनी अंतर की आँखों से घट का भेद देखा जो कि सही है इसी कारण मैं भी उसे कह रहा हूँ। १।

॥ चौपाई ॥

सब ये घट की सैल बखाना, पिंड माहिं ब्रह्माण्ड दिखाना ॥
आगे घट का भेद बताई, अब जो सुनो कहों समझाई ॥
तिल परमाने लगे कपाटा, मकर तार जहँ जिव की बाटा ॥
इतना भेद जानि जिन कोई, तुलसीदास साध है सोई ॥
आगे अदभुद ज्ञान अपारा, पिरथम घट का कहों बिचारा ॥

मैंने तो अपने तन के भीतर ही घट की सैर कर ली अर्थात् पिंड में ही ब्रह्माण्ड देख लिया। ब्रह्माण्ड के आगे भी घट का और भेद है जो अद्‌भुत है।

तीसरे तिल शिवनेत्र / ब्रह्मरन्ध्र पर बज्र कपाट लगे हैं। जब ये बज्र कपाट खुलें तब सुरत शब्द के आसरे ऊपर चढ़ सकती है यह उसी तरह से है कि जिस तरह मकड़ी अपने ही द्वारा तार और जाल बनाती है और फिर उसी के आसरे ऊपर चढ़ती है। जिस जीव ने तीसरे तिल का बज्र कपाट खोल लिया, तब वह ऊपर के देशों में जाने के काबिल हो जाता है और साध कहलाता है।

॥ सोरठा ॥

रामायन घट सार, सुरति शब्द से लखि परै।
गगन कँज कर बास, ऊपर चढ़ि जिन देखिया ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इत्यादि जो भी पात्र रामायण में वर्णित हैं, वास्तव में अन्तर में है अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम राम जैसे चरित्रवान बनो अर्थात् रहनी गहनी दुरुस्त रखो, लक्ष्मण जैसे आज्ञाकारी बनो अर्थात् जो भी जतन अभ्यास के लिए बताऐ हैं करो इसी तरह भरत, शत्रुघ्न जैसे चरित्रवान बनो। जनक जैसे विदेही बनो अर्थात् जगत में रहते व बर्तते हुए भी जगत में लिप्त न रहो।

नोट—विस्तृत वर्णन के लिए "रामायण का गूढ़ रहस्य" लेखक "श्री संतदास माहेश्वरी स्वामी बाग आगरा" देखिए।

"सुरत शब्द योग" का अभ्यास विधिपूर्वक करने से पहले सिमटाव होगा और तीसरे तिल के परे सुरत की चढ़ाई होगी। जब सुरत सहसदल कंवल

पार करके त्रिकुटी स्थान या गगन पर पहुँच जावेगी तो उसे नीचे की रचना का सर्वज्ञान हो जावेगा क्योंकि वह ऊँचे स्थान पर पहुँच गई है।

॥ सोरठा ॥

साहिब एक अनाम, अगम धाम संतन लखा।
भखा भेद जिन जान, तिन तिन बरनि सुनाइया॥

तुलसी साहब कहते हैं कि कुल्ल मालिक अनामी पुरुष राधास्वामी है, जिनका कि अगम धाम है। वही सच्चा साहब है। वह अगम पुरुष है, जिन-जिन संतों ने उस परम संत का दर्शन किया उन्होंने अपनी भाषा वाणी में उनका वर्णन किया।

॥ चौपाई ॥

अब अनाम इक साहिब न्यारा, सुन्न औ महासुन्न के पारा॥
वो साहिब संतन कर प्यारा, सोइ घर संत करैं दरबारा॥
वा घर का कोई मरम न जाने, नानक दास कबीर बखाने॥
दादू और दरिया रैदासा, नाभा मीरा अगम बिलासा॥
और अनेक संत कहि गाये, जे जे अगम पंथ पद पाये॥
तुलसी मैं चरनन चित चेरा, उन रज चरनन कीन्ह निबेरा॥

॥ सोरठा ॥

संत चरन निज दास, तुलसी ताहि बिचारिया।
पायौ निज घर बास, आदि अनामी लखि कहयौ॥

"अनामी पुरुष राधास्वामी" सबसे न्यारा पुरुष है। उसका देश पिण्ड, ब्रह्माण्ड, सुन्न, महासुन्न, भंवरगुफा, सत्तलोक, सत्तनाम अनामी अलखलोक अगमलोक के परे है। वे परम संत हैं और सब संतों के प्यारे हैं उनकी स्तुति सब संत करते हैं।

उस परम धाम का भेद ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी देवता इत्यादि किसी को नहीं मालूम है। केवल पिछले ७००, ८०० वर्ष में कलियुग में

जो संत हुए, जैसे कि कबीर साहब, गुरुनानक, दादू साहब, दरिया साहब, रैदास जी, नाभा जी, मीराबाई सहजोबाई इत्यादि उन्हें ही उनका भेद मालूम था। सतयुग त्रेता द्वापर युग में उनका भेद किसी को नहीं मालूम था। अब जब कलयुग आया जो कि जीवों के उद्धार का युग है, तब संतों को मालूम हुआ और उन्होंने जीवों को बताया और जो अधिकारी जीव थे उन्हें अपने साथ ले गये। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं भी उन परम संत के चरनों का दास हूँ। मैं उनके चरणों का नौकर हूँ, उनके चरन कवँलों का सहारा मैंने लिया, जिसके कारण उन्होंने मुझ पर दया मेहर की और अपने चरनों में मुझे बासा दिया और अपने धाम का भेद मुझे दिया और दिखलाया, वह धाम आदि एवं अनामी है। उसके लीला बिलास का वर्णन असम्भव है, थोड़े से शब्दों में मैंने वर्णन करने की कोशिश की है। वह देश तो सुरत के द्वारा ही देखा जा सकता है। यह देश तो मन के देश का है। इस मन के देश की बुद्धि से उस देश के बारे में नहीं जाना जा सकता है। केवल सुरत से ही देखा व सुना जा सकता है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी अगम अनाम, अगत भेद का से कहौं।
कोउ न मानै बात, संत अंत कोउ ना लखै॥ १॥
निगम न पावै वेद, नेति नेति गोहरावही।
ब्रह्म न जानै भेद, सत्त नाम निज भिन्न है॥ २॥
एक अनीह अनाम, संत सुरति जानै यही।
वे पहुँचे वोहि धाम, सो अनाम गति जिन कही॥ ३॥
तुलसी अगम विचार, सार पार गति पद लखा।
वह अलेख का ठाम, तुलसी तरक बिचारिया॥ ४॥
सुरति अटा के पार, आठ अटारी अधर में।
तुलसिदास लियौ सार, सुरति सिंध से भिनि भई॥ ५॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मैं "कुल्ल मालिक" जो कि अगम, अलख व अनाम है एवं अपने में आप मगन है, अकेला है। ज्ञानमय और बाहोश है,

सबको घेरे हुए है, यानी कुल रचना उसके घेरे में है, सब को अन्तर में अपने जानिब खींचे हुए है। "आपहि आप न दूसर कोई" के बारे में किसको बताऊँ, कोई मानने वाला नहीं है। "मैं कहूँ कौन से भाई कोई मेली नजर न आई। १।"

शास्त्रों व वेदों ने भी उसका भेद नहीं पाया, "नेति नेति" इसके आगे भी कुछ हैं कहकर रह गये, ब्रह्म, पारब्रह्म ने भी नहीं जाना। सत्तनाम एवं सत्तपुरुष ब्रह्म पारब्रह्म से न्यारा है। २।

अनामी पुरुष के बारे में केवल संत सुरतें ही जानती हैं, क्योंकि वे अनामी पुरुष के धाम पहुँची हैं, इसलिए वे उनकी गति जानती है। ३।

मैंने भी अगम पुरुष के पद को उनकी दया से देखा है, उनके धाम के बारे में वर्णन करना कठिन है ऐसा मेरा विचार है। ४।

मेरी सुरत अनामी पुरुष के आठवें धाम में जो कि सात गगन के ऊपर हैं पहुँची। मुझे निज सार प्राप्त हो गया। ५।

॥ चौपाई॥

आठ अटारी सुरति समानी, मंगल ठुमरी करी बखानी॥
जस जस सुरति चढ़ी अटारी, तस तस विधि में भाखी सारी॥

मेरी सुरत आँठवे स्थान में पहुँची। जिस-जिस तरह मेरी सुरत मालिक के देश में पहुँची मैंने उसे अपनी भाषा बानी में वर्णन किया और मैं बहुत ही आनन्दित हूँ। मैं उसके आनन्द में सराबोर हो गया हूँ और उस प्रेम के कारण मैं उनके बधाई के गीत गा रहा हूँ।

॥ चौपाई॥

सेख तकी दिल बिरह समानी, आवै न बात नैन बहै पानी।
दम दम बिकल खुदाई पुकारी, तन मन सुध बुध सकल बिसारी॥

जब शेख तकी के हृदय में खुदा के बनाने वाले खुदा अर्थात् कुल्ल मालिक से मिलने की विरह हृदय में समाई तब उन्हें तन मन की याद नहीं रही, और उनके दिल से पल पल में मालिक से मिलने की पुकार होने लगी और उनके नैनों से अश्रुओं की अविरल धारा बहने लगी।

॥ शेर ॥

बेहोशिये आदम से, वह ख्याल जुदा है।
बाहर जो है मुहम्मद, अंतर में खुदा है॥

॥ शब्द १३१ ॥

ऐ बेहोश प्यारे मैं यार बिसारा।
खिलकत का खेल सबै झूठ पसारा॥ १॥
इक पल में फना होत देख जक्त असारा।
इन नैनों से देख तेरा कौन है यारा ॥ २॥
अपनी तू आदि देख कहँ से आया।
उस यार को बिसार के लौ कहँ को लाया॥ ३॥
हमने दिल बीच यार अन्दर पाया।
उस बिरहिन के तन में रोम रोम में छाया॥ ४॥
वो मस्ती बेहाल पिया पिया पुकारै।
तन मन में नहिं होश नहीं बदन निहारै॥ ५॥
ऐसी बेहोश सहै सूल कटारी।
जैसे तन बीच सेल तेगा मारी ॥ ६॥
ऐसी बिरहिन के बीच विरह सँवारी।
सोई बिरहिन तो लगै पिउ को प्यारी॥ ७॥
जा का यह हाल सोई अधर सिधारी।
तुलसी सो नारि भई जग से न्यारी ॥ ८॥

तुलसी साहब परम संत थे उनके दर्शन हेतु एवं अपने उद्धार हेतु लोग उनका सतसंग करने आते थे उसी सिलसिले शेख तकी भी उनके पास सतसंग हेतु आये थे। वे विरही जीव थे, उनकी आत्मा मालिक से मिलना चाहती थी उसी विरह का इस शेर में वर्णन है।

यहाँ पर आत्मा बेहोश है, वह बाहर ही बाहर देखती है। मालिक को

बाहर ढूँढ़ती है। बाहर जो है मुहम्मद है से तात्पर्य यह है कि वे वक्त के संत सतगुरु हैं उनका संग व सतसंग करने से व जो अमल बतावे उसके करने से खुद खुदा अंतर में मिलेगा।

हे प्यारे, तू इस दुनिया में बेहोश है तन, मन, इन्द्रियों के रस में भीग रहा है। तूने अपने मालिक को भुला दिया है। इस दुनिया का जितना पसारा है सब झूठा है। १।

एक क्षण में यह दुनिया खत्म हो जाती है, तू अपनी आँखों से देख ले कि तेरा सच्चा यार यानी दोस्त कौन है। २।

तू सोच विचार कर देख कि तू कहाँ से आया है, तेरा देश कौन है, तेरा मालिक कौन है, तुझे कहाँ जाना है। उस सच्चे मालिक को भूलकर तूने अपने को इस दुनिया में गर्त कर लिया है। ३।

मैंने तो अपने हृदय के अन्दर अपने मालिक को पा लिया है। मालिक तो भक्त के हृदय में बसता है। जो भक्त मालिक से मिलना चाहता है उसके रोम-रोम में वह बसता है। ४।

विरही भक्त का तो हाल बेहाल रहता है वह तो मालिक के प्रेम में मगन रहता है, उसे मस्ती ही मस्ती छाई रहती है, वह हर दम पिया पिया पुकारता रहता है। ५।

शूरवीर योद्धा को लड़ाई में जब तलवार लग जाती है या कटारी से उसके तन को काट डाला जाता है तो दर्द के मारे वह बेचैन रहता है उसी प्रकार विरही भक्त मालिक से मिलने के दर्द से बैचेन रहता है। ६।

मालिक को उपर्युक्त भक्त प्यारा लगता है, और वह उसे अपना लेता है। ७।

जिस विरही भक्त का ऐसा हाल है वह मालिक के निज धाम में सिधारता है और इस संसार से न्यारा हो जाता है। ८।

॥ मंगल १३२ ॥

आठ अटारी महल, सुरति चढ़ि चाखिया।

ठुमरी माहीं भेद, भाव सब भाखिया॥ १॥

संत पंथ का अंत, साध कोई बूझिहै।
प्यारी पुरुष मिलाप, साफ स्त्रुति सूझिहै॥ २॥
जस जस मारग रीति, राह समझाइया।
प्यारी अटारी माहिं, जाइ सोई गाइया॥ ३॥
मन मथ कीन्हा चूर, सूर स्त्रुति ले चढ़ी।
गुरु पद पदम मँझार, पुरुष पै जा खड़ी॥ ४॥
विधि विधि ठुमरी माहिं, गाइ तुलसी कही।
जो कोई चीन्है भेद, संत सोई सही॥ ५॥

॥ सोरठा॥

ठीका ठुमरी माहीं, आठ अटारी अधर की।
सूरति पदम बिलास, विधि बयालिस पद मिली॥

आठ अटारी महल अर्थात् आठवें मुकाम पर जब सुरत पहुँची तो उसने वहाँ का आनन्द लिया। वहाँ का निर्मल प्रकाश एवं वहाँ पर जो बिना वाद्य यंत्रों व बिना राग रागनियों के जो मधुर शब्द हो रहा है, उनको देख कर व सुन कर आनन्द लिया। इस छोटे से गीत में भेद है जो कि मैंने बताया है। भेद यह है। आठवां महल यह है। सहसदलकंवल, त्रिकुटी, सुन्न, भंवरगुफा, सत्तलोक, अलख लोक, अगमलोक, राधास्वामी धाम जो आदि, अनादि, अनन्त, अपार, और अनाम हैं। १।

यही संत मत का अन्तिम पद है। इस पद के बारे में बिरले साध गति के सतसंगी जानते हैं, जिनकी निर्मल सुरत है अर्थात् वे संसार से बन्धन रहित हैं, उन्हें केवल मालिक से मिलने की चाह है वे संसार में केवल जरुरी कार्य जो कि देह से साथ लगे हैं करते हैं। उन्हें माया के सामानों की चाह नहीं है। २।

मैंने मार्ग का भेद इसमें बताया है कि जो सुरत उस स्थान तक पहुँची है, वही वहाँ के भेद के बारे में बता सकती है। ३।

जिस जीव ने अपने मन को मथ-मथ कर चूर किया अर्थात् मन को मीत बनाकर उसे सुरत के साथ चलने योग्य बनाया, वही जीव गुरु पद अर्थात्

त्रिकुटी एवं पदम पद अर्थात् सत्तलोक को पार करके परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी कुल्ल मालिक के पद में पहुँचा और उनके सन्मुख खड़े होकर उनके दर्शनों का आनन्द लिया। ४।

मैंने (तुलसी साहब) विविध प्रकार से गीतों के द्वारा कुल्ल मालिक के भेद को बताया। इस भेद को वही जीव जानेंगे जिन्होंने कि संतों का संग किया है और अभ्यास करके उस पद में समाये। ५।

॥ सोरठा ॥

इस गीत में आठ अटारी (महल) का वर्णन है। तन मन से न्यारी होकर सुरत जब शब्द में समावे तब मालिक के परम आनन्द में वह लीन हो। "विधि बयालीस पद मिली" अर्थात् बयालीसवां पद (शब्द) में सुरत समाई। मन की चालीस सिफात है। एक सिफात सुरत की व एक सिफात शब्द की।

चालीस सेर मन फेर, इकतालीस स्त्रुत भई।
विधि बयालीस, शब्द अटल ऐसी कही॥

॥ रेखता नसीहत १३३ ॥

तुलसी तबक जाना नहीं, बेहोश गाफिल हो रहा।
जिसने तुझे पैदा किया, उस यार को चीन्हा नहीं॥ १॥
नाहक अदम दम खोवता, मुरसिद पकड़ नहिं डूबही।
तुलसी खलक कुल ख्याल है, आसिक मुहब्बत कर सही॥ २॥
खोजो मुहम्मद दिल-रहम, जिस इस्म से आलम हुआ।
तुलसी नबी निरखै नहीं, जहँ लग मुसल्लम है नहीं॥ ३॥
रब रुह मरहम ना हुआ, रब देख अंदर है सही।
तुलसी तकी बूझा नहीं, जग में जिया तो क्या हुआ॥ ४॥
गन्दा नजिस क्यों हो रहा, इस जक्त में रहना नहीं।
अरे ऐ तकी तल्लास कर, तुलसी फना होना सही॥ ५॥
चारो चसम को खोल कर, देखो जुल्म जालिम वही।

जबरील को तैं ना लखा, तुलसी खबर खोजा नहीं॥ ६॥
रोजा निमाज हर दम किया, उस यार को दिल ना दिया।
खोजा नहीं अपना पिया, तुलसी तकी दोजख लिया॥ ७॥
नासूत मलकूत जबरुत हैं, लाहूत लौ तैं ना लिया।
हाहूत हिये खोजा नहीं, ला में रबी जीता पिया॥ ८॥
तुलसी तकी तालिम दिया, हर दम गुनह बंदा हुआ।
मुरसिद मुरीदी दस्त है, पावै तकी अपना किया॥ ९॥
तुलसी रहम राजी हुआ, तोला तकी अपना किया।
दिया दस्त दरदी जान कै, तुलसी तकी मुरसिद हुआ॥ १०॥

॥ दोहा॥

तकी दीन तुलसी लखा, दीन्हा पंथ लखाइ।
सुरति सैल असमान कर, चढ़े गगन को धाइ॥

तुलसी साहब के पास तकी मियां मालिक की खोज करते-करते पहुँचे। जो सवांद उनमें हुआ उसी का वर्णन इस उपदेश में है। तुलसी साहब तकी मियां से कह रहे हैं कि तूने अपने मालिक को नहीं पहिचाना जिसने कि तुझे पैदा किया है, और न ही तूने उसके धाम के बारे में जाना, और व्यर्थ में बेपरवाह होकर दुनिया में बर्त रहा है। १।

यह दुनिया ख्वाबों ख्याल है, नाशमान है अतः तू सत्य वस्तु जो कि मालिक है उससे प्यार कर, उससे प्यार करने के लिए तुझे सच्चे गुरु से प्यार करना पड़ेगा तब ही तू मालिक को पा सकेगा। अतः तू अपनी स्वांस को व्यर्थ मत जाने दे अर्थात् अपना जीवन सफल कर ले। २।

मुहम्मद साहब इस्लाम के धर्म के आचार्य थे। वे दयालु थे एवं पैगम्बर ईश्वर के (दूत) थे। उन्होंने भी नाम या शब्द के बारे में कुछ नहीं बताया। हे तकी, तेरे चोले में दोनों आँखों के मध्य में तीसरा तिल है वही तेरी बैठक है इसके आगे चैतन्य की धार है जिसके जरिये से तू यहाँ उतर कर आया है। इसी

चैतन्य धार को संतों ने नाम कहा है यही धुन या शब्द है जिसके साथ चल कर तू मालिक के देश में पहुँच सकता है। वही कुल्ल मालिक, अखण्ड एवं परिपूर्ण हैं। ३।

हे तकी, तूने नाम या शब्द के बारे में नहीं जाना जो कि तेरे घट में ही गुंजायमान हो रहा है, तो तेरा जग में जीना बेकार है। ४।

तुझे इस जगत में रहना नहीं है। व्यर्थ में तू अपना जीवन क्यों बर्बाद कर रहा है, अतः तू उस नाम या शब्द की तलाश कर। ५।

तू बाहर की दोनों आँखों के द्वारा इस दुनिया में बर्त रहा है। जबरील अर्थात् काल तुझ पर जुल्म कर रहा है, तुझे अपने देश काल के बाहर नहीं जाने दे रहा है। अतः तू चेत और अतंर की आँखें खोल ताकि तू दयाल देश में जा सके। ६।

तू रोज़ा रखता है और रोज नमाज पढ़ता है, परन्तु तूने अपना हृदय मालिक को नहीं दिया और अपने प्रीतम मालिक को नहीं खोजा जिसके कारण तू नरक में रहा अर्थात् बारम्बार जन्म लेता और मरता रहा। ७।

गुदा, इन्द्री, नाभि में ही तू भरम रहा है, तूने हृदय कंवल, कंठ चक्र और तीसरे तिल में भी मन नहीं लगाया, न ही तूने सहसदकवंल, त्रिकुटी व सुन्न के स्थानों को अपने अंतर में खोजा, न ही तूने सच्चे मालिक को अपना प्यारा बनाया। ८।

शिष्य जब अपना हाथ मालिक को पकड़ायेगा अर्थात् जब यह उनकी शरण ग्रहण करेगा, तब मालिक उसे अपना लेगा। अतः तुलसी साहब ने तकी मियां को शिक्षा दी कि मालिक (सतगुरु) की सरन ग्रहण कर तो तेरे सब गुनाह माफ हो जावेंगे। ९।

तुलसी साहब ने तकी मियां की भक्ति को परखा और विरही प्रेमी देखकर अपना हाथ पकड़ाया और उसे अपना शिष्य बना लिया। १०।

तुलसी साहब ने तकी मियां को "सुरत शब्द योग" का उपदेश दिया और उसकी सुरत को गगन में चढ़ाया और ऊपर के देशों की सैर कराई।

घट रामायण भाग २

॥ चौपाइयाँ १३४ ॥

तुलसी तुल जाई, गुरु पद कंज लखाई ॥ टेक॥
मैं तो गरीब कछू गुन नाहीं, मो को कहत गुसाँई।
जो कछु कीन्ह कीन्ह करुनामय, मैं उनकी सरनाई ॥ १॥

तुलसीदास जी की जाँच हो जायेगी, वे गुरु पद के कँवल को लखाते हैं।

मैं दीन अधीन हूँ। मुझमें कोई गुण नहीं है। फिर भी लोग मुझे गुसाँई कहते हैं। जो कुछ भी किया है वह दयालु मालिक ने ही किया है। मैं तो उनकी सरन में हूँ। १।

मैं अति हीन दीन दारुन गति, घट रामायन बनाई।
रावन राम की जुद्धि लड़ाई, सो नहिं कीन्ह बनाई॥ २॥
ये तत सार तती निज जानत, जो ये लखै लखाई।
काल काया परिवार मयाई, ये गुन ग्रन्थन गाई॥ ३॥

मैंने बहुत ही हीन व अत्यन्त दीन होकर घट रामायण बनाई है। २।

लेकिन उसमें राम और रावण के युद्ध का वर्णन नहीं किया है। इसमें सार तत्व का भेद है जिसको कोई तत्त्व ज्ञाता ही समझ सकता है, और वही जानता है। पुस्तकों में राम रावण और उनके परिवार का बाहरी वर्णन किया गया है। ३।

ता में सार पार पद न्यारा, सो कोई संत जनाई।
पंडित भेष जगत अरु ज्ञानी, भेद कोऊ नहिं पाई॥ ४॥

उसमें इनसे न्यारा सार पद का जो वर्णन है उसको कोई संत ही जानते हैं। उसे पंडित भेख जगत व ज्ञानी कोई नहीं समझ सकता और क़िसी ने नहीं पाया। ४।

अब बरतत कहौं याही कौ, भरत शत्रुगन भाई।
दसरत सीता और कौसिल्या, सिया लछमन कहाई॥ ५॥

अब भरत शत्रुघन दशरथ, सीता, कौशल्या, राम, लक्ष्मण का असली भेद कहता हूँ। ५।

काग भसुंड गरुड़ सबै सब, मंथा अरु केकाई।
रघुपति रंग संग परिवारा, येहि बिधि जगहिं सुनाई॥ ६॥
और सुनो रावन रंग राई, सब परिवार बताई।
कुंभकरन भिभीषन भाई, इंद्रजीत सुत राई॥ ७॥
रानी राइ मँदोदरि सोई, सब परिवार सुनाई।
ये घट माहिं घटा घट ही में, रामायन बनाई॥ ८॥

काग भसुन्ड गरुड़ में था। केकई व राम का परिवार व रावण का परिवार यानी कुम्भकरण विभीषन इन्द्रजीत मंदोदरि रानी इन सबको घट में घटा कर रामायण में वर्णन किया है। ६-८।

रावन ब्रह्म बसै त्रिकुटी में, लंक त्रिकूट बनाई।
कुम्भ तनै करता मनहीं को, कुम्भकरन कहाई॥ ९॥

त्रिकुटी के धनी ब्रह्म को रावण कहा और लंका को त्रिकुटी बतलाया है। कुम्भ यानी घड़ा या मटका जो कि यह शरीर है, इसका कर्त्ता या बनाने वाला कुम्भकरण यानी मन है। ९।

भय भौ खानि भभीषन भाई, सौ भौ माहिं भ्रमाई।
इंद्रजीत जीतै मनहीं को, सो इंद्रजीत कहाई॥ १०॥

भय की खान विभीषन है जो कि भौसागर में भरम रहा है। जो मन को जीत ले वही इन्द्रजीत है। १०।

रावन ब्रह्म बसै मन दौरा, ता को मंदोदरि बनाई।
मन की दौर को दूर बहावै, त्रिकुटी ब्रह्म कहाई॥ ११॥

मन की दौड़ रावण रुपी ब्रह्म तक है। मन की दौड़ को मंदोदरि कहा है जिसने मन की दौड़ को बंद किया वह त्रिकुटी में पहुँच कर ब्रह्म रुप हो गया। ११।

दस इंद्री रत दसरत कहिये, राम रमा मन जाई।
सत की सीता असत सिया को, कुमति कौसिल्या बसाई॥ १२॥

जो दस इन्द्रियों के भोग बिलास में रत है, वह दशरथ कहलाता है। राम मन को कहा है जो सत्य की सीता में रम रहा है। कौशिल्या को कुमति कहा है। सीता सत्य की प्रतीक है। १२।

मन थिर सुरति करै थिर कोई, सो मन मंथा कहाई।
वहँ की बात कहौं कौन सुनाई, कर्मन थिर केकाई॥ १३॥

मन और सुरत को थिर करने वाली मन्था है। ये सब भेद की बातें कोई क्या जाने? (केकई = कोई क्या जाने)। १३।

ले छे रस मनहीं को भाई, लछमन वीर बड़ाई।
गो में रुढ़ गरुढ़ गिनाई, भय ले भसुण्ड भुलाई॥ १४॥

भोगों के रस जो छः प्रकार के हैं, उनको लेने वाला व उनमें लिप्त रहने वाला लक्ष्मण है। जो गो यानी इन्द्रियों में रुढ़ (लीन) है वह गरुड़ है। जो भय में भूला हुआ है वह भसुन्ड है। १४।

भय रत भरम भरत है सोई, चाह त्रिगुन्न गिनाई।
ता को नाम चतुरगुन कहिये, ये सब भेद बताई॥ १५॥

जो भय में रत होकर भरम रहा है वह भरत है। तीन गुनों की चाह में जो पड़ा है वह चतुरगुन है। १५।

ये नौं द्वार काया के माहीं, सो हनुमान हँसाई।
ये तो चिन्न भिन्न बिन देखे, जोग करै करे सो जनाई॥ १६॥

काया में नौ द्वार हैं उनमें बरतने वाला हनुमान है। यह सब चिन्ह बिना अंतर दृष्टि के खुले मालूम नहीं पड़ सकते। जो सच्चा जोगी है वह जानता है और बतला सकता है। १६।

काया सोध कसै इन्द्रिन को, त्रिकुटी ध्यान लगाई।
स्वाँसा धाइ बंक खुल खोलै, सहसदल कंवल पाई॥ १७॥

काया को शुद्ध करके, इन्द्रियों को वश में करके, स्वांसा को उलट कर, बंक का पट खोल कर, सहसदल कँवल में पहुँचे और त्रिकुटी में ध्यान लगावे। १७।

जो कोई जोग जुगति करि लाई, जेहि घट ब्रह्म दिखाई।
जोगी का जोंग इष्ट जगही को, ये गति यो विधि गाई॥ १८॥

जो कोई विधि पूर्वक सुरत शब्द योग की साधना करे, उसे घट में ब्रह्म के दर्शन होंगे। लेकिन संसार में जो जोगी भटकते फिरते हैं उनका यह हाल है कि ऊपर से जोग करते दिखलाई देते हैं परन्तु अतंर में दुनिया का इष्ट रखते हैं। जगत के जीवों का यह हाल है। १८।

दूजा जोग ज्ञान गति गाई, आतम तत्त लखाई।
मुद्रा पाँच अवस्था चारी, ज्ञान तीनि गति गाई॥ १९॥

सच्चे जोग की साधना से ज्ञान प्राप्त होता है। साधक आत्म तत्व को प्राप्त होता है। पाँच मुद्रा की साधना से चार अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं और तीन प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है। १९।

चाचरि भूचरि और अगोचरि, खेचरि खेह लगाई।
उनमुनि उभै अकास के ठाईं, ज्ञान बिधी बतलाई॥ २०॥

चाचरी भूचरी अगोचरी खेचरी और उनमुनी इन पाँच मुद्राओं के साधन से आकाश में ठिकाना मिलता व ज्ञान प्राप्त होता है। २०।

रेचक पूरक कुम्भक कहिये, येहि बिधि ज्ञान गिनाईं।
और अवस्था अरथ बताई, ज्ञाना किनहूँ न पाई॥ २१॥

रेचक पूरक कुम्भक इन तीन साधनों का तो ज्ञानियों ने वर्णन किया है। इसके आगे की अवस्था प्राप्त करने के साधनों का किसी ने वर्णन नहीं किया। २१।

जाग्रत सुपन सुषोपति कहिये, तुरियातीत कहाई।
तुरियातीत बसै वोहि पारा, जो या करै तिन पाई॥ २२॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के आगे तुरियातीत है। जो सच्चा योग कमाता है वह उसे पाता है। २२।

चारों बानी का भेद बताई, सास्तर संध लखाई।
परा पसंता मधिमा सोई, बैखरी बेर बताई॥ २३॥

शास्त्रों में चारों वाणियों-परा, पश्यंती, मध्यमा और बैखरी का वर्णन है। २३।

ये सब जोग ज्ञान गति गाई, ज्ञानी यही बताई।
इनके परे भेद है न्यारा, सो कोई संत जनाई॥ २४॥

जोगी ज्ञानियों ने भी इसका वर्णन किया है। इसके परे का भेद न्यारा है जिसे केवल संतों ने बतलाया है। २४।

और सुनो जो अगाध अघाई, संतन की गति गाई।
जा को भेद बेद नहिं जानै, जोगी किनहुँ न पाई॥ २५॥

मालिक का भेद जो कि अगाध और अथाह है उसका वर्णन संतों ने किया है। उसे न वेद जानते हैं और न जोगियों को मालूम हुआ। २५।

परमहंस बैरागी गुसाईं, जग्त की कौन चलाई।
ये कहुँ देखि कहूँ न कहाई, काहू प्रतीति न आई॥ २६॥

यह भेद परम हंस बैरागी व गुसाईं ने भी नहीं पाया। जगत के जीवों को क्या मालूम होगा? यह संतों का भेद न किसी ने देखा, न किसी को कहते सुना। अगर उनको बतलाया जावे तो उनको यकीन नहीं आता। २६।

तुलसी तोड़ फोड़ असमाना, सूरति सार मिलाई।
सरकी चाँप चली धौ धाई, धनुवा धनुष चढ़ाई॥ २७॥

तुलसी साहब आसमान को फोड़ कर यानी उसे पार करके सार यानी मालिक से मिले। जैसे धनुष से तीर छूटता है इसी तरह से सुरत चली। २७।

तीनि लोक तिल खेई पारा, चौथे जाइ समाई।
वो साहिब सतनाम अपारा, तिन मोहिं अंग लगाई॥ २८॥

तीन लोक को पार करके चौथे पद में समाई। वे साहब सत्तपुरुष अपार हैं। उन्होंने मुझे अंग लगाया। २८।

या के पार परे गति न्यारी, सो कोई संत जनाई।
जा को नाम अनाम अमाई, केहि बिधि कहौं बुझाई॥ २९॥

इसके पार का हाल न्यारा है जिसे किसी संत ने ही जाना। जिसको अनाम व अमाया कहा है, उसका मैं कैसे वर्णन करुँ। २९।

ता के रंग रुप नहिं रेखा, नाम अनाम कहाई।
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जानै, ता घर जाइ समाई॥ ३०॥

इसमें रंग रेखा नहीं है और शब्द भी वहाँ गुप्त है। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं तुच्छ हूँ। मैं कुछ नहीं जानता। उस निज घर में जो कि अगम है चढ़ कर विश्राम किया। ३०।

जब संतन के चरन सीस धरि, आदि अजर घर पाई।
तीनि लोक उपजै और बिनसै, चौथे के पार बसाई॥ ३१॥

जब संतों के चरन सीस पर रखकर उनकी दया लेकर मुझे आदि घर प्राप्त हुआ जो कि अजर अमर है। तीन लोक तो उपजते और बिनसते हैं। चौथा लोक स्थिर है। उसके भी परे जो अनाम और अचल पद है, वहाँ जाकर बासा किया। ३१।

॥ सोरठा॥

येहि बिधि रघुपति रंग, रावन संग प्रसंग भयो।
सुरति चढ़ी चित चंग, ज्यों पतंग डोरी गह्यो॥ ३२॥

यह राम और रावण के संग का अंतरी भेद कहा। पतंग की तरह सुरत डोरी पकड़ कर चली। ३२।

१३५

तुलसी माना उबाच

तुलसी माना मनहिं विचारी, ये विधि होति आइ जुग चारी॥
संत जगत दोऊ के भाई, येहि विधि आदि अंत चलि आई॥
अब या का बरतंत सुनाऊँ, विधि दृष्टांत बहुरि दरसाऊँ॥

संत जगत तारन बतलावैं, जग पुनि उनको मारन धावै॥
परमारथ की राह बतावैं, सब जग उनकी निन्दा लावै॥
साधू जीव करैं उपकारा, जिव मति हीन उन्हीं को मारा॥
जस बालक फुड़िया दुख माँई, माता कहै नीक होई जाई॥
पकि फुड़िया बालक दुख पावै, माता फौड़न ता को चावै॥
बालक माता मारन धाई, वो जानै मो को दुख दाई॥
माता कहै ठीक होइ जावै, तब मोर हिरदा मांहि जुड़ावै॥
माता सुख उपकार बतावैं, बालक के मन में नहिं आवै॥
बालक बुधि जग रीति जाना, माता अस मत संत बखाना॥
ये दुख का उपकार बतावैं, वे पुनि उनको मारन धावै॥
ऐसी संत जगत की रीति, या में तुम का करी अनीति॥

तुलसी साहब ने फ़रमाया है कि हे माना! तुम मन में विचार करो, सन्तों और संसारियों दोनों के बीच चारों युगों से और आदि से अंत तक ऐसा ही होता चला आया है यानी संसारियों ने सदैव ही सन्तों की निन्दा व निरादर किया है और संतों ने उन्हें क्षमा किया है। मैं इस बात को तुम्हें दृष्टांत देकर समझाता हूँ। संत संसार के जीवों के उद्धार की जुक्ति बताते हैं, किन्तु जीव उन्हें मारने के लिए दौड़ते हैं। संत जीवों का उपकार करते हैं किन्तु मूर्ख जीवों ने संतों को मारा है। जैसे बालक के फोड़े की तकलीफ में माता बालक को सांत्वना देती है और कहती है कि ठीक हो जायेगा, किन्तु जब फोड़ा पक जाता है और बालक दुख पाता है तो माता फोड़े को चीरना चाहती है और बालक माता को मारने के लिए दौड़ता है और यह समझता है कि माता दुख देने वाली है। इतना होने पर भी माता बालक को यही कहती है कि फोड़ा ठीक हो जायेगा और तेरे मन को शांति व चैन मिलेगा। माता तो बालक के उपकार की बात करती है किन्तु बालक को यह बात अच्छी नहीं लगती है। इस संसार की रीति भी बालक की बुद्धि के समान है और संत माता के समान हैं जो जीवों को दुखों से छुड़ा कर उनकी भलाई करते हैं किन्तु जीव उन्हीं को मारने के लिए दौड़ते हैं। सन्तों की

और जगत की यही रीति है। इसमें तुमने कुछ अन्याय नहीं किया यानी तुलसी साहब ने माना को क्षमा कर दिया।

माना नाम का तुलसी साहब का एक परम शिष्य था, किन्तु संत मत में आने से पहले वह तुलसी साहब का निदंक था पर कुछ समय बाद जब वह तुलसी साहब का शिष्य हो गया और उनसे उपदेश लेकर, सुरत शब्द योग द्वारा उसने अंतर में कुछ रसाई हासिल की तो उसे तुलसी साहब की महानता का अनुभव हुआ और उनसे क्षमा याचना की और भारी पश्चाताप किया। तुलसी साहब ने उसे समझाया कि सन्तों के स. . सदैव ही ऐसा होता आया है और संसारियों ने उनकी निन्दा व निरादर किया व दुख पहुँचाया है। फिर भी ऐसे लोगों का अहित करना तो दूर, सन्तों ने उन्हें प्यार से समझाया और क्षमा किया है और उनके जीव का भी काज बनाया है।

प्रस्तुत अंश में माना द्वारा अपनी भूल के लिए तुलसी साहब से क्षमा याचना करना और तुलसी साहब द्वारा उसे संत उपदेश करने का वर्णन है :-

माना उवाच

माना कहै जोर दोउ हाथा, चरनन मांहि डारि के माथा।
स्वामी हम कीन्हीं अजगूती, मारन काज कीन्ह मजबूती॥
तुम दयाल कछु ख्याल न भाखा, मन से द्रोह कछू नहिं राखा॥
हम औगुन कहि कर कर भाखा, तुम स्वामी चित कछु न राखा॥
लड़का कपूत बाप देइ गारी, पितु औगुन तेहि नाहिं बिचारी॥
तेहि समझाइ मिठाई दीन्हा, पुनि पुनि ताहि बोध कर लीन्हा॥
यहि विधि भाँति भई गति मोरी, स्वामी से कीन्हीं बरजोरी॥

माना ने दोनों हाथ जोड़कर और सिर तुलसी साहब के चरनों में रख कर उनसे बिनती करी और कहा कि हे स्वामी, मैंने आपके साथ अन्याय व अनुचित व्यवहार किया है और आपको मारने की भी पक्की योजना बनाई, किन्तु हे दयाल, आपने इसका कुछ ख्याल नहीं किया और अपने मन में शत्रुता नहीं रखी। मैंने आपकी भारी निन्दा की, किन्तु हे स्वामी, आपने चित्त में मेरे

प्रतिकूल कुछ नहीं रखा। लड़का कपूत होकर बाप को गाली देता है, किन्तु पिता उसके अवगुणों पर विचार नहीं करता है, बल्कि उसे बार बार समझा कर प्यार से मिठाई खाने के लिये देता है। हे स्वामी, मेरी भी दशा ऐसी ही हुई कि मैंने आपके साथ जबरदस्त अन्याय किया फिर भी आपने मुझे क्षमा करके अपनी सरन में ले लिया।

''सतसंग लोहे की हाट की तरह है। उसमें सब प्रकार के जीव आते हैं। हर एक श्रेणी, क्लास और दर्जे का कम से कम एक जीव बतौर नमूने के सतसंग में मौजूद रहता है उसके जरिये उस श्रेणी के सब जीवों पर असर पहुँचाया जाता है। सतसंग में खूनी भी आये और अर्से तक सतसंग करके चले गये। पशु चोले से निकल कर भी सीधे सतसंग में चले आते हैं। उत्तम से उत्तम अधिकार के जीव सतसंग में रक्खे जाते हैं।'' (बाबूजी महाराज)

१३६

तुलसी फूलदास उबाच

फूलदास उबाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास जब बचन बषाना, सत्त कबीर पंथ अस जाना ॥ १ ॥
फूलदास महंत अस नामा, काशी कबीर चौरा अस्थाना ॥ २ ॥
महिमा सुनि पुनि हमहूँ आये, दरश कीन सुख मन उपजाये ॥ ३ ॥
फूलदास तब बचन उचारा, गुरु पंथ बिधि कहौ बिचारा ॥ ४ ॥
को है गुरु पंथ को कहिये, कौन मते के साधू कहिये ॥ ५ ॥

फूलदास ने कहा कि हम कबीर साहब के पंथ को सच्चा मत जानते हैं। १।

हमारा नाम फूलदास महंत है और काशी में कबीरचौरा के रहने वाले हैं। २।

आपकी महिमा सुनकर हम भी आपके पास आये हैं। दर्शन करके हमारा मन बहुत प्रसन्न हुआ है। ३।

यह भेद समझाइये कि गुरु मत क्या है यानी कौन गुरु है और क्या पंथ है और आप किस मत के साधु हैं? ४-५।

तुलसीदास उबाच

॥ चौपाई ॥

संत गुरु और पंथ न जाना, येहि जेहि संत पंथ हित माना॥ १॥
दूजा इष्ट न जानौं कोई, संत सरन नित सुरति समोई॥ २॥

तुलसी साहब ने फ़रमाया हैं कि लोग किसको संत कहते हैं, किसको गुरु कहते हैं और किसको पंथ कहते हैं, यह सब मैं नहीं जानता। बस मैं इतना जानता हूँ और जोर देकर कहता हूँ कि मैंने संत मत को बहुत हित और प्रेम से ग्रहण किया है। १।

संतों के सिवा मैंने अन्य किसी इष्ट को नहीं माना। अपनी सुरत को सदा संतों की सरन में रखा। २।

फूलदास उबाच

॥ चौपाई ॥

सतगुरु बिन पंथ न होई, अपना गुरु मत भाषौ सोई॥ १॥
सतगुरु बिन ज्ञान नहिं आवै, सतगुरु बिन भेद नहिं पावै॥ २॥

फूलदास बोले कि संत और गुरु के बिना कोई पंथ नहीं होता। आप अपने गुरु और मत के बारे में बतलाइये। १।

बिना सतगुरु के न तो ज्ञान प्राप्त होता है और न सत्य का भेद मालूम होता है। २।

तुलसीदास उबाच

कहो कैसे गुरु भेद लखावैं, कौन राह से पंथ बतावैं॥ १॥
ताकी विधि कहौ तुम साखी, सो किरपाल दया करि भाखी॥ २॥

हम अजान कुछ मर्म न जाना, तुम हौ साधू परम निधाना ॥ ३ ॥
तुमको कस सतगुरु दरसावा, भाखि भेद सोई मोहिं सुनावा ॥ ४ ॥
मैं अति दीन दया कर दीजे, दीनदयाल भेद पुनि दीजै ॥ ५ ॥

तुलसी साहब ने पूछा कि आपके गुरु ने आपको क्या भेद बतलाया और पंथ की क्या राह बतलाई ? । १ ।

कृपा करके यह सब बातें आप मुझे बतलाइये। प्रमाण में साखी वगैरा भी बतलाइये। २ ।

मैं तो अनजान हूँ। कुछ मर्म नहीं जानता। आप बड़े प्रवीण साधू हैं। ३ ।

आपने सतगुरु को कैसे पहचाना ? सतगुरु ने आपको क्या भेद बतलाया ? यह सब बातें मुझे सुनाइये। ४ ।

मैं अति दीन हूँ, आप दीन दयाल हैं। दया करके सब भेद खोलिये। ५ ।

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

तुलसीदास सुनो चित लाई, पंथ भेद मैं कहूँ सुनाई ॥ १ ॥
सत्त पुरुष रहे पोहप मंझारा, सम्पुट कँवल खुले तेहि बारा ॥ २ ॥
सत्त पुरुष तेहि बचन उचारा, ज्ञानी बेगि जाव संसारा ॥ ३ ॥
काल देत जीवन को त्रासा, संत कबीर काटो जम फांसा ॥ ४ ॥
प्रथमे चले जीव के काजा, सतजुग चले पास धर्मराजा ॥ ५ ॥
धर्म देख उन बोले बानी, जोग जीत कित कीन पयानी ॥ ६ ॥
तब कबीर अस कही पुकारी, जीव काज मैं जगत सिधारी ॥ ७ ॥
सत्त पुरुस अस कहा बुझाई, जग मैं जाय जीव मुक्ताई ॥ ८ ॥
धरमराय अस बचन सुनाई, तुम भौसिंध बिगारन चाही ॥ ९ ॥
तब कबीर बोले अस बाता, तुम्हरी करहुँ प्रान की घाता ॥ १० ॥
पुरुष बचन अब देहौ टारी, तौ हम तुमको देहिं निकारी ॥ ११ ॥
मन में सोच धरम सकुचाना, तब कबीर जग कीन पयाना ॥ १२ ॥

सतजुग नाम मुनिंद्र धरावा, चौका कर जीव लोक पठावा॥ १३॥
चौका कर परवाना पावै, छूटै जीव मुक्ति को जावै॥ १४॥
और त्रेता जुग कीन्हा चौका, जीव मिले जो किये बिशोका॥ १५॥
द्वापर युग की कहूँ बखानी, धुंधल सुपच खेबसरी जानी॥ १६॥
मुक्ति लोक जीव किये पयाना, अस अस जीव मुक्ति को जाना॥ १७॥
चौका कर परवाना पावा, नरियर मोड़ तिनका तुड़वावा॥ १८॥
कलजुग नाम कबीर कहाये, पुरइन सेत पान पर आये॥ १९॥
काशी नगर कीन कर काया, नूरा नीमा के घर आया॥ २०॥
बालक जान चीन्ह नहिं पाये, कई दिवस अस बीत सिराये॥ २१॥
एक दिवस धर्मदास चितावा, चौका कर परवाना पावा॥ २२॥

फूलदास बोले कि तुलसीदास जी, चित्त लगा कर सुनो। मैं तुमको पंडित का यानी कबीर साहब के चलाए हुए पंथ का भेद बतलाता हूँ। १।

सत्तपुरुष कँवल में अपने आप रत और मगन अवस्था में विराजमान थे। जब मौज हुई, कँवल खुला और सत्तपुरुष ने आज्ञा की कि हे ज्ञानी! काल जीवों को बहुत सता रहा है। तुम जल्दी से संसार में जाकर उनकी फाँसी काटो। २-४।

तब कबीर साहब प्रथम बार सतयुग में जीवों का काज सँवारने के लिए सत्तलोक से रवाना हुए और धर्मराय के पास पहुँचे। ५।

धर्मराय ने उनसे पूछा हे जोगजीत! कहाँ जा रहे हो? ६।

कबीर साहब ने कहा कि मैं जीवों का काज सँवारने के लिये आया हूँ। ७।

सत्तपुरुष ने मुझे आज्ञा की है कि जग में जाकर जीवों को काल की त्रास से मुक्त करो। ८।

इस पर धर्मराय बोले कि तुम तो इस संसार को बिगाड़ना चाहते हो। ९।

यह सुनकर कबीर साहब बोले कि मैं तुम्हारे प्राण की घात करूँगा। १०।

अगर तुमने सत्तपुरुष की आज्ञा की अवहेलना की तो मैं तुम को निकाल दूँगा। ११।

धर्मराय डर गया। तब कबीर साहब जग में पधारे। १२।

सतयुग में उनका नाम मुनिन्द्र हुआ और चौका करके जीवों को सत्तलोक पहुँचाया। १३।

जिसने चौका किया उसको सत्तलोक जाने का परवाना मिला। इस प्रकार जीव काल की कैद से छूट कर मुक्ति को प्राप्त हुए। १४।

इसी प्रकार त्रेता युग में चौका करके जीवों को सत्तलोक पहुँचाया और उन्हें शोक रहित किया। १५।

द्वापर युग में धुंधल, स्वपच और खेवसरी भक्त हुए जिनको मुक्ति दी और वे पार हुए। १६-१७।

उन्होंने चौका करके परवाना पाया, नारियल मोड़ा और तिनका तोड़ा। १८।

कलियुग में उनका नाम कबीर हुआ। सेत कँवल के पान पर तशरीफ लाए। १९।

काशीनगर में काया धारन करके नूरा और नीमा के घर पधारे। २०।

नूरा और नीमा उन्हें नहीं पहचान पाये। उन्होंने कबीर साहब को साधारण बालक जाना। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। २१।

तब एक दिन कबीर साहब ने धरमदास को चेताया। उनसे चौका कराके उनको सत्तलोक जाने का परवाना दिया। २२।

तुलसीदास उबाच

॥ चौपाई ॥

भर्म एक मोरे उपजाई, चौका विधी कहो समझाई॥ १॥
चौका कीन दीन परवाना, सो बिधि मोसों कहो बखाना॥ २॥
धरमदास जब चौका कीन्हा, जस कबीर वाको कहि दीन्हा॥ ३॥
सो बिधि मोको बरन सुनाओ, दया भाव यह बिधि दरसाओ॥ ४॥

तुलसी साहब ने कहा कि जब धरमदास ने चौका किया तब कबीर साहब ने उसे परवाना दिया। १-३।

दया करके मुझे चौका करने की विधि समझाइये, जिससे परवाना प्राप्त हो। ४।

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

तुलसीदास सुनो तुम काना।
चौके का मैं कहौं बिधाना॥

॥ छन्द ॥

निज भाव आरत सुनौ खेवसरिं तोहि कहौं समझाय के॥ १ ॥
मिष्ठान पान कपूर केला, अष्ट मेवा लाय के॥ २॥
पाँच बासन सेत बस्तर, कजली पत्र अछेदना॥ ३॥
नारियल और पोहप सेतहि, सेत चौका चांदना॥ ४॥

॥ सोरठा ॥

और आरत अनुमान, सब विधि आनो साज तुम॥ ५ ॥
पूंगीफल परमान, शब्द अंग चौका करो॥ ६॥

॥ चौपाई ॥

और वस्तु आनौ सुठ पावन, गउ घृत और सेत सोहावन॥ ७॥
ऐसे शिष्य सिषापन मानै, ततखन सब विस्तार जो आनै॥ ८॥
सेत चदरवा दीन्हों तानी, आरत कीन जुगत विधि ठानी॥ ९॥
चौका पर बैठक जब लयऊ, भजन अखंड शब्द धुन भयऊ॥ १०॥
पांच शब्द का दल जब फेरा, पुरुष नाम लीन्हा तेहि बेरा॥ ११॥
नरियर मोड़त बास उड़ाई, सत्तपुरुष को जाय जनाई॥ १२॥
छिन में पुरुष परस पद आये, सकल सभा उठ आरत लाये॥ १३॥
पुनि आरत विधि दीन मँडाई, तिनका तोड़ा जल अचवाई॥ १४॥
सोइ सिष हाथ दीन जब पाना, पावे पान सोइ लोक पयाना॥ १५॥
शब्द अंग दीन्हो समझाई, शिष्य बूझ के सुरत लगाई॥ १६॥
पहुँचे लोक अगम के द्वारा, चौका बिधी कबीर पुकारा॥ १७॥
यह विधि जीव करे जो चौका, जाका मिट गया संशय शोका॥ १८॥

फूलदास बोले कि तुलसीदास जी! कान देकर सुनो। मैं चौके की विधि का वर्णन करता हूँ। १।

आरती का सही मतलब क्या है, वह मैं तुम्हें समझा कर कहता हूँ। २।

मिठाई पान कपूर केला और आठ प्रकार के मेवे लाओ। ३।

पाँच बासन (बरतन) और सेत वस्त्र लाओ। केले के पत्तों से मंडप छा देओ। ४।

नारियल और श्वेत फूल मँगा कर सेत चौका सजाओ। ५।

अन्य जो कोई वस्तु तुम उचित समझो लाकर आरती सँवारों। हाँ, सुपारी होना भी आवश्यक है और चौके में शब्द भी होना चाहिए। ६।

और सुंदर व पवित्र गाय का घी भी होना चाहिये। ७।

चतुर शिष्य इस शिक्षा को मान कर फौरन सब चीजें ले आता है। ८।

फिर सेत चँदरवा तान कर युक्ति के साथ आरती करता है। ९।

जब इस तरह चौके पर बैठता है तो अखंड शब्द गूँजता है। १०।

पाँच शब्दों के पाँच मुकामों पर एक-एक करके सुरत को फेरा और हर मुकाम पर पुरुष का यानी मालिक का नाम लिया। ११।

जब नारियल को मोड़ा, उसकी बास चारों ओर उड़ गई और इस प्रकार सत्तपुरुष को खबर हो गई। १२।

छिन भर में पुरुष के पद को परस आये। सारी सभा ने उठकर आरती की। १३।

तीन लोक से तिनका तोड़ दिया और अमृत पान किया और फिर आरती करी। १४।

जिस शिष्य के हाथ में पान दिया वही उस लोक को सिधारा। १५।

शब्द का पता दिया। शिष्य ने उस भेद को पाकर और समझ कर सुरत शब्द में लगाई और अगम लोक के द्वार पर पहुँचा। कबीर साहब ने पुकार कर कहा कि जो कोई इस रीति से चौका करेगा, उसका संशय और शोक मिट जायेगा। १६-१८।

तुलसीदास उबाच

॥ चौपाई ॥

तुलसिदास मन में मुसक्यानी।
मौन रहे कुछ कही न बानी॥

यह सुनकर तुलसी साहब मुस्कुराये किन्तु चुप रहे, कुछ बोले नहीं।

फूलदास उबाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास विधि कहै सुनाई, कहौ तुलसी कछु मन में आई॥ १॥
कहै तुलसी नहिं बूझ बयाना, फूलदास मन में रिसियाना॥ २॥
तुलसी रीस ताहि पहिचानी, दीन होय जोड़े जुग पानी॥ ३॥
फूलदास अस कहै बिचारी, तुलसी कैसे मौन सम्हारी॥ ४॥
चौका कबीर भाखि बतलावा, तुम्हरे मन का कुछ एक न आवा॥ ५॥
सत्त कबीर जो बिधि बताई। सो हम तुमको भाखि सुनाई॥ ६॥

फूलदास बोले कि कहो तुलसीदास जी, हमारी बात तुम्हारे मन में कुछ जँची या नहीं। १।

तुलसी साहब ने कहा कि तुम्हारी बात कुछ समझ में नहीं आई। यह सुनकर फूलदास मन में कुछ रिसियाने से हो गये। २।

तुलसी साहब ने उनके गुस्से को पहचान लिया और दीनतापूर्वक दोनों हाथ जोड़ लिये। ३।

फूलदास तब कुछ सोच विचार कर बोले कि हे तुलसीदास जी! आपने मौन क्यों धारण कर लिया? ४।

संत कबीर साहब ने जो चौके की विधि बतलाई वह मैंने आपसे कही परंतु आप पर कुछ भी असर नहीं हुआ, आपके मन में कोई बात नहीं बैठी। ५-६।

तुलसीदास उबाच

कहि कबीर जो चौका गावै, सो विधि कहौ तौ मन में आवे॥ १॥
दास कबीर जो कही बखाना, सो बिधि चौका है परमाना॥ २॥

बाका भेद बिधी बिधि गावै, तब तुलसी के मन में आवै ॥ ३ ॥
उन पुनि चौका कौन बतावा, तुम ने कैन बिधी ठहरावा ॥ ४ ॥
नरियर उन पुनि कौन बतावा, मोड़े तास जो बास उड़ावा ॥ ५ ॥
तुम बजार से नरियर लावा, ताकी विधि तुम हमैं सुनावा ॥ ६ ॥
जो कबीर नरियर फरमावा, सो तौ तुम्हरी बूझ न आवा ॥ ७ ॥
सिलपिली दीप से नरियरे लाये, ताके पांच फूल बतलाये ॥ ८ ॥
पांच फूल का नरियर होई, ताका भेद बताओ सोई ॥ ९ ॥
सिलपिली दीप से नरियर आवा, ताके पाँच फूल बतलावा ॥ १० ॥
वे ही दीप जलखंडी राजा, ता से आना नरियर साजा ॥ ११ ॥
सो नरियर का भेद बतावै, तब तुलसी के मन में आवै ॥ १२ ॥
नरियर बास उड़ाव न जानो, ताकी विधि तन भीतर मानो ॥ १३ ॥
जो जो मुख से संतन भाखा, सो काया के भीतर राखा ॥ १४ ॥
पिंड ब्रहमंड दोऊ हैं एका, ह्वै है नरियर पिंड विवेका ॥ १५ ॥
ताकी विधी भेद दरसाओ, सो विधि हमको भाख सुनाओ ॥ १६ ॥
पान परवाना भाखा लेखा, ता का मन में उठे विसेखा ॥ १७ ॥
बेचे बरई पान बतावा, सो परवाना मन नहिं आवा ॥ १८ ॥
अम्बू सागर देखो जाई, नरियर पान की बिधी बताई ॥ १९ ॥
चौदह हाथ पान बतलावा, सो कबीर अपने मुख गावा ॥ २० ॥
चौदह हाथ पान बतलाओ, सो परवाना भाखा सुनाओ ॥ २१ ॥
वह भी काया में कहुँ होई, संत कृपा से पावै सोई ॥ २२ ॥
अठ मेवा तुम भाखा सुनावा, छुवारा दाख बदाम मँगावा ॥ २३ ॥
यह हमरे मन में नहिं आवै, कही कबीर सो भाखा सुनावे ॥ २४ ॥
कबीर बिधी अठमेवा भाखी, पुरुष आठ मेवा कहौ साखी ॥ २५ ॥
और कपूर उन भाखि सुनावा, तुम दुकान बनिये से लावा ॥ २६ ॥
वह कपूर काया के माहीं, ताकी विधि कोई संत बताईं ॥ २७ ॥
गऊ घिर्त जो भाखि बतावा, सो तुम दही दूध मथ लावा ॥ २८ ॥
सो कबीर विधि और बताया, गो इन्द्री का घिर्त कहाया ॥ २९ ॥
कजली पत्र कहा उन गाई, काया में आद्दष्ठ दिखाई ॥ ३० ॥

कजली पत्र छेदन बतलावा, काटि पेड़ तुम खंभ गड़ावा॥ ३१॥
कजली छेदन कौन बखाना, तुम ता की विधि नहिं पहिचाना॥ ३२॥
बासन पाँच कबीर बतावा, तुम ताँबा पीतल मँगवावा॥ ३३॥
पाँचौ बासन काया माहीं, करता ठठेरे आप बनाई॥ ३४॥
सो बासन का कहौ बिचारा, तब जिव उतरै भव जल पारा॥ ३५॥
तुम जो बस्तर सेत सुनावा, धोआ कपड़ा आन मँगावा॥ ३६॥
बस्तर सेत कबीर बखाना, सो विधि तुमने नहिं पहिचाना॥ ३७॥
संत सरन सेवा चित लैहौ, साध कोई बिरले से पैहौ॥ ३८॥
पूंगी फल उन भाख सुपारी, ताका मर्म न जान बिचारी॥ ३९॥
निकरै पवन सुपारी माहीं, सो फल पूंगी चौका गाई॥ ४०॥
पवन सुपारी संतन पासा, दीन होय पावै निज दासा॥ ४१॥
पाँच शब्द चौका उन भाषा, भिन-२ भेद बताओ ताका॥ ४२॥
एक शब्द काया के माहीं, और चार का भेद बताई॥ ४३॥
चार चार विधि कौन ठिकाना, न्यारे न्यारे कहौ मकाना॥ ४४॥
न्यारी-न्यारी विधि बतलइया, पाँचों शब्द कबीर सुनइया॥ ४५॥
चौका कीन शब्द धुन गाजा, कहौ वह शब्द केहि ठाम विराजा॥ ४६॥
और चार की विधी बतावै, तब तुलसी के मन में आवै॥ ४७॥
सेत चदरवा दीन तनाई, सो कबीर ने कहा बताई॥ ४८॥
कपड़ा तान चदरवा कीन्हा, कहि कबीर सो बिधि नहिं चीन्हा॥ ४९॥
आरत करन साज बतलाई, सूरत रित रत मरम न पाई॥ ५०॥
आवै सुरत शब्द रित माहीं, सो कबीर ने भाखि सुनाई॥ ५१॥
चौका कौन ठिकाने कीन्हा, ताकी राह रीति नहिं चीन्हा॥ ५२॥
कहि कबीर चौका सोई साजा, जहँवा शब्द अखण्डित गाजा॥ ५३॥
चौका माहिं शब्द तुम गाई, स्वांस थके खण्डित ह्वै जाई॥ ५४॥
आठ पहर चौसठि घड़ि गाजा, या विधि शब्द अखंडित साजा॥ ५५॥

ता चौके का करो बखाना, सो कबीर मुख आप बखाना ॥ ५६ ॥
कहि कबीर सोई विधि हेरे, पाँच शब्द के दल को फेरे ॥ ५७ ॥
सो दल कौन शब्द केहि ठामा, याकी विधि भिन भाखि बखाना ॥ ५८ ॥
कौन ठिकान पाँच दल फेरा, पुरुष नाम केहि ठेके हेरा ॥ ५९ ॥
नरियर मोड़त बास उड़ाई, सो नरियर मोड़ा केहि ठांई ॥ ६० ॥
नरियर बनिये हाट मँगावा, सो नरियर मन में नहिं आवा ॥ ६१ ॥
नरियर मोड़त बास उड़ानी, सो कहो बातें ठोक ठिकानी ॥ ६२ ॥
नरियर मोड़त बास उड़ाई, तुरत पुरुष के दरशन पाई ॥ ६३ ॥
सो ततवर कहो पुरुष दिखाना, सो ठीके का करो बयाना ॥ ६४ ॥
नरियर ऐसा कबीर बतावैं, मोड़त छिन पद पुरुष दिखावैं ॥ ६५ ॥
तुम तौ नरियर मोड़े अनेका, उमर गई पुनि पुरुष न देखा ॥ ६६ ॥
चौका कर परवाना लीन्हा, तन बीता पुनि पुरष न चीन्हा ॥ ६७ ॥
मिलन कबीर आज बतलावा, पूछे कोई नहिं भेद बतावा ॥ ६८ ॥
कहा कबीर जीवत कर लेखा, तन बीता सुपने नहिं देखा ॥ ६९ ॥
परवाना सतलोक पठावे, जीवत मिले न मुये कोई पावै ॥ ७० ॥
कहि कबीर छिन लोकै जाई, सो परवाना भेद न पाई ॥ ७१ ॥
संत कबीर परवाना भाषी, सो तुम्हरी सूझा नहिं आंखी ॥ ७२ ॥
तिनका तड़ो के जल अचवाइ, यह विधि तुमने भेद बताई ॥ ७३ ॥
तिनका तुरन कबीर न गावा, तिनका कौन मर्म बतलावा ॥ ७४ ॥
सिष के हाथ पान पुनि दीन्हा, कौन पान भाषा उन चीन्हा ॥ ७५ ॥
चौदह हाथ पान बतलावा, तुम बरई की हाट मँगावा ॥ ७६ ॥
पावै पान सो लोक पयाना, यह कबीर ने करी बखाना ॥ ७७ ॥
तुमहूँ पान लिए हैं हाथा, देखा कहौ लोक विख्याता ॥ ७८ ॥
जोड़ जोड़ कहो देख दृग अपना, हाल मिला कहो कहो न सुपना ॥ ७९ ॥
जाना विधि विधि पाय न होई, पाये कहैं कबीर बिलोई ॥ ८० ॥

शब्द अंग कब्बीर बुझाई, शिष्य बूझ कर सुरत लगाई॥ ८१॥
पहुँचे शिष्य अगम के द्वारा, चौका सुरत कबीर पुकारा॥ ८२॥
निरत कबीर द्वार दृग भाषा, सूरत शब्द मिले सिष साखा॥ ८३॥
सूरत शब्द मिले चढ़ चापा, घर लिपाय चौका तुम थापा॥ ८४॥
नौतम चौका द्वार लिपाई, यह कबीर चौका नहिं गाई॥ ८५॥
चौका नौतम भेद बताओ, तब कबीर का गाया गाओ॥ ८६॥
जो कबीर विधि भाखा चौका, मिटै जीव का संशय शोका॥ ८७॥
देखौ तुम अपने मन मांही, संशय शोक अनेक सताई॥ ८८॥
चौका करै शोक नहिं आवे, यह तौ शोक अनेक सतावै॥ ८९॥
चौका कहौ कौन है भाई, तासे संशय शोक नसाई॥ ९०॥
कर कर चौका लोग सुनावै, छिन छिन संशय शोक गिरावै॥ ९१॥
यह चौका परतीत दृढ़या, सो तुलसी के मन नहिं आया॥ ९२॥
चौका कर पावै परवाना, एक झलक में लोक पयाना॥ ९३॥
लोक बिधी सिष आय बखाना, सो चौका मोरे मत माना॥ ९४॥
चौका पान अनेकन खाया, बपुरे कोऊ लोक नहिं पाया॥ ९५॥
चौका कर कर साख बतावै, जीवत कोई लोक नहिं पावै॥ ९६॥
चौका कर कर जन्म सिराना, अब मरने का भया ठिकाना॥ ९७॥
मूये पर मुक्ती नहिं पावै, यह कहो लौक कौन विधि जावै॥ ९८॥
जो कबीर ने चौका गाया, सो चल आज लोक जिन पाया॥ ९९॥
जो कुछ पंथ कबीर चलाया, पंथ भेद कोई मर्म न पाया॥ १००॥
पंथ कबीर जौन विधि भाखी, सो ता की बिधि सूझी न आंखी॥ १०१॥
पंथ कबीर कौन विधि गावा, गये कबीर सोई मारग पावा॥ १०२॥
पंथ नाम मारग का होई, मारग मिले पंथ है सोई॥ १०३॥
बिन मारग जो पंथ कहावा, सो उन नहीं पंथ को पावा॥ १०४॥
पंथ कबीर सोई है भाई, गये कबीर जेहि मारग जाई॥ १०५॥

यह नहिं पंथ कहावै भाई, चेला कर सिष राह चलाई ॥ १०६ ॥
यह सब जात पाँत कर लेखा, या से गुरु सिष तरत न देखा ॥ १०७ ॥
अब कबीर की साख सुनाई, जो कबीर अपने मुख गाई ॥ १०८ ॥
पुरइन सेत पान कियौ चौका, चीन्हौ पुरइन छांड़ो धोखा ॥ १०९ ॥
पुरइन सेत का खोज लगाओ, ढूँढ़ ताहि पर चौका लाओ ॥ ११० ॥
तुम धरती पर चौका ठाना, पुरइन सेत कबीर बखाना ॥ १११ ॥
यह तो विधि मिली नहिं भाई, कही और तुम और चलाई ॥ ११२ ॥
यह तुम बनिये हाट लगावा, कहा कबीर सो मर्म न पावा ॥ ११३ ॥
जौ कबीर ने विधी बताई, शब्द राह मारग समझाई ॥ ११४ ॥
शब्द चीन्ह कर बूझ विचारा, केहि विधि शब्द कहैं निरवारा ॥ ११५ ॥
जाको कहिये साध सुजाना, शब्द चीन्ह सोइ बूझैं जाना ॥ ११६ ॥
सोई साध विवेकी होई, कहा कबीर पद बूझै सोई ॥ ११७ ॥
शब्द पंथ सब राह बतावै, भिन्न भिन्न विधि विधि दरसावे ॥ ११८ ॥
कोऊ न बूझै सुरत लगाई, चौका पट्टा औरहि गाई ॥ ११९ ॥
सब कहि भिन्न भिन्न दरसाई, कोई पंथिन की दृष्टि न आई ॥ १२० ॥
पंथ और मग औरे जाई, कहि कबीर सो राह न पाई ॥ १२१ ॥
अब कबीर मुख शब्द सुनाऊँ, फूलदास सुन मन में लाऊँ ॥ १२२ ॥
चौका राह पंथ दरसाऊँ, कहि कबीर मुख शब्द सुनाऊँ ॥ १२३ ॥
तुलसी शब्द कबीर सुनाई, फूलदास सुन सुरत लगाई ॥ १२४ ॥

तुलसी साहब ने कहा कि जो चौका कबीर साहब ने कहा है वह तुम बतलाओ तो हमारा मन उसे कबूल करे। १।

कबीर साहब ने चौका करने की जो विधि बतलाई है, केवल वह प्रमाणिक है। २।

उसका यथार्थ भेद कोई बतलावे तो हमारे मन में जँचे। ३।

कबीर साहब ने कौन सा चौका कहा और तुमने कौन सा चौका मान

लिया। ४।

उन्होंने कौन सा नारियल कहा कि जिसके मोड़ने से बास उड़ गई यानी वासना जाती रही? ५।

तुमने तो बाजार से नारियल मँगाया और उसे फोड़ा और वह विधि हमको बतलाई। ६।

कबीर साहब का नारियल कहने से क्या मतलब था, वह तुम्हारी समझ में नहीं आया। ७।

कबीर साहब ने तो सिलपिली द्वीप से नारियल लाने को कहा था उसके पाँच फूल बतलाये थे। ८।

उस पाँच फूल वाले नारियल का भेद बतलाओ। उस द्वीप का राजा जलखेड़ा है। वहाँ से नारियल लाया गया। उस नारियल का भेद बतलाओ तब तुलसी के मन में जँचे। ९-१२।

नारियल मोड़ कर बास उड़ाई, उसको तुमने नहीं समझा, उसकी विधि तन के भीतर है। १३।

जो भेद संतों ने फरमाया है, वह बाहर नहीं है, काया के अंदर का भेद है। १४।

पिंड और ब्रह्माण्ड की रचना एक सी है। नारियल पिण्ड में कहा है। १५।

उस भेद को हमें बतलाओ। १६।

तुमने कहा कि पान लेने से सत्तलोक जाने का परवाना मिलता है। उसके बारे में मन में एक संशय उठता है। १७।

तम्बोली जो पान बेचता है, उसको पाकर परवाना मिल जाय, यह बात हमको ठीक नहीं मालूम होती है। १८।

अम्बू सागर का भी वर्णन किया है। वहाँ जाओ तो नारियल और पान का भेद और मतलब मालूम हो। १९।

कबीर साहब ने अपने मुख से चौदह हाथ के पान का वर्णन किया है। २०।

वह चौदह हाथ का पान कौन सा है? और परवाना कौन सा है? यह बतलाओ। २१।

वह पान भी इसी काया में है। जिस पर संतों की कृपा दृष्टि हो वही उसे पा सकता है। २२।

तुमने आठ मेवों का वर्णन किया। छुवारा, द्राक्ष और बादाम आदि मँगा लिया। २३।

यह बात हमारे मन में नहीं जँचती। कबीर साहब ने जो मेवा बतलाया है, उसका भेद सुनाओ। २४।

कबीर साहब ने अठमेवा का जो वर्णन किया है उससे मतलब उनका आठ पुरुषों से है। २५।

कबीर साहब ने कपूर का भी वर्णन किया मगर तुम कपूर बनिये की दुकान से ले आये। २६।

कबीर साहब ने जिस कपूर का वर्णन किया है वह काया के भीतर है उसकी विधि कोई संत ही बतलाते हैं। २७।

कबीर साहब ने गाय के घी का भी वर्णन किया है मगर तुमने दूध, दही मथ कर घी बना लिया। २८।

गऊ घृत कहने से कबीर साहब का मतलब कुछ और है। उन्होंने गो यानी इन्द्रियों का घृत बतलाया। २९।

उन्होंने कजली पत्र जो कहा वह भी काया में ही है। ३०।

उन्होंने केले के पत्ते को छेदने को कहा तुमने केले का पेड़ काट कर खंभा गाड़ दिया। ३१।

कजली पत्र छेदने से कबीर साहब का क्या मतलब था, वह तुमने नहीं जाना। ३२।

कबीर साहब ने पाँच बासन का वर्णन किया। तुम ताँबे पीतल के बरतन ले आये। ३३।

लेकिन वह पाँच बासन काया के अंदर हैं जो कि मालिक ने बनाये हैं। ३४।

उन पाँच बासन का विचार किया जावे तब जीव भौसागर के पार जावे। ३५।

तुमने सेत वस्त्र का वर्णन किया लेकिन बाजार से धुला हुआ कपड़ा ले

आये। ३६।

कबीर साहब ने जिस सेत वस्त्र का वर्णन किया, उसका मर्म तुमने नहीं जाना। ३७।

अगर संत साध की सरन लो और चित्त से उनकी सेवा करो तो उनसे यह भेद मिल सकता है। ३८।

कबीर साहब ने पूंगीफल यानी सुपारी का वर्णन किया। उसका मर्म तुम नहीं जान सके। ३९।

ऐसा कहा है कि सुपारी में से पवन निकलती है। उस पूंगीफल यानी सुपारी का वर्णन कबीर साहब ने किया है। ४०।

यह पवन सुपारी संतों के पास है। कोई निज दास जो सच्चा दीन होगा वही उनकी दया से उसे पावेगा। ४१।

कबीर साहब ने पाँच शब्द का चौका कहा है। ४२।

एक शब्द तो काया में है। बाकी चार शब्दों का भेद व न्यारे न्यारे स्थान बतलाओ तब तुलसी के मन में जँचे। ४३-४७।

कबीर साहब ने सेत चँदरवा तानने को कहा। ४८।

तुमने कपड़ा तान कर चँदरवा बना दिया। कबीर साहब का चँदरवा कहने से क्या मतलब था, सो तुम्हारी समझ में नहीं आया। ४९।

आरती करने का सामान तुमने बतलाया मगर सुरत के शब्द में रत होने का मर्म नहीं जाना। ५०।

कबीर साहब ने फ़रमाया कि सुरत संसार से हट कर आवे और शब्द में रत हो, ऐसी आरती करो। ५१।

कौन ठिकाने पर चौका करना चाहिये, इसकी विधि तुमने नहीं जानी। ५२।

कबीर साहब ने ऐसा चौका बतलाया जहाँ अखण्ड शब्द गाज रहा हो। ५३।

तुम चौके में जो शब्द गाते हो वह तो स्वाँस के थकने पर खंडित हो जाता है। ५४।

अखंडित शब्द वह है जो आठ पहर चौंसठ घड़ी गाजता हो। ५५।

उस चौके का वर्णन करो जो कबीर साहब ने अपने मुख से फ़रमाया है। ५६।

जो विधि कबीर साहब ने बतलाई है उसका पता लगाना चाहिये। पाँच शब्द के दल में फेरा करना चाहिये। ५७।

वह दल और शब्द कौन से हैं? इसका भेद भिन्न-भिन्न करके बतलाओ। ५८।

किस स्थान पर पाँच दलों को फेरा और पुरुष का नाम कौन ठिकाने पर पाया? । ५९।

नारियल को मोड़कर बास उड़ाई। बतलाओ कि कौन मुकाम पर जाकर उस नारियल को मोड़ा। ६०।

तुम जो बनिये की दुकान से मँगाकर नारियल फोड़ते हो सो क्या ऐसे नारियल फोड़ने से काज सरेगा, यह बात मन में नहीं आती। ६१।

नारियल मोड़कर बास उड़ाई, इसका ठीक ठीक मतलब बतलाओ। ६२।

ऐसा जो फ़रमाया है कि नारियल मोड़ कर बास उड़ाई तो तुरंत पुरुष का दर्शन प्राप्त हुआ सो कैसे पुरुष के दर्शन मिले, बतलाओ। किस स्थान पर पुरुष के दर्शन मिले, बतलाओ। ६३-६४।

कबीर साहब ने तो ऐसा नारियल बतलाया कि जिसके मोड़ने से छिन में सत्तपुरुष का दर्शन प्राप्त होता है। ६५।

तुमने तो अनेको नारियल फोड़े हैं, फोड़ते-फोड़ते उमर चली गयी पर पुरुष का दर्शन नहीं मिला। ६६।

कहते हो कि चौका करके हमको परवाना मिल गया पर उमर बीत गई, पुरुष का दर्शन नहीं मिला। ६७।

कबीर साहब ने तो फ़रमाया है कि आज यानी इसी देह में पुरुष से मिलना होगा मगर उसका भेद किसी ने नहीं जाना। ६८।

कबीर साहब ने तो कहा कि इसी जिन्दगी में पुरुष का दर्शन मिलेगा पर तन की अवधि बीतने पर भी तुमने उसे स्वप्न में भी नहीं पाया। ६९।

सत्तलोक जाने के परवाने की बात करते हो पर वास्तव में वह न किसी को जीते जी मिला, न मरने पर। ७०।

कबीर साहब ने जो कहा कि एक छिन में सत्तलोक में पहुँचोगे सो उसका

भेद तुम लोगों ने नहीं जाना। ७१।

संत कबीर ने जिस परवाने का वर्णन किया वह तुमको नहीं सूझा। ७२।

तुमने ऐसा कहा कि तिनका तोड़कर जल पिलाओ लेकिन उसका वास्तविक मर्म क्या है, वह नहीं जाना। ७३।

इस तिनके को तोड़ो, ऐसा कबीर साहब ने नहीं कहा। तिनका तोड़ने से उनका क्या मतलब है, यह भेद तुमने नहीं जाना। ७४।

शिष्य के हाथ में पान दिया, वह कौन सा पान है? ७५।

उन्होंने चौदह हाथ का पान कहा पर तुमने तमोली की दुकान से पान मँगाया। ७६।

कबीर साहब ने कहा कि पान को पाकर शिष्य सत्तलोक जाता है। ७७।

तुमने भी पान हाथ में लिये हैं। क्या तुम सत्तलोक पहुँच गये? ७८।

अभी इस समय जो देखा हैं उसका बयान करो, स्वप्न की बातें मत करो। ७९।

जिस वस्तु की प्राप्ति का कबीर साहब ने वर्णन किया उसका भेद किसी ने नहीं जाना। ८०।

कबीर साहब के बतलाये अनुसार चौका करने से सुरत चढ़कर शब्द से मिलनी चाहिये। कबीर साहब ने बतलाया कि शब्द में अपनी सुरत को लगाकर ऊपर चढ़ो। इसे बूझकर शिष्य ने अपनी सुरत शब्द में लगाई और चौका यानी शब्द मार्ग जो कबीर साहब ने बतलाया है, उसके द्वारा शिष्य अगम लोक के द्वार पर पहुँचा। ८१-८२।

कबीर साहब फ़रमाते हैं कि दृग द्वार पर अपनी निरत जगाओ तो शिष्य की सुरत, शब्द से मिले और उसकी साख बढ़े। ८३।

असली चौका तो यह है कि सुरत चढ़ कर शब्द से मिले पर तुमने घर को लीप कर उसको ही चौका मान लिया। ८४।

द्वार पर नया लीप कर चौका कर दिया। ऐसा चौका करने को कबीर साहब ने नहीं कहा। ८५।

कबीर साहब ने जो नौतम यानी अत्यन्त नवीन चौके का वर्णन किया उसका भेद बतलाओ कि इस कहने का क्या मतलब है, तब यह बात मानी

जाय कि तुम कबीर साहब की कही हुई बात का वर्णन कर रहे हो। कबीर साहब के कहने के मुताबिक चौका किया जाय तो जीव के संशय और शोक मिट जायँ। ८६-८७।

तुम अपने मन की हालत को परखो। तुम्हें अनेक संशय और शोक सता रहे हैं। ८८।

चौका करने से तो शोक दूर होना चाहिये पर तुम्हें तो अनेक शोक सता रहे हैं। ८९।

वह कौन सा चौका है, जिससे संशय और शोक दूर होते हैं? ९०।

चौका कर करके लोगों को सुनाते हो, पर स्वयं संशय शोक से घिरे रहते हो। ९१।

ऐसा चौका करना तुलसी को नहीं जंचता। ९२।

सही चौका वह है जिसको करके सत्तलोक जाने का परवाना प्राप्त हो और एक छिन में सत्तलोक पहुँच जाय। ९३।

सत्तलोक देख कर शिष्य आवे और वहाँ का हाल बतलावे तो ऐसा चौका मेरे मन को भाता है। ९४।

चौका करके अनेक पान खाये पर किसी को सत्तलोक प्राप्त नहीं हुआ। ९५।

लोग चौका करते हैं और उसको प्रमाणिक बतलाते हैं पर किसी को जीवन भर सत्तलोक की प्राप्ति नहीं हुई। ९६।

चौका करते-करते उम्र बीत गई और अब मरने का समय आ गया। ९७।

मरने पर मुक्ति नहीं प्राप्त हुई तो सत्तलोक कैसे मिलेगा। ९८।

कबीर साहब ने जिस चौका का वर्णन किया है उसके करने से आज ही सत्तलोक की प्राप्ति होती है। ९९।

कबीर साहब ने जो पंथ चलाया उसके भेद को किसी ने नहीं जाना। १००।

कबीर साहब ने जो पंथ का भेद कहा, वह तुम लोगों को नहीं सूझा। १०१।

कबीर साहब का पंथ क्या है? वही, जिस मारग पर वह स्वयं चले। १०२।

पंथ नाम मार्ग का है। जिस पंथ से मालिक की प्राप्ति का मार्ग मिले, वही सच्चा पंथ है। १०३।

जिस पंथ में केवल चेला करने की रीति जारी है, वह पंथ नहीं है। १०४-१०६।

यह सब तो जात पाँत की बातें है। इनसे गुरु और शिष्य दोनों ही नहीं तरेंगे। १०७।

अब मैं कबीर साहब ने जो भेद स्वयं फरमाया, उसका वर्णन करता हूँ। १०८।

सेत कँवल के पान का चौका किया। उस सेत कँवल को पहचानो और धोखे की बातों को छोड़ो। १०९।

सेत कँवल का खोज लगाओ। उस पर चौका लगाओ। ११०।

कबीर साहब ने तो सेत कँवल बतलाया पर तुमने जमीन पर चौका कर लिया। १११।

यह विधि तो नहीं मिली। उन्होंने कहा कुछ और, तुमने किया कुछ और तुमने तो एक प्रकार से बनिये की हाट लगा दी। कबीर साहब ने जो कहा उसका मर्म नहीं पाया। ११२-११३।

कबीर साहब ने शब्द मार्ग का भेद समझाया यानी शब्द को पकड़ के चलो। ११४।

शब्द को पहचानो और यह समझने की कोशिश करो कि किस तरह शब्द निरवार करता है यानी भौजल से पार करके सत्तलोक पहुँचाता है। ११५।

जो इस भेद को समझता बूझता है वही सुजान साध है। ११६।

कबीर साहब के बतलाये हुए पद की जिसको समझ बूझ आई है, वही विवेकी साध है। ११७।

शब्द मार्ग से सत्तलोक की राह बतलाई। भिन्न-भिन्न मंजिलों के अपने-अपने न्यारे-न्यारे शब्द दरसाये लेकिन किसी ने इस भेद को नहीं जाना। बाहर में और और तरह से चौका करने लगे। ११८-११९।

सब भेद कबीर साहब ने न्यारा-न्यारा करके दरसाया पर किसी ने उसे नहीं लखा। १२०।

कबीर साहब के शब्द मार्ग की जो सत्य राह बतलाई उस पर कोई नहीं चला। सब बाहर कर्म धर्म में लग गये। १२१।

अब मैं तुम्हें कबीर साहब का फ़रमाया हुआ एक शब्द सुनाता हूँ। फूलदास तुम मन लगाकर सुनो। १२२।

कबीर साहब ने शब्द से समझाता हूँ कि चौके की क्या राह है। १२३।

तब तुलसी साहब ने कबीर साहब का शब्द सुनाया जिसको फूलदास ने चित्त देकर सुना। १२४।

मंगल

खोजौ साध सुजान, सो मारग पीव का।
परख शब्द गहौ शरन, मूल जहँ जीव का॥ १॥
भौजल अगम अपार, लहर विकराल है।
कठिन यह पाँचौ मगर, बीच जम जाल है॥ २॥
इन्द्रादिक ब्रह्मादिक, पार न पावहीं।
गुरु बहियाँ कढ़िहार, जो पार लगावहीं॥ ३॥
निरख परख कढ़िहार, तौ घर पहुँचा वहीं।
देत नाम की डोर, तौ दुख बिसरावहीं॥ ४॥
बैठि के आनन्द महल, परम गुण गावहीं।
सुखमन सेज जगाय, तौ पिया रिझावहीं॥ ५॥
बिन जल लहर अनूप, तौ मोती झिलमिले।
देख छत्र उजियार, तौ हंसा हंस मिले॥ ६॥
अग्र जोत उजियार, तौ पंथ सिधावहीं।
कोटिन भान निछावर, आरत साजहीं॥ ७॥
का लिखि दीन्हें पान, तौ तिनका तोरई।
का नरियर के मोड़े, जो जम कर बोरई॥ ८॥
सत लिख दीन्हे पान, सो तिरगुन तोरई।
सुरत फूल बर मूल, नरियर मोरई॥ ९॥
नरियर भेद अगम्म, संत जन मोरई।
कहैं कबीर तेहि जाचौ, तौ बंदी छोरई॥ १०॥

मंगल

तेरी संगी निकरि गयौ दूर, सुहागन आय मिलो॥ टेक॥
आया संदेशा आदि घरै का, लिए शब्द टक सार॥ १॥
सतगुरु घाट अगम मोहिं चढ़ना, चढ़न के पंथ सिधार॥ २॥
नवएँ धाम कुंजी खोलिये, दसएँ गुरु परताप॥ ३॥
चौका चार गुप्त हम कीन्हा, ता का सकल पसार॥ ४॥
कहैं कबीर धर्मदास से, यह चौका है निरधार॥ ५॥

॥ चौपाई॥

यह कबीर चौका अस भाखा, मूल वृक्ष तजि पकड़ो साखा॥ ६॥
पंथ राह चौका अस जाना, सोई कबीर पन्थी को माना॥ ७॥
कहि कबीर सो राह उठाई, अपने मत की राह चलाई॥ ८॥
झूंठा पंथ जगत सब लूटा, कहा कबीर सो मारग छूटा॥ ९॥
कहा कबीर जीवत निरवारा, तुम लै उलटी फांसी डारा॥ १०॥

साध सुजान का खोज करो तो सच्चे मालिक से मिलने की राह मिले। फिर शब्द को परख कर सरन लो तो मूल पद प्राप्त हो। १।

भौजल अगम अपार है और उसकी लहरें बड़ी विक्राल हैं। उसमें बड़े दुष्ट पाँच मगरमच्छ (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) हैं और उनके बीच में जम का जाल हैं। २।

इन्द्रादिक और ब्रह्मादिक ने भौसागर का पार न पाया। गुरु ही हैं जो बाँह पकड़कर भौजल के पार ले जाते हैं। ३।

गुरु को निरखो और परखो तो वे दया से निज घर पहुँचा देंगे। निज नाम की डोर पकड़ा देंगे जिससे सब दुख बिसर जायेंगे। ४।

आनन्द महल में बैठकर गुरु के गुण गाओ और सुखमन की सेज पर पहुँचो तो पिया प्रसन्न होंगे। ५।

बिना जल के अनेक लहरें उठ रही हैं और मोती झिलमिला रहे हैं। चढ़ने वाली सुरत छत्र के उजाले में उस देश के बासी हंसों से मिलती है। ६।

श्रेष्ठ ज्योति के प्रकाश को देखकर आगे मार्ग पर चली। फिर आरती सजाई कि जिसमें करोड़ों सूरज वार दिये आरती के प्रकाश के आगे करोड़ों सूरज भी शर्मिन्दा हैं। ७।

पान पर क्या लिखा है कि जिससे संसार का तिनका टूट गया? कौन से नारियल को मोड़ा कि जिससे जम से पीछा छूट गया? ८।

पान पर सत्त लिख दिया जिसमें तीनों गुण छूट गए। सुरत रुपी फूल अपने मूल वर से यानी कुल्ल मालिक से मिले तो नारियल मोड़ा जाय। ९।

कबीर साहब फ़रमाते हैं कि नारियल का भेद अगम है। उसे कोई संत जन ही मोड़ते हैं। उसको समझो तो बंद से छुटकारा मिले। १०।

मंगल

हे सुहागिन! तेरा पिया तुझसे बहुत दूर हो गया है। जाकर उससे मिलो। टेक।

आदि घर को चलने का संदेशा आया है। शब्द की टकसार से यानी शब्द मार्ग से चलो। १।

सतगुरु का घाट अगम हैं जिस पर तुझे चढ़ना है। सो उस मार्ग पर चलो। २।

नवएँ धाम को यानी दसवें द्वार या सुन्न को कुँजी से अर्थात् गुरू स्वरूप से खोलो और दसवां द्वार यानी महासुन्न गुरु प्रताप से पार होगा यानी गुरु के संग पार होगा। ३।

महासुन्न में चार मुकाम गुप्त हैं यानी चार चौके गुप्त हैं। उन्हीं चार चौकों का यह सब पसारा है। ४।

कबीर साहब धरमदास जी से कहते हैं कि यह चार मुक़ाम या चौका निराधार है यानी किसी के आसरे नहीं है। ५।

ऐसा चौका कबीर साहब ने बयान किया मगर कबीर पंथियों ने वृक्ष के मूल को छोड़कर शाखा को पकड़ लिया। ६।

मालिक से मिलने का जो सच्चा पंथ व मार्ग है, वही चौक़ा है। वही कबीर साहब का सच्चा पंथ है। ७।

मगर कबीर साहब ने जो सत्य मार्ग बतलाया उसको छोड़ दिया। अपने मन की न्यारी राह चलाई। ८।

यह तो झूठा पंथ है। इसको चलाकर सब जगत को लूटा गया। ९।

कबीर साहब ने तो जीवों के निर्वार की विधि बतलाई। तुमने उल्टे जीवों के गले में फाँसी डाल दी। १०।

फूलदास उवाच

१४२

॥ चौपाई ॥

सुन कर फूलदास सकुचाना, तुलसी बचन सत्त कर माना॥ १॥
तुम कबीर विधि भाखी रीती, ता में नेक न कही अनीती॥ २॥
जो कबीर ने पंथ चलाई, सो ही तुमने राह बताई॥ ३॥
साहब ने इक बानी भाखा, धरमदास कुल दीन्ही साखा॥ ४॥
बंस बयालिस तुम्हरे होई, अटल राज भाखा पुनि सोई॥ ५॥
ऐसी शब्द साख समझावै, और ग्रंथ यह भेद बतावै॥ ६॥
अस कबीर अपने मुख भाखा, अटल बयालिस बंसी साखा॥ ७॥
या की तुलसी कस कस भइया, कहौ बुझाय कैसी विधि कहिया॥ ८॥
कहि कबीर ने बंस बखाना, सो कहो तुलसी केहि विधि जाना॥ ९॥
बंस बयालिस अटल बतावा, कस कस धर्मदास सोई गावा॥ १०॥
या की विधि विधि भेद बताइये, सो तुलसी वरतंत सुनइये॥ ११॥

यह सुनकर फूलदास लज्जित हुए और तुलसी साहब का फ़रमाया हुआ बचन सही माना और कहा कि आपने कबीर साहब की बतलाई विधि को सही सही बयान किया। उसमें कोई अनुचित बात नहीं कही। १-२।

कबीर साहब ने जो पंथ चलाया, वही राह आपने बयान की। ३।

कबीर साहब ने फ़रमाया है कि धर्मदास! तुम्हारे कुल में बियालीस वंश होंगे और अटल राज होगा। ४-५।

तुलसीदास जी! कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि किस तरह बियालीय वंश हैं। कबीर साहब का वंश कहने से क्या मतलब है और बियालीस वंश को अटल कहा, इसका क्या मतलब है? ६-११।

॥ शब्द १३७ ॥

ऊपर के धामों का वर्णन

एरी लै आज तौ अधर घर आई, तुलसी चढ़ देखिया ॥ टेक ॥
सूरत दृग दौड़ अटारी, हिय हेर लखा पिउ प्यारी ॥
सारी तौ लै हेरि निहारी, प्यारी लै संग पेखिया ॥ १ ॥
नरियर को मोड़ा जाई, प्रिय बास सुगंध उड़ाई ॥
बीरा पान पाये आई, सुगन्धी महकाइया ॥ २ ॥
मेवा आठ पुरुष लख जानी, स्त्रुत हेर हिये उड़ानी ॥
शब्दा रस भइ रँग रानी, हरषानी पिय पाय के ॥ ३ ॥
पलँगा पर जाय पौढ़ी, धन धन सुख की घड़ी ॥
अटारी महल चढ़ी, प्यारा पिव पेखिया ॥ ४ ॥
फूलदास दृग पर चौका, परवाना छांड़ो धोखा ॥
नरियर सुरत से मोड़ो, तोड़ो असमान को ॥ ५ ॥
तुलसी बस सूरत जाई, चौका परवाना याही ॥
बस तिल हिरदे बिच आई, चढ़ी द्वारा पाय के ॥ ६ ॥
रेतीदास को समझावा, फूलदास दोऊ लख पावा ॥
कँवला में सुरत लखाई, तुलसी विधि गाय के ॥ ७ ॥
इन्द्री पांच बासन मोड़ा, गुण तीन तिनका तोड़ा ॥
पोढ़े तिनका बासन छूटा, झूठे जग लूटिया ॥ ८ ॥
तुलसी कब्बीर बखाना, सो चौका विधि हम जाना ॥
पूछौ कोई चित व्रत आई, ताको दरसाइया ॥ ९ ॥
पत्र कदली छेदा जाई, जहँ सेत चँदरवा तनाई ॥
तुलसी विधि कहि समझाई, संत जनाइया ॥ १० ॥

हे सखी सुनो, तुलसी ने आज चढ़ कर अधर घर को देखा ॥

सुरत ने दिल खोलकर अपने पिया का दीदार किया और दौड़ कर पिया के महल में गई। मेरी प्यारी सुरत ने अपने पिया को देखा। १।

जब नारियल यानी आपे को दूर किया तो अपनी बासना को जो पहले प्यारी लगती थी, छोड़ दिया तब कँवल में पहुँची और हर्षित हुई। २।

अष्ट मेवा से मतलब पुरुष से है जिसको खोजती हुई सुरत ऊपर को उड़ी। शब्द का रस पाकर उसके रंग में रंग गई और पिया का दर्शन पाकर हर्षित हुई। ३।

पिया के महल पर जाकर उससे मिली और पिया के पलंग पर चढ़कर बिलास किया। वह सुख की घड़ी धन्य है। ४।

फूलदास! तीसरे तिल के ऊपर के चौक को देखो। उस देश का परवाना पाकर इस संसार का डर दूर करो। सुरत से आपे को दूर करो और आसमान को पार कर ऊपर को चढ़ो। ५।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जब सुरत वहाँ बस गई तो गोया परवाना प्राप्त हुआ। तीसरे तिल के द्वार पर चढ़कर वहाँ बसी और फिर हिरदे यानी त्रिकुटी में पहुँची। ६।

तुलसी साहब ने रेतीदास और फूलदास दोनों को भेद समझाया तब उन्होंने कँवल पर पहुँचकर सुरत को लखा। ७।

पाँचों इन्द्रियों को बासना से मोड़ और तीनों गुनों से तिनका तोड़ो। जो भक्ति में दृढ़ है उसकी बासना छूट गई और जो झूठे हैं उनको जग ने लूट लिया। ८।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि कबीर साहब ने जिस चौके का वर्णन किया है हम उसका मर्म जानते हैं। अगर कोई खोजी ध्यान लगाकर उसके बारे में पूछता है तो उसे बतलाते हैं। ९।

मलीनता को दूर करके आकाश में पहुँच कर सेत चँदरवा तानो। ऐसा संतों ने कहा है और यही तुलसी साहब कहते हैं। १०।

॥ शब्द १३८ ॥

अली इक बाग बन खंडा, लगे वृक्ष बेल पर अंडा॥
अजब इक फूल पचरंगा, भंवर बस बास के संगा॥ १॥

अगर सब लोग फल खावैं, स्वाद बस रैन रह जावैं॥
फले फल दाख के पेड़ा, रहत जेहि भूमि पर भेड़ा॥ २॥
भेड़ा रहे बाग में अली जा, काढ़ नित खात कलेजा॥
वही बन बीच में राजै, गरज सब सूरमा भाजै॥ ३॥
कहूँ कोई रहन नहिं पावै, सकल बन जीव चर जावै॥
कहूँ उनमान बल केरा, बनी बिच जीव सब घेरा॥ ४॥
सुनो अब तोल तन केरा, नहीं त्रैलोक में हेरा॥
अली इक बात अनतोली, सुनी सब संत की बोली॥ ५॥
कहैं दस सीस वहि केरा, पाँच पच बीस तन हेरा॥
अली मुख तीन से खावे, अजब वहि बात हिये आवे॥ ६॥
तरंग तन बीच में भावै, समझ दस सीस पर लावै॥
अरी थिर थोब नहिं जाना, रहे भ्रम भाव रस खाना॥ ७॥
अली जिन अंड को फोड़ा, सुरत निज नैन से जोड़ा॥
मुवा मन भाव का भेड़ा, चले सत नाम चढ़ बेड़ा॥ ८॥
तुलसी तब बूझ में आई, अगम सब समझ दरसाई॥
लिये सत संत के चरना, विधि बरतंत सब बरना॥ ९॥

हे सखी! एक बाग है जिसमें वृक्ष और बेल पर अंड स्थित है। १।

एक अद्भुत पचरंगी फूल है जिसकी सुगंध से मोहित भँवरा वहाँ रहता है। २।

सब लोग जो उसका फल खाते हैं वह स्वाद के बस होकर वहीं रह जाते हैं। ३।

वहाँ दाख के पेड़ पर फल लगे हैं और वहाँ एक भेड़िया रहता है। ४।

हे सखी! बाग में रहने वाला एक भेड़िया ऐसा दुष्ट है कि रोज सबका कलेजा खाता है। ५।

उसी भेड़िये का जंगल में राज है और उसकी आवाज सुनकर सब डर से भाग जाते हैं। ६।

कहीं कोई नहीं रह पाता। वह वन के सब प्राणियों को खा जाता है। ७।

उसका बल इतना अधिक है कि उसने वन के सब जीवों को घेर लिया है। ८।

हे सखी सुनो! उसका तन तो इतना वजनदार है कि त्रिलोकी भर में उसका जोड़ नहीं है। ९।

अध्याय ४

पुराने संतों की बानियों का संदर्भ देते हुए संत शब्द की व्याख्या

थोड़े से नाम पूरे और सच्चे संतों के और सच्चे साध और फकीरों के जो पिछले सात सौ वर्ष में प्रकट हुए, यहाँ लिखे जाते हैं। कबीर साहब, तुलसी साहब, जगजीवन साहब, गरीबदास जी, पलटू साहब, गुरुनानक, दादू जी, तुलसीदास जी, नाभाजी, स्वामी हरिदास जी, सूरदास जी और रैदास जी और मुसलमानों में शम्स तबरेज, मौलवी रुम, सरमद, मुजद्दिद आलिफ सानी। इन साहबों के बचन बानी देखने से हाल उनकी पहुँच और स्थान का मालूम हो सकता है। (स्वामीजी महाराज)

सुन्न तक की गति वाले जो अन्य महात्मा इस पिछले अर्से में आये वह भी संतों ही की श्रेणी में रखे गये हैं यानी उनका मत भी संत मत माना गया है। इन सब संत साध महात्मा और फकीरों ने अपने समय में संतमत का उपदेश देकर असंख्य जीवों को चेताया और असली व सच्चे परमार्थ में लगाया। उन्होंने राधास्वामी दयाल के आगमन के लिये उपयुक्त भूमि तैयार की, ताकि जीवों का अधिकार जागे और वे और भी ऊँचे देश के परमार्थ की बातें सुनकर ग्रहण कर सकें और करनी कर सकें। (बाबूजी महाराज)

संत शब्द का वर्णन

१३९

॥ चौपाई ॥

कहे तुलसी तुम सुनिये काना, संत शब्द का करूँ बखाना॥ १॥
दादू मीरा नाभा भाई, नानक दरिया सू सुनाई ॥ २॥

अरु कबीर पुनि भाखा भाई, और अनेक संत विधि जाई॥ ३॥
जो जो संत अगमपुर धाये, जिन जिन साखी शब्द सुनाये॥ ४॥
संत चरन रज तुलसीदासा, कुछ कुछ भगवा अगम विलासा॥ ५॥
तुलसी संत चरन की लाख। मेरी बुधि नहिं उन अनुसार॥ ६॥
संत चरन महिमा पुनि आसूं। उनके चरन सीस पर रासूं॥ ७॥
संत शब्द विधि विधि कहूँ, सुनियो फूलादास
जो जो शब्द उन भाखिया, कहूँ चरन होई दास॥ ८॥

तुलसी साहब ने कहा कि मैं "संत" शब्द का भेद बतलाता हूँ। १।

दादू, मीरा, नाभाजी, नानक, दरिया, सूरदास, कबीर और अनेक संत जो अगमपुर को पहुँचे हैं और साखी व शब्द रचे हैं उन संतों के चरनों की धूल पाकर तुलसीदास ने कुछ-कुछ अंतर के अगम बिलास का वर्णन किया है। २-५।

मुझे संतों का संग प्राप्त है पर मेरी बुद्धि संतों की बुद्धि के समान परिपूर्ण नहीं है। ६।

पहले मैं संतों के चरनों की महिमा करता हूँ और उनके चरनों को सीस पर रखता हूँ। ७।

संतों के शब्दों का अलग-अलग वर्णन करता हूँ। फूलदास! तुम सुनो! मैं उनका दास, जो जो शब्द उन्होंने कहे हैं, उनका भेद कहता हूँ। ८।

॥ शब्द १४० ॥

दादू साहिब

दादू देखा अदीदा, सब कोई कहत सुनीदा ॥ टेक॥
हवा हिरस अंदर बस कीदा, तब यह दिल हुआ सीधा॥
अनहद नाद गगन गढ़ गरजा, तब रस पाया अमी दा॥ १॥
सुखमन सुन्न सुरत महलों नभ, आया अजर अकीदा॥
अष्ट कँवल दल में दृग दर्शन, पाया खुद्द खुदी दा॥ २॥
जैसे दूध दूध दधि माखन, बिना मथे भेद न घी दा॥
ऐसे तत्त मत्त सत साधन, तब टुक नशा पिया पी दा॥ ३॥

नहिं यंहि जोग ज्ञान मुद्रा तत, यह गति और पदीदा ॥
जो कोई चीन्ह लीन यह मारग, कारज हो गया जी दा ॥ ४ ॥
मुर्शिद सत्त गगन गुरु लखिया, तन मन कीन उसी दा ॥
आशिक यार अधर लख पाया, हो गया दीदम दीदा ॥ ५ ॥

दादू साहब फ़रमाते हैं कि सब कोई मालिक का वर्णन सुना हुआ कहते हैं लेकिन मैंने तो प्रत्यक्ष उनका दर्शन किया है।

हिर्स हवस को बस में किया यानी हिर्स हवस को दूर किया तब यह मन सीधा हुआ। गगन में अनहद नाद सुना और अमृत रस पिया। १।

जब सुरत सुखमन व सुन्न महल में पहुँची तो अजर विश्वास पैदा हुआ। आठवें मुकाम या स्थान में खुद खुदा का यानी राधास्वामी दयाल का दर्शन किया। २।

दूध का दही बनाकर और फिर दही को मथते हैं तब घी का दर्शन होता है। ऐसे ही सत्य साधन द्वारा मथने पर तत्व ज्ञान प्राप्त होता है और तब प्रीतम के प्रेम का कुछ नशा चढ़ता है। ३।

सच्चा मार्ग जोग ज्ञान मुद्रा इत्यादि से न्यारा है। जो कोई इस मारग को जान लेगा उसी का काम पूरा होगा। ४।

गगन में सतगुरु दयाल को लखा और तन मन उनको भेंट किया। अधर में प्रीतम से मिलाप हुआ और उनका दर्शन पाया। ५।

॥ शब्द १४१ ॥

नानक साहब

उघरा वह द्वारा, वाह गुरु पर वारा ॥ टेक ॥
चढ़ गइ चंग पतंग संग ज्यों, चंद चकोर निहारा ॥
सूरत शोर जोर ज्यों खोलत, कुंजी कुफ़ल किवारा ॥ १ ॥
सूरत धाय धसी ज्यों धारा, पैठ निकस गई पारा ॥
आठ अटा की अटारि मँझारा, देखा पुरुष निनारा ॥ २ ॥

निराकार आकार न जोती, नहिं वहँ वेद बिचारा॥
ओङ्कार करता नहिं क़ोई, नहिं वहँ काल पसारा॥ ३॥
वह साहब सब संत पुकारा, और पाखण्ड पसारा॥
सतगुरु चीन्ह दीन यह मारग, नानक नजर निहारा॥ ४॥

गुरु धन्य हैं जिनकी कृपा से अंतर का द्वारा खुल गया।

जैसे चकोर चन्द्रमा को देखता है, उस तरह देखती हुई सुरत चंग पतंग की तरह चढ़ गई और बड़े वेग से चलकर कुंजी लेकर ताला और किवाड़ खोल दिया। १।

सुरत धार की तरह दौड़ी और पार पहुँच गई। आठवें महल में एक न्यारा पुरुष देखा। २।

वहाँ आकार निराकार ज्योति वेद ओंकार इत्यादि काल का पसारा नहीं है। ३।

नानक साहब फ़रमाते हैं कि केवल संतों ने सच्चे मालिक को जाना है, और सब पाखण्ड है। सतगुरु ने इस मार्ग को चीन्हा है। उन्होंने दया करके मुझको बतलाया तब मैंने भी देखा। ४।

॥ शब्द १४२ ॥

दरिया साहब (मारवाड़ वाले)

दरिया दरवाजा खुल गया अजर किवारा ॥ टेक॥
चमकी बीज चली ज्यों धारा, ज्यों बिजली बिच तारा॥
खुल गया चंद बंद बदरी का, घोर मिटा अँधियारा॥ १॥
लै लगी जाय लगन के लारा, चांदनी चौक निहारा॥
सुरत सैल करैं नभ ऊपर, बंक नाल पट फारा॥ २॥
चढ़ गई चाप चली ज्यों धारा, ज्यों मकरी मुख तारा॥
मैं मिली जाय पाय पिया प्यारा, ज्यों सलिता जल धारा॥ ३॥
देखा रुप अरूप अलेखा, लेखा वार न पारा॥
दरिया दिल दरवेश भये तब, उतरे भौजल पारा॥ ४॥

दरिया साहब फ़रमाते हैं कि मालिक के दरबार का अजर किवाड़ खुल गया।

बिजली चमकी और सुरत धार की तरह चली, जैसे तारा चलता है तो उसमें रोशनी होती है। चाँद के ऊपर से बादल का परदा हट गया जिससे घोर अंधेरा जाता रहा। १।

जब लौ यानी लाग और लगन व शौक पैदा हुआ तो चौक यानी आँगन की चाँदनी को देखा। सुरत ने आसमान में सैर करते हुए, बंकनाल का पर्दा फाड़ा। २।

जैसे मकड़ी अपने मुँह से तार निकालती है वैसे धनुष पर चढ़कर धार की सुरत चली। मैं अपने प्यारे पिया को पाकर उससे ऐसी मिली जैसे जल की धारा नदी से मिलती है। ३।

ऐसा रुप देखा जो अरुप है या बिना रुप का है, जिसको जाना नहीं जा सकता, जिसका वार पार या आदि अंत नहीं है। दरिया साहब फ़रमाते हैं कि जब दिल फ़कीर हुआ तब भौजल के पार हुए। ४।

॥ शब्द १४३ ॥

मीरा

मीरा मन मानी, सुरत सैल असमानी ॥ टेक ॥
जब जब मुरत लगे वा घर की, पल-पल नैनन पानी ॥
ज्यों हिय पीर तीर सम सालत, कसक-कसक कसकानी ॥ १ ॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवै, भावत अन्न न पानी ॥
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी ॥ २ ॥
ऐसा वैद मिलें कोई भेदी, देश विदेश पिछानी ॥
ता से पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी ॥ ३ ॥
खोजत फिरूँ भेद वहि घर को, कोई न करत बखानी ॥
रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु, दीनी सुरत सहदानी ॥ ४ ॥
मैं मिली जाय पाय पिया अपना, तब मोरी पीर बुझानी ॥
मीरा खाक खलक सिर डारै, मैं अपना घर जानी ॥ ५ ॥

मीराबाई कहती हैं कि जब सुरत आसमान की सैर करती है तब मन मानता है यानी काबू में आता है।

जब जब उस घर की याद आती है तो आँखों में आँसू आ जाते हैं। जैसे तीर सालता और कसकता है ऐसे ही हृदय में प्रीतम की विरह सताती है। १।

विरह के मारे मुझे अन्न पानी कुछ अच्छा नहीं लगता, न रात को नींद आती है। तन में विरह की पीर ऐसी सताती हे कि रात जागते बीतती है। २।

देश विदेश ढूँढती हूँ कि कोई ऐसा वैद मिले जो मालिक का भेद जानता हो। उससे तन की पीड़ा का हाल कहूँ तो फिर खान में भरमना छूटे। ३।

उस घर को खोजती फिरती हूँ लेकिन कोई उसका भेद नहीं देता। जब संत सतगुरु रैदास जी मिले तो उन्होंने सुरत की निशानी व पहचान दी। ४।

मीराबाई कहती हैं कि मैं अपने पिया से जाकर मिली तब मेरी पीर शांत हुई। मुझे अपना घर मिल गया। जग पर मैंने धूल डाली यानी जग की परवाह छोड़ दी। ५।

॥ शब्द १४४ ॥

सूरदास जी

मुरली धुन गाजा, सूर सुरत सर साजा ॥ टेक॥
निरखत कँवल नैन नभ ऊपर, शब्द अनाहद बाजा॥
सुन धुन मैल मुकर मन मांजा, पाया अमी रस झांका। १॥
सूरत संघ सोध सत काजा, लख लख शब्द समाजा।
घट-घट कुंज पुंज जहँ छाजा, पिंड ब्रह्माण्ड विराजा॥ २॥
फोड़ अकाश अललपछ भाजा, उंलट के आप समाजा॥
ऐसे सुरत निरख निःअक्षर, कोटि कृष्ण तहँ लाजा॥ ३॥
सूरदास सार लख पाया, लख लख अलख अकाया॥
सतगुरु गगन गली घर पाया, सिंध में बुन्द समाया॥ ४॥

सूरदासजी की सुरत ऊपर चढ़ी जहाँ मुरली की आवाज गाज रही है।

अर्श पर पहुँच कर नैन कँवल देखा जहाँ अनहद शब्द हो रहा है जिसको सुन कर मन रुपी आईने का मैल दूर हो गया और अमृत पान करने को मिला। १॥

सुरत ने सत्य वस्तु के मरम को जाना और संत पद में समा गई। घट में तरह तरह की लीला है और पिंड व ब्रह्माण्ड भी घट में है। २।

अललपक्ष की तरह आकाश को फोड़कर भागी और उलट कर अपने आप में समा गई। सुरत ने निःअक्षर को देखा जहाँ करोड़ों कृष्ण शर्मिंदा हैं। ३।

सूरदास जी ने सार वस्तु को लखा। अलख (जो देखा नहीं जा सकता) और अकाया (जिसके देह नहीं है) को देखा। गगन की गली में सतगुरु का घर मिला और समुद्र में बूंद समा गई। ४।

॥ शब्द १४५ ॥

नाभा जी

नाभा नभ खेला, कँवल केल सर सैला ॥ टेक॥
दरपन नैन सैन मन मांजा, लाजा अलख अकेला॥
पल पर दल दल ऊपर दामिन, जोत में होत उजेला॥ १॥
अंडा पार सार लख सूरत, सुन्नी सुन्न सुहेला॥
चढ़ गई धाय जाय गढ़ ऊपर, शब्द सुरत भया मेला॥ ॥ २॥
यह सब खेल अपेलद अमेला, सिंध नीर नद मेला॥
जल जल धार सार पद जैसे, नहीं गुरु नहिं चेला॥ ३॥
नाभा नैन ऐन अंदर के, खुल गये निरख निहाला॥
संत उछिष्ट वार मन झेला, दुर्लभ दीन दुहेला ॥ ४॥

नाभा जी फ़रमाते हैं कि मैं अर्श पर खेला, कँवल की सैर की और उसका आनन्द लिया।

मन को साफ करके नैन का दर्पन लिया जिससे काल शर्मिंदा हो गया। दो दल यानी तीसरे तिल के ऊपर पल-पल दामिनी दमकती है या ज्योति का उजाला होता है। १।

अंड के पार सुरत ने खूबसूरत सुन्न को देखा जो सार वस्तु है। सुरत दौड़ कर किले के ऊपर चढ़ गई जहाँ सुरत का शब्द से मेल हुआ। २।

यह सब कैफ़ियत ऐसी है कि जो बयान नहीं हो सकती, न किसी से मेल

खाती है। समुद्र में नदी मिल गई। सार पद में जल और जल की धार सब एक रुप हैं, न वहाँ गुरु है न वहाँ चेला है। ३।

संत की उच्छिष्ट मन को वार के यानी मन को नीचा डाल के ली जो कि दुर्लभ है। उससे अंतर की आँख खुल गई और लीला देख कर मैं निहाल हो गया। ४।

॥ शब्द १४६ ॥

कबीर साहब

कबीर पुकारा, मैं तो जगत से न्यारा ॥ टेक॥
आदि पुरुष अविगत अविनासी, दीप लोक पद पारा ॥
सूरत सहर हेरि हिय द्वारा, शब्द न सिंध अकारा ॥ १ ॥
काल न जाल स्वाल नहिं बानी, सो घर अधर हमारा ॥
अंत न आदि साध कोई जाने, सतगुरु पदम निहारा ॥ २ ॥
नहिं तहँ आदि निरंजन जोती, सत्त पुरुष दरवारा ॥
ब्रह्मा बिश्नु वेद विधि नाहीं, नहीं आदि ओंकारा ॥ ३ ॥
यह सब यार प्यार लख पूरा, रुप न रेख जहूरा।
कहैं कबीर संत वहि द्वारा, चकवा चौंक हुँकारा ॥ ४ ॥

कबीर साहब फ़रमाते हैं कि मैं तो जगत से न्यारा हूँ यानी मेरा बासा जगत से न्यारे लोक में है।

आदि पुरुष अविनाशी है जिसकी गति कोई नहीं जानता। वह निरंजन के पार है। सुरत ने उसको हिए के द्वार से देखा। वहाँ न शब्द है न आकार। १।

वहाँ काल का जाल नहीं है और न कोई बानी है। ऐसा हमारा अधर घर ह जिसका न आदि है न अंत है। उसे कोई साध जानता है जिसने सतगुरु के चरन कँवल को निहारा है। २।

वहाँ न आदि निरंजन है न ज्योति न ब्रह्मा विष्णु, न वेद न आदि ओंकार। ऐसा वह सत्तपुरुष का दरबार है। ३।

वह हमारा प्यारा यार है। वह पूरन धनी है। उसे मैंने देखा। उसमें रुप रंग व रेखा नहीं है। संत उस द्वारे पर जाकर राज करते हैं। ४।

तुलसीदास उबाच

१४७

॥ दोहा ॥

फूलदास तुलसी कहै, संत शब्द की रीति।
जो २ गये अगाध को, सोई २ संत समीर॥

तुलसी साहब फूलदास से फ़रमाते हैं कि संतों की रीति सुनो। जो जो अगाध यानी मालिक के धाम तक पहुँचे वह संत है।

॥ छन्द ॥

तुलसी गति गाई शब्द सुनाई।
पंथ अगम सुर्त सार भई ॥ १॥
नानक और दादू दरिया साधू।
मीरा सूर कबीर कही ॥ २॥
नाभा नभ जानी भाखि बखानी।
सुरत समानी पार गई ॥ ३॥
सब की विधि न्यारी एक बिचारी।
सब संतन इक राह लई॥ ४॥
सब चढ़े इक धारा पहुँचे पारा।
लखा गगन गति गवन गई॥ ५॥
कोई करि है संका महा मति-रंका।
तुलसी डंका दीन कही ॥ ६॥
यह सत मत भाखा देखा आंखा।
साख शब्द मैं गाय कही॥ ७॥
यह करी बखाना भेष न जाना।
शब्द निशाना सुरत लई ॥ ८॥
कागज नहिं स्याही ग्रंथ न पाई।
गाय गाय सब जन्म गई॥ ९॥

कोई संत लखैहैं न्यारी कहिहैं।
कथन बदन में नाहिं नहीं॥ १० ॥
जो पोथी पढ़ि हैं ज्ञान से अड़ि हैं।
नर्क पड़े पन भक्ति नहीं॥ ११ ॥
बिन भक्ति न पैहैं जन्म गँवैहैं।
संत सरन बिन राह नहीं॥ १२ ॥
जिन जिन यह मानी सत कर जानी।
भक्ति संत सब भाखि कही॥ १३ ॥
संतन को जाना शब्द पिछाना।
सुरत समानी आदि लई॥ १४ ॥
तुलसी तत सारा अगम निहारा।
गुरु पिया पद पार लई॥ १५ ॥
महुँ पुनि गाई संत सुनाई।
संत शब्द रस अगम कही॥ १६ ॥
सब संत पुकारा महुँ पुनि लारा।
सारा चारा पार गई ॥ १७ ॥
चौथा पद गाई संत सुनाई।
सुरत सैल अज आदि लई॥ १८ ॥
संतन कर भेदा जाने न वेदा।
खेद करम की दूर भई॥ १९ ॥
संतन की सरना दुख सुख हरना।
वरना तुलसी तोल लई ॥ २० ॥
संतन मुख भाषी अगम की आँखी।
उन से ताकी तरक कही॥ २१ ॥
कोई बूझे न संधा पड़ा जम फंदा।
अंधा जग को बूझ नहीं॥ २२ ॥

संतन विधि गाई शब्द सुनाई।
भई बानी सब गाय कही॥ २३॥
शब्द जो गावै आँख न आवै।
बिन सतसंगत भर्म सही॥ २४॥
छूटै सब टेका बूझै एका।
यह संतन ने सार दई ॥ २५॥
तुलसी गोहराई बूझ न पाई।
बिन बूझे सब खान मई॥ २६॥
दीन निहारा संत पुकारा।
शब्द विचारा पार भई॥ २७॥

तुलसी साहब ने संतों की गति का वर्णन किया। उनका पंथ अगम है। उनकी सुरत सार हुई। १।

नानक दादू दरिया मीरा सूरदास कबीर साहब नाभाजी इन सबने आकाश का भेद जाना और वर्णन किया। इनकी सुरत उसके पार पहुँची। २-३।

सब संतों की राह एक ही है लेकिन उन्होंने उसका भेद भिन्न-भिन्न रीति से वर्णन किया है। ४।

सब एक ही धार यानी शब्द की धार पर चढ़ कर पार पहुँचे और आकाश को लखा और उसके पार गये। ५।

जो इसमें शंका करे वह बड़ा बेवकूफ़ है। तुलसी साहब इस बात को डंका बजा कर कहते हैं। ६।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मैंने अपनी आँखों से देखकर यह सत्य भेद शब्द साखी छंद में कहा। ७।

शब्द की राह को और सुरत के भेद को भेख ने नहीं जाना। ८।

यह निज मर्म कागज पर नहीं लिखा जा सकता। इसलिए ग्रंथों में नहीं है। लोग ग्रंथों के शब्द गा गाकर अपना जन्म बरबाद करते हैं। ९।

इस मर्म को कोई संत लखाता है व इस न्यारे भेद को जनाता है जो कि

कहने लिखने में नहीं आ सकता। १०।

पोथियां पढ़ कर ज्ञानी कहलाने वाले नर्क में जाते हैं। ११।

वे भक्ति का प्रण नहीं धारण करते। बिना भक्ति के मालिक नहीं मिलता व जन्म वृथा जाता है। संतों की सरन लिए बिना मालिक की प्राप्ति की राह नहीं मिलती। १२।

जिन्होंने इस बात को सच्चा माना उन्होंने भक्ति को श्रेष्ठ ठहराया। १३।

जिन्होंने संतों को पहचाना उनकी सुरत शब्द में समा कर आदि पुरुष के धाम में समा गई। १४।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मैंने गुरु व पिया के पद को जो कि सार तत्व है और अगम है, निहारा। १५।

सब संतों ने यह कहा है और मैंने भी यही वर्णन किया है कि शब्द का रस अगम है। १६।

सब संतों ने चौथे पद के परे का सार भेद कहा है व मैं भी यही कहता हूँ। १७।

संतों ने चौथे पद की महिमा की है। मेरी सुरत ने भी उस आदि पद की सैर की। १८।

संतों के पद के भेद को वेद नहीं जानता। संतों के पद के भेद को जानने से कर्मों का खेद दूर हो जाता है। १९।

सब संतों की सरन से दुख दूर हो जाते हैं। तुलसी साहब स्वयं जाँच कर वर्णन करते हैं। २०।

संतों ने स्वयं देखकर अगम का भेद कहा है। लोग उनसे वृथा तर्क करते हैं। २१।

संतों की बतलाई हुई निशानी को कोई नहीं समझता। जग में जम का फंदा पड़ा हुआ है। जगत अंधा है। इसलिए संतों की बात को नहीं बूझता। २२।

संतों ने शब्द सुनाकर अपना निज भेद कहा। जब बानी बन गई तो सब उसे गाकर सुनाते हैं। २३।

संतों की बानी तो वे गाते हैं पर उसके सही अर्थ पर उनकी दृष्टि नहीं जाती। सतसंग के बिना सब जीव भरम में पड़े रहते हैं। २४।

इसलिए सब चारों खानों में भरम रहे हैं। संतों ने सार भेद यह कहा कि एक सच्चे मालिक को पूजो। २५।

अन्य सब टेक छोड़ दो। यही तुलसी साहब कहते हैं लेकिन इसको कोई नहीं बूझता। इसलिए सब चारों खानों में जा रहे हैं। २६।

जीवों को दीन देखकर संतों ने शब्द का भेद दिया जिन्होंने इसको समझा व माना वे पार हो गये। २७।

॥ सोरठा ॥

तुलसी शब्द विचार, फूलदास यह विधि सुनो।
शब्द करै निरधार, सार पार पद लख पड़ै ॥ १ ॥

तुलसी साहब फूलदास से फ़रमाते हैं कि शब्द के भेद को जानो। यह इस भवसागर से पार करके सार पद को लखायेगा। १।

॥ दोहा ॥

शब्द शब्द बहु भेद यह अभेद गति भाखिया।
तुलसी ताकी धार शब्द निरख रस जिन पिया ॥ २ ॥

शब्द शब्द में बहुत भेद है। सार शब्द अभेद यानी गूढ़ है। जिन्होंने उस शब्द की धार को पकड़ा उन्होंने अमृत रस पान किया। २।

॥ चौपाई ॥

तुलसी शब्द संत जो भाषा, जिन-जिन संत जो गये अगाधा ॥ ३ ॥
अपने अपने शब्द बनाये, अपनी अपनी सखी सुनाये ॥ ४ ॥
जो जो गये अगम के द्वारा, पंथ अगम के उतरे पारा ॥ ५ ॥
पार जाय विधि सगरी भाखी, जो जो देखी अपनी आँखी ॥ ६ ॥
अपनी देखी कही बखानी, आदि अंत जो जिन ने जानी ॥ ७ ॥
कही संत और कही कबीरा, सब मिल कही एक विधि हीरा ॥ ८ ॥
पहुँचे पहुँचे एक ठिकाना, बिन पहुँचे का और बखाना ॥ ९ ॥
जो जो संत जो भये सनाथा, पहुँचे पार सार रस माता ॥ १० ॥

बरन न जाय संत गत न्यारी, मोरी मति कुछ नाहिं बिचारी॥ ११॥
संतन की गति कस-कस गाई, दादू की कहूँ साख बताई॥ १२॥
दादू शब्द संत गति गाई, शब्द संत उन भाखि सुनाई॥ १३॥
उसकी निसा साखि दरसाऊँ, तुलसी उनकी अगम सुनाऊँ॥ १४॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जो जो संत अगाध यानी मालिक तक पहुँचे उन्होंने उस सार शब्द का वर्णन किया है। ३।

उन्होंने अपने-अपने अलग-अलग शब्द और साखी बनाकर उस सार शब्द का वर्णन किया है। ४।

जो जो उस शब्द को पकड़ के गये वही पार पहुँचे। ५।

पार पहुँच कर जो जो उन्होंने अपने अंतर की आँखों से देखा वही सब भेद उन्होंने वर्णन किया है। ६।

जो आदि से अंत तक उन्होंने देखा वही बयान किया है। ७।

वही सब संतों ने कहा और वही कबीर साहब ने कहा। सबने मिलकर उसी एक अमोल भेद का वर्णन किया है। ८।

सब एक ही ठिकाने पर पहुँचे। जो नहीं पहुँचे उनकी कहन अलबत्ता जुदी है। ९।

जो जो संत, मालिक से मिले वही पार पहुँचे और उन सबको सार रस प्राप्त हुआ। १०।

संतों की इस न्यारी गति का वर्णन नहीं हो सकता। मेरी बुद्धि इसे कुछ नहीं जानती। ११।

संतों की गति कैसी है इसे समझने के लिये दादू साहब का शब्द कहता हूँ। १२।

दादू साहब ने संतों की गति का वर्णन किया है। १३।

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि उनका शब्द कहता हूँ और उनकी अगम गति का वर्णन करता हूँ। १४।

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास कह अंध अचेता, तुलसी स्वामी दीन्ही चेता ॥ १ ॥
मोरा मन मैला अति नीचा, यह महंत मत मन सम कीचा ॥ २ ॥
मोरी मत पर दृष्टि न दीजै, फूलदास अपना कर लीजै ॥ ३ ॥
तुम्हारे चरण माहिं निरवारा, बिना चरण नहिं होय उबारा ॥ ४ ॥
जो कबीर सो तुम हो स्वामी, दया करो मोहिं अंतरजामी ॥ ५ ॥
मैं अपनी गति कस कस गाऊँ, सुरत न छांड़े तुम्हरा पाऊँ ॥ ६ ॥
एक बात मोरे मन आई, भाखो स्वामी तुलसि गुसांई ॥ ७ ॥
है शरीर में बीर कबीरा, सात दीप नौ खंड का बीरा ॥ ८ ॥
ऐसी साखि कबीर पुकारा, बूझौ यह विधि कौन विचारा ॥ ९ ॥
या कौ भेद भर्म मोहिं आवा, भाखो स्वामी भरम नसावा ॥ १० ॥

फूलदास बोला कि मैं तो अंधा और अचेत हूँ। हे तुलसी स्वामी, आपने दया कर मुझे चिताया। १।

मेरा मन बड़ा मैला और नीच है। यह महंत की मति कीचड़ की तरह मैली है। २।

कृपा करके मेरी मति पर दृष्टि न करिये। कृपा कर फूलदास को अपना कर लीजिये। ३।

आपके चरनों में ही मेरा निर्वार है। बिना आपके चरनों के मेरा उद्धार नहीं हो सकता। ४।

आप और कबीर साहब एक ही हैं। आप अन्तर्यामी हैं, मुझ पर दया करिये। ५।

मैं अपना हाल क्या वर्णन करूँ? बस यही कि मेरी सुरत आपके चरनों से जुदा होना नहीं चाहती। ६।

हे तुलसी स्वामी! मेरे मन में एक संशय उठा है। दया करके उसका निवारण करें। ७।

शरीर में जो वीर यानी बहादुर है वह कबीर है। यह सात द्वीप और नौ खंड में व्यापक है। ८।

ऐसा संतों ने कहा है सो यह कैसे हो सकता है। ९।

यह संदेह मेरे मन में आया है सो आप दया करके बचन फ़रमाइये जिससे मेरा भर्म दूर हो। १०।

॥ चौपाई ॥

तुलसीदास उवाच

फूलदास सुनियौ दै काना, या का भाखूं सकल विधाना ॥ १ ॥
धरमदास मन ही को जानो, काया वीर कबीर बखानो ॥ २ ॥
विधि कबीर संवाद बखाना, धरमदास मन तुलसी जाना ॥ ३ ॥
काया वीर मन कहि संवादू, यह कबीर मुख भाखी आदू ॥ ४ ॥
सातौ दीप कबीर समाना, सो कबीर मन माहिं भुलाना ॥ ५ ॥
मन भूला इन्द्री संग साथा, काया कबीर देह में राता ॥ ६ ॥
सात दीप नौ खँड समाई, रहत कबीर भर्म उपजाई ॥ ७ ॥
तन संग कर्म माहिं किया बासा, उपजै बिनसै पुनि पुनि नासा ॥ ८ ॥
तन सँग पाया हिये रहे सोगा, उपजै बिनसै दुख सुख भोगा ॥ ९ ॥
मन से इन्द्री बास उड़ाई, सो मन धरमदास है भाई ॥ १० ॥
काया वीर जो धरम न जाने, होय कबीर आदि पहिचाने ॥ ११ ॥
सुरत सैल जो चढ़े अकासा, फोड़ि अकाश अमर पद बासा ॥ १२ ॥
सत्त गहै सतगुरु पद पासा, सत्तलोक सतपुरुष निवासा ॥ १३ ॥
ताके परे अगम पुर धामा, देखै लोक अलोक अनामा ॥ १४ ॥
सत कबीर वह वहँ को जाई, और कबीर भौ भटका खाई ॥ १५ ॥
सत्त कबीर जाहि कर नामा, चढ़ै सुरत सतलोक समाना ॥ १६ ॥
सतगुरु सत्तपुरुष है स्वामी, सो गुर करै चेला परमानी ॥ १७ ॥
सतगुरु सत्तपुरुष है सैला, वह कबीर सतगुरु का चेला ॥ १८ ॥
वह कबीर जेहि राह बतावै, सुरत सैल सोइ अगम लखावै ॥ १९ ॥

वह कबीर भौ पार लगावै, और कबीर भौ भटका खावें॥ २०॥
और गुरु चेला झूंठ पसारा, दोनों डूबे भौ जल धारा॥ २१॥
सतगुरु सत्तपुरुष की बाटा, चेला चढ़ै सुरत से घाटा॥ २२॥
सोई चेला है पद परवाना, और सगरा जग निगुरा जाना॥ २३॥
कनफूंका से काज न होई, दोनों जाय नरक में सोई॥ २४॥
सत्य सोई गुरु गगन प्रकासा, जा से मिटै काल की त्रासा॥ २५॥
गगन चढ़ै सोई सतगुरु पाई, नाहीं तौ चेला निगुरा भाई॥ २६॥
गगन चढ़ै गुरु परसै आई, चेला से पुनि गुरु कहाई॥ २७॥
सत्त कबीर ताहि को नाई, काया कबीर को राह बताई॥ २८॥
कनफूंका गुरु जग व्यौहारा, उनसे न उतरै भौजल पारा॥ २९॥
सतगुरु सत्त कबीरहिं पावै, चौका की विधि विधी बतावै॥ ३०॥
सुरत शब्द की डोर लखावै, चौके से चौथा पद पावै॥ ३१॥
शब्द शोर से उठे अखंडा, सुरत राह से चढ़ गई डंडा॥ ३२॥
होवै सत्तपुरुष पद मेला, सो कबीर सतगुरु का चेला॥ ३३॥
सतगुरु मिलै पान कर आना, बिन सतगुरु कोई राह न जाना॥ ३४॥
सो कबीर चौका विधि जानै, चौथे पद की राह बखानै॥ ३५॥
चौका विधि भिन्न भिन्न बतलावै, पंथ राह सतगुरु दरसावै॥ ३६॥
सूरत चढ़े पंथ जब पावै, चौका पंथ राह सोइ आवै॥ ३७॥
यह चौका कब्बीर बतावा, चौका राह रीति समझावा॥ ३८॥

तुलसी साहब बोले कि फूलदास, चित्त देकर सुनो। मैं इस सबका भेद बतलाता हूँ। १।

तुलसी साहब ने कबीर का भेद बतलाया और मन को धरमदास कहा। कबीर साहब ने अपनी जबान मुबारक से फ़रमाया कि काया में जो वीर है वह कबीर है। २-४।

वह सातों दीपों में समा रहा है और वह कबीर मन के साथ भूल रहा है। ५।

मन इन्द्रियों के साथ कबीर दोनों में रत है। ६।

जो कबीर सात दीप नौ खंड में समा रहा है, वह कबीर यहाँ भर्म में पड़ कर देह को अपना रुप मान रहा है और तन के साथ कर्म करता है जिससे बार बार बिनसता है और पैदा होता है और तन के साथ रोग सोग सहता है और जन्म मरण का दुख सुख भी सहता है। ७-९।

जिस मन ने इन्द्रियों के भोग की बासना छोड़ दी, वह मन धरमदास है। १०।

काया में वीर जो कबीर संसारी कर्म धर्म को नहीं मानता, वह आदि यानी मालिक को पहचानता है। ११।

जो सुरत आकाश में चढ़ने लगती है वह आकाश को फोड़ कर अमर पद में बास करती है। १२।

सत्त धार को पकड़ कर सत्तलोक में जो सतगुरु का पद या स्थान है और जहाँ सत्तपुरुष निवास करते हैं, पहुँचती है। १३।

उसके परे अगमपुर धाम है। वह अलोक और अनाम है। उसे देखती है। १४।

जो कबीर सत्त रुप धारण करता है वह वहाँ जाता है और अन्य कबीर संसार में भटका खाते हैं। १५।

जो वहाँ पहुँचता है, उसी का नाम सत्त कबीर है और उसी की सुरत चढ़ कर सत्तलोक में समाती है। १६।

सतगुरु सत्तपुरुष के अवतार हैं। उनका चेला करना ठीक है। १७।

जो सत्तलोक की सैर करता है वह कबीर सतगुरु का चेला है। १८।

वह कबीर जिसको राह बतावे उसी की सुरत मालिक से मिलती है। १९।

वह कबीर चेले को भौ के पार लगाते हैं। और कबीर भौ में भटका खाते हैं। २०।

और गुरु चेले सब झूठे हैं, दोनों संसार रुपी सागर में डूबते हैं। २१।

सच्चा चेला वही है जो सुरत शब्द की राह से सत्तपुरुष के पास पहुँचता है। २२।

उसी चेले को सत्त पद का परवाना प्राप्त होता है। और बाकी सब जगत के जीव निगुरे हैं। २३।

कनफूँका गुरु से काज नहीं सरेगा। ऐसा गुरु और उसका चेला दोनों नरक में जाते हैं। २४।

सच्चा गुरु वही है जो गगन का प्रकाश दिखा दे जिससे काल के कष्ट दूर होते हैं। २५।

•जो शिष्य गगन को चढ़ता है वही सतगुरु को पाता है वरना वह शिष्य निगुरा है। २६।

जो शिष्य गगन को चढ़कर गुरु से मेल करता है, वह फिर चेले की बजाय खुद गुरु हो गया। २७।

वह चेला सत्त कबीर है और वही काया के बासी लोगों को सच्ची राह बतलाता है। २८।

कनफूँका गुरु को गुरु धारण करना तो जगत की रीति है। उससे भौजल के पार नहीं जा सकता। २९।

सतगुरु सत्त कबीर को मिलते हैं और चौके की विधि बतलाते हैं। ३०।

वही सुरत शब्द की डोर लखाते और पकड़ाते हैं जिससे चौका यानी चौथा पद प्राप्त होता है। ३१।

अंतर में जो अखंड शब्द हो रहा है उसे पकड़ कर जो सत्तलोक पहुँचे वह सतगुरु कबीर साहब का सच्चा चेला है। ३२-३३।

ऐसे चेले को ही सतगुरु खुद आकर मिलते हैं। बिना सतगुरु के कोई मार्ग पर नहीं चल सकता है। ३४।

वही कबीर चौके की विधि यानी सुरत शब्द मार्ग को जानता है और बतलाता है। ३५।

वह सतगुरु भिन्न-भिन्न शब्दों का भेद देकर राह लखाते हैं। ३६।

जब सुरत चढ़ती है तब राह को पाती है। ३७।

इस तरह का चौका यानी सुरत शब्द मार्ग का भेद कबीर साहब ने बतलाया। ३८।

तुलसीदास गुनुवाँ उबाच

१४७

॥ चौपाई ॥

तुलसीदास उबाच

अब तुलसी अस करी बखानो, हिरदे की संगत पहिचानो ॥ १ ।
निस दिन हिरदे संग निहारो, हिरदे से होई है निखारो ॥ २ ॥
मन को थिर कर बूझो बाता, मन थिर बिना न आवै हाथा ॥ ३ ॥
इंद्री मन थिर सूरत हेरो, तब भौजल से होय निबेरो ॥ ४ ॥
यह हिरदे रहे हमरे पासा, तन मन विधी रहो यहि दासा ॥ ५ ॥
यह सतसंगत सगरी जानी, या से प्रीत करी पहिचानी ॥ ६ ॥
हिरदे का तुम भेद न पाई, सूरत पाय चरण चित लाई ॥ ७ ॥
या से पिता भाव नहिं मानौ, सूरत सैल चरण में आनौ ॥ ८ ॥
तब हिरदे बोला अस बानी, अब चालन घर कहूँ बखानी ॥ ९ ॥
यह गुनुवाँ परशाद कराऊँ, पुनि सिर नाय चरण में आऊँ ॥ १० ॥
अस कह दीन दंडवत कीन्हा, चरण पाय मारग को लीन्हा ॥ ११ ॥

तब तुलसी साहब गुनुवाँ से बोले कि तुमको चाहिए कि अब हिरदे का संग करो। १।

रात दिन हिरदे की संगत में रहो। हिरदे की संगत में रहने से तुम्हारा निबेड़ा होगा। २।

अपने मन को स्थिर करके इस बात को समझो। मन के स्थिर हुए बिना कुछ हाथ नहीं आता। ३।

इन्द्रिय और मन को स्थिर करके सुरत की खोज करो तब भौजल से तुम्हारा निरवार होगा। ४।

यह हिरदे हमारे पास रहते हैं और तन मन से सेवा करते हैं। ५।

इन्होंने सतसंग का सब मर्म जान लिया है। तुमको चाहिए कि इनकी पहचान करके उनसे प्रीत करो। ६।

तुमने अपने पिता हिरदे का भेद नहीं जाना। इनकी सुरत जाग गई है और

इन्होंने अपने चित्त को मालिक के चरनों में लगाया है। ७।

अपनी सुरत को इनके चरनों में लगाओ। इनको पिता भाव से न मानो। ८।

तब हिरदे ने तुलसी स्वामी से अर्ज़ किया कि मैं अब घर जाता हूँ। ९।

अपने पुत्र गुनुवाँ को आपके पास रखता हूँ और दीनतापूर्वक आपके चरनों में हाजिर हूँगा। १०।

ऐसा कहकर उन्होंने नम्रतापूर्वक दंडवत की और चरन स्पर्श करके घर को रवाना हुए। ११।

गुनुवाँ उवाच

तुलसी स्वामी अर्ज़ हमारी, किरपा करो कहौं निरवारी॥ १॥
हिरदे की मोहिं विधी बताई, हिरदे पर समझ मोहिं आई॥ २॥
अस विश्वास मोर मन आवा, या की कृपा कहो परभावा॥ ३॥
मैं स्वामी निज दास तुम्हारा, ये कहिये बूझौ निज सारा॥ ४॥

गुनुवाँ बोला कि हे स्वामी! मेरी अर्ज़ है कि आप मुझे दया करके हिरदे का भेद बतलाइये। मुझे यह मालूम पड़ता है कि आपकी कृपा से हिरदे भौसागर के पार हो गए हैं। १-२।

मुझे ऐसा विश्वास है सो आप दया करके मुझे बतलाइये कि हिरदे की गति कहाँ तक है। ३।

मैं आपका दास हूँ। कृपा करके मुझे यह भेद बतलाइये। ४।

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई॥

तब तुलसी बोले यहि भांता, हिरदे भेद सुनाऊँ बाता॥ १॥
इन सतसंगत बहु विधि कीन्हा, संत चरण में रहै अधीना॥ २॥
दीन विधी और मन मत लीन्हा, संत चरण घट अन्तर चीन्हा॥ ३॥
सूरत लीन अधर रस माती, का पूछौ हिरदे की बाती॥ ४॥
सतसंगत विधि सगरी जाना, सूरत सैल फोड़ असमाना॥ ५॥
दस दिस पार सार सब जाना, नौ लख कँवल पार पहिचाना॥ ६॥

मानसरोवर बेनी तीरा, जल प्रयाग बहै निर्मल नीरा॥ ७॥
ता में न्हाय चढ़े असमाना, सतगुरु चौथे पाय ठिकाना॥ ८॥
निस दिन सैल सुरत सों खेला, सुरत नाम करै निस दिन मेला॥ ९॥
अष्ट कँवल दल गगन समाई, सहस कँवल पर तेहि की राही॥ १०॥
ता के परे चार दल लीन्हा, द्वै दल जाय दोय में कीन्हा॥ ११॥
यह विधि रहे दिवस और राती, जाने कोई न इन की बाती॥ १२॥
ऐसे कई दिवस गये बीती, तो पीछे भई ऐसी रीती॥ १३॥
कोऊ न भेद जान घर माहीं, यह रहै सूरत अधर लगाई॥ १४॥
चल हिरदे पुनि घर को जाई, घर में त्रिया पुत्र द्वउ रहई॥ १५॥
रात वास घर अपने कीना, भोजन कर पुनि कीन्ही सैना॥ १६॥
पुनि पुनि निसा गई अध राती, चढ़ गई सुरत सैल रस माती॥ १७॥
ता समै तिरिया कीन उपावा, रोग सोग अपना दुख गावा॥ १८॥
जब हिरदे मन कीन विचारा, यह ग्रह साल जाल है न्यारा॥ १९॥
अस मन में कुछ भई उदासी, पुनि तब से रहे हमरे पासी॥ २०॥

तुलसी साहब बोले कि मैं तुम्हें हिरदे का भेद बतलाता हूँ। १।

इन्होंने बहुत प्रकार से सतसंग किया है और संत चरन में अधीनता पूर्वक रहते हैं। २।

चित्त से दीन लीन होकर रहते हैं और अंतर में संत चरन से मेल करते हैं। ३।

तुम हिरदे की बात क्या पूछते हो? उनकी सुरत अधर के रस में माती और लीन है। ४।

उन्होंने सतसंग का सब भेद जान लिया है और उनकी सुरत आसमान में पहुँच कर वहाँ की सैर करती है। ५।

दसों दिशा के पार का सब भेद इनको मालूम हुआ है और नौ लख कँवल के पार पहुँचे हैं। ६।

दसवें द्वार में जो मान सरोवर और त्रिवेणी का निर्मल जल है उसमें नहा कर यह चौथे पद में जहाँ सतगुरु का ठिकाना है, पहुँचे हैं। ७-८।

इनकी सुरत रात दिन नाम से मेला करती है और घट की सैर करती है। ९।

तीसरे तिल को जो दो दल का कँवल है, पार करके सहसदल कँवल में जो आठ दल का कँवल है, जाती है। फिर त्रिकुटी में जो चार दल का कँवल है पहुँचती है। १०-११।

इस विधि हिरदे रात दिन घट की सैर करते हैं और नाम के रंग में रँगे रहते हैं। इनका हाल कोई नहीं जानता है। १२।

इस तरह कई दिन बीत गए। यह अपनी सुरत अधर में लगाये रहते थे और नाम के रस में मगन रहते थे। इनके घर में किसी को इस बात का पता नहीं चला। १३-१४।

इसके बाद ऐसा हुआ कि हिरदे अपने घर को आये जहाँ उनके स्त्री पुत्र दोनों रहते थे। १५।

हिरदे ने रात अपने घर निवास किया। भोजन करके सो गये। १६।

जब आधी रात बीत गई, इनकी सुरत आकाश में चढ़कर वहाँ का आनंद लेने लगी। १७।

उस समय इनकी स्त्री अपने रोग सोग का दुखड़ा इनसे कहने लगी। १८।

तब इन्होंने अपने मन में विचार किया कि यह गृहस्थी का जाल बड़ा दुखदाई है। १९।

इनके मन में उदासीनता आ गई और तब से यह हमारे घर में रहने लगे। २०।

महादेव पार्वती की कथा

उस भूमि की महिमा जहाँ संत विराजते हैं इस कथा में वर्णन की गई है-

एक समय संकर और गौरा, चले जात मारग बड़ भोरा॥
संकर बड़ी दंडवत कीन्हा, पारवती मन भया मलीना॥
होइ मलीन संकर से पूछी, काहे करो दंडवत छूछी॥
देवल देव मनुष्य नहिं कोई, कीन्ह दंडवत दीख न कोई॥
जब संकर ने बचन उतारा, बड़ी भूमि के भाग अपारा॥
पारवती या भूमि का, क्या कहूँ बरनन भाग॥

दस हजार के बाद यह, संत रहे यहि जाग॥
सुनु हिरदे कहु संत की, महिमा अगम अपार॥
कर प्रनाम वह भूमि को, संकर बारम्बार॥

एक दिन प्रातःकाल शंकर और पार्वती विचरण करते हुए जंगल में से जा रहे थे कि अचानक शंकर ने एक जगह रुक कर वहाँ साष्टांग दंडवत प्रणाम किया। पार्वती यह देखकर उदास हो गई और शंकर से उसने पूछा कि यहाँ पर न तो कोई मंदिर है, न कोई देवता विराजमान हैं और न कोई मनुष्य ही दिखाई देता है, फिर आपने दंडवत प्रणाम किसे किया। यह सुनकर शंकर बोले, सुन पार्वती। यह भूमि महापवित्र और भाग्यशाली है कि दस हज़ार वर्ष पहले यहाँ एक संत विराजते थे। इस भूमि की महिमा का मैं क्या वर्णन करुँ। तुलसी साहब कहते हैं कि हे हिरदे सुन संत की महिमा अगम और अपार है। शंकर ने उस पवित्र भूमि को बार-बार प्रणाम किया।

जब भी जहाँ भी तुम्हें ऐसी भूमि के दर्शन हों, तो उसे बारम्बार प्रणाम करो। संत जहाँ भी जगत में रहते हैं, वह भूमि अति पवित्र होती है। इसका कारण यह है कि वे निर्मल चैतन्य देश के बासी हैं, उनकी देह में चैतन्यता भरपूर रहती है। वे जहाँ भी रहते हैं, वह जगह भी चैतन्यमय हो जाती है और वह जगह पूज्यनीय है। इसलिये कहा है कि

"संत चरन अठशठ से उत्तम, भूमि पवित्र जहाँ पग धरते॥"

तुलसीदास उबाच

॥ दोहा॥

तुलसी हिये हुलसी लखो, हिरदे हरख बयान।
जानि जन्म नर तन यही, कही सब संत बखान॥
नर तन में निरनैं लखे, रखे सुरति समझाय।
चाह रखे नहिं अंत की, सतगुरु सब्द समाय॥
नर तन दुरलभ ना मिले, खिले कँवल रस माहिं।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय॥
रतन जतन सागर मही, कही जो निरनै छान।

ब्यान बरन विख्यान सब, बूझे बचन प्रमान॥
हिरदे से तुलसी कहे, रहे अगम के पार।
जो निरधार संतन कही, सो सतगुरु पद सार॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मुझे अपने भक्त हिरदे को रचना का भेद, उबार की जुक्ति, संत सरन व सतसंग महिमा इत्यादि बातें बताने में बहुत ही आनन्द आया क्योंकि संतों ने यह कहा है कि नर तन में ही जीव मालिक से मिल सकता है। अतः नर तन में ही निर्णय करके सुरत के बारे में जाना जा सकता है यथा सुरत यानी जीवात्मा या रुह सत्तपुरुष राधास्वामी (कुल्ल मालिक) की अंश है। इसी शक्ति को छांटकर उसके असली भंडार की ओर उसका रुख करना चाहिए, तभी मालिक से मिलन हो सकता है।

रखे सुरति समझाय से यही तात्पर्य है। मृत्यु की चिन्ता हमें नहीं होनी चाहिए बल्कि चिन्ता यह होनी चाहिए कि हमारी सुरत (तवज्जह) सतगुरु के बताये हुए शब्द में समावे।

तुलसी साहब कहते हैं कि नर तन मिलना दुर्लभ है। तुम्हें नर तन बड़े सौभाग्य से मिला है अतः संतों का संग, साध संग एवं सतसंग करके अमर आनंद को प्राप्त हो जाओ और अपने आदि धाम में बासा पाओगे।

मैंने इस रतनसागर पुस्तक में जो भी बातें कही है वे सब प्रामाणिक बातें हैं सत्य बाते हैं। जो भी जीव इन बातों (बचनों) को समझ बूझ कर पढ़ेंगे वे उन्हें ग्रहण करके करनी करेंगे, वे निश्चय ही अगम देश में सत सतगुरु की कृपा से पहुँचेगे। यह संतों की बात है जो कि अकाटय है।

॥ दोहा॥

संत मता दुरलभ कहैं, सतसंग में गोहराय।
बड़े बड़े हारे सभी, संतन की गति गाय॥

तुलसी साहब ने अपने सतसंग में खुले रुप से घोषणा की और यह कहा कि संत मत बड़ा दुर्लभ है जिस जीव को भी इस मत की प्रतीत आई वह जीव बड़भागी है। उसे अपना भाग्य सराहना चाहिए कि मालिक ने दया से उन्हें अपनी सरन में ले लिया है। बड़े बड़े ऋषि, मुनि, देवी, देवता उनकी गति नहीं गा सके वे सब हार गये।

संत मत को दुर्लभ इसलिए कहा है कि यह मत पिंड देश और ब्रह्माण्ड देश के परे निर्मल चैतन्य देश-दयाल का भेद बतलाता है। दयाल देश के बारे में न तो पैगम्बर साहिब को मालूम था और न व्यास व वसिष्ठ को मालूम था। उन्हें केवल ब्रह्माण्ड तक का भेद मालूम था और उसी को उन्होंने दृढ़ाया। इसी कारण से जीव ब्रह्माण्ड तक की ही बात को कबूल करता है, उसके आगे की बात पर विश्वास नहीं करता है। विश्वास वही करता है जिस पर धुर की दया है। इस तरह के जीव मिलना दुर्लभ है।

॥ दोहा ॥

नर देही दुर्लभ कहें, मिलै न बारम्बार।
धार बड़ी भवसिन्धु की, क्योंकर उतरे पार ॥

मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनि भुगत कर मिलता है। यदि नर तन में आकर नाम की कमाई करके मालिक को प्राप्त नहीं किया तो यह जन्म अकारण गया। फिर मालूम नहीं मनुष्य जन्म मिले कि नहीं। इसलिए नर देही को दुर्लभ कहा गया है। करोड़ों करोड़ों जन्म के पुण्य से नर देही मिलती है। यह देह बार बार नहीं मिलती है। इस संसार के बंधनों से छूटना मुश्किल है। इसी चोले में नीचे से ऊपर तक के कुल चक्र कंवल और पदम रवाँ होकर जगाये जा सकते हैं। छठे चक्र पर नाभ की गाज सुनी जा सकती है। अमृत की धार तो ऊपर से आ रही है और विष की धार नीचे से आ रही है। नीचे की धार को पकड़ेगा तो विषय वासना में बहकर नीचे उतरता चला जायेगा यही भवसिंधु की धार है। यदि अमृत की धार को पकड़ कर चढ़ेगा तो अमर पद में पहुँच कर अमर हो जायेगा।

(संत देश)

तुलसीदास उबाच

॥ चौपाई ॥

जहँ नहिं पृथ्वी पवन अकासा। पाँच तत्त मारग नहिं स्वासा ॥
चाँद सुरज तारागन नाहीं। जोगी ब्रह्म बिस्नु न जाई ॥

दस अवतार राह नहिं जानी। निरंकार नाहिं निर्बानी॥
ज़ोति सरुप न पहुँचे भाई। नहिं ओंकार अकार न जाई॥
पारब्रह्म जो कहिये ऐसा। जाके आगे सतगुरु देसा॥
जाके पर संत अस्थाना। उनका देस उनहिं पहिचाने॥
हे हिरदे यह अकथ विलासा। उनकी गति उनही परकासा॥
यहि रे अपूरब को को जाने। वेद नेत कहि संत बखाने॥
जहँ नहिं साखी सब्द न बानी। यह अदेख गति किनहुँ न जानी॥
वे करि दया देइँ दरसाई। उनकी मेहर बिना नहिं पाई॥
देखन में नहिं नजरे आवे। हिये दृग नैन खुले जब पावे॥
सो अंजन है उनके पासा। दया बिना और झूँठी आसा॥
वे पल माहिं दया दरसावें। कृपावंत संत को पावें॥
केइ मूरख पचि मुए अनेका। उनकी मेहर मिले नहिं ठेका॥

मेरे मालिक के संत देश में पृथ्वी, वायु, आकाश, पाँच तत्व, चाँद, सूरज, तारागन इत्यादि नहीं हैं, वहाँ केवल संतों के भक्त ही पहुँच सकते हैं। योगी, ज्ञानी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि नहीं जा सकते हैं। दस अवतार, निरंकार, निर्वाणी, ज्योति स्वरुप, ओंकार पुरुष पारब्रह्म इत्यादि कोई भी वहाँ नहीं पहुँच सकते हैं। क्योंकि इनके देशों की रचना के ये ही मालिक हैं और इन्हें यही काम सौंपा गया है, और उसमें वे मगन हैं। इन सब देशों के आगे संतों का देश है।

अपने शिष्य हिरदे से तुलसी साहब कहते हैं कि हे हिरदे! ये सब अपने देशों के प्रकाश से प्रकाशमान हैं और जो उनकी गति है अर्थात् अपने देश में ही रहेंगे। वेदों के रचयिताओं को भी संतों के देश के बारे में नहीं मालूम है उन्होंने भी "नेति नेति" कह दिया अर्थात् इसके आगे भी कुछ है परन्तु वह नहीं मालूम है। संतों के देश के बारे में केवल संतों को ही मालूम है। वहाँ पर साखी व शब्द अर्थात् भाषा का ज्ञान नहीं है न ही वाणी है।

प्रश्न उठता है जब संतों के देश में कुछ नहीं है तो है क्या? इस प्रश्न का उत्तर राधास्वामी मत स्वामीबाग आगरा के चर्तुथ आचार्य परम पुरुष पूरन धनी

बाबूजी महाराज ने दिया है। उन्होंने कहा-"कुछ नहीं, कुछ नहीं, था सो।" उसका यह मतलब है कि न तो पिंड की रचना थी, न ब्रह्माण्ड की, और न दयाल देश की। जो था "सो" था। उन मुन सुन विस्माधि अवस्था में यानी अपने में आप समाया हुआ, गहरी से गहरी समाधि की अवस्था में था। "हैरत, हैरत, हैरत होई, हैरत रुप धरा इक सोई" पिंड ब्रह्माण्ड और दयाल देश नहीं रचे गये थे। सब मालिक के चरनों में समाये हुए थे। हैरत अंगेज वह आये और उसने हैरत अंगेज रुप धारण किया। सुरत भी वहाँ पर उनके दर्शनों में मगन रहती है।

ऊपर जो वर्णन किया है किसी ने भी नहीं देखा है, हाँ जिन पर उनकी मेहर रही, उनको उन्होंने अपनी गति अपने लोक में बुलाकर दिखलाई। इन आँखों से उस मालिक को नहीं देखा जा सकता है जब अंतर की आँखें खुले तब उनके दिव्य दर्शनों का आनन्द जीव ले सकता है। जिस तरह आँखों में अंजन या काजल लगाने से देखने की शक्ति बढ़ जाती है, उसी तरह अंतर की आँखों में मालिक का जलवा देखने की शक्ति तब आवेगी जब कि वक्त के संत सतगुरु, जीव की भक्ति व प्रेम देख कर उस पर दया करेंगे। अन्यथा जीव की आशा झूठी है।

अनगिनत जीव जिन्होंने कि संत सतगुरु की मेहर को अपने सन्मुख रखे बिना, करनी की उन्हें संतों के देश की प्राप्ति नहीं हुई और उन्हें अनेकों जन्म बार-बार लेना पड़ा। जब वक्त के संत सतगुरु अपने भक्त पर दया व कृपा करते हैं तो पल भर में वह जीव मालिक के देश में पहुँच जाता है और उनके दर्शनों का आनन्द लेता है और अपना जन्म सुफल कर लेता है।

"दया मेहर करनी करवाई, करनी कर बहु मेहर बढ़ाई।"

जन्म मरन की पीड़ा

१४९

॥ चौपाई ॥

जैसे नाव नदी के पारी, केवट वा को देत उतारी॥
जैसे जहाज समुन्दर माहीं, वार पार सहजै उतराई॥

सतगुरु केवट मिलें दयाला, रोके न काल जबर जम जाला॥
मन होय लीन दीनता पावे, मर जीवा मोती ले आवे॥
पैठे माहिं समुन्दर केरे, जो सतगुरु चरनन को हेरे॥
जाने जोई सन्त गति प्रीती, हिरदय में नहिं रहे अनीती॥
सुरति सिरोमन चरन लगावे, जब सन्तन की गति को पावै॥
जैसे बनिज करे बैपारी, मूर रहे पर नफा बिचारी॥

जिस तरह नाव में बैठे हुए लोगों को मल्लाह नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे उतार देता है, जैसे समुद्र का जहाज उसमें बैठे हुए यात्रियों को इस पार से उस पार उतार देता है, उसी तरह इस संसार रुपी भवसागर से, केवट रुपी संत सतगुरु जो कि दयाल पुरुष हैं, मनुष्य को जन्म मरण से छुटकारा दिलाकर अपने देश में बासा देते हैं। जीवों को काल नहीं रोक सकता है।

परन्तु शर्त यह है कि जीव दीन अधीन होवे और उनसे प्रीति प्रतीत करे। यह बात उसी तरह से है कि जिस तरह समुद्र में डुबकी लगाने वाले गोताखोर समुद्र से मोती निकाल लाते हैं। संतों की गति अपरम्पार है। जिस सुरत में उनकी गति के बारे में प्रेम भाव है, और उस सुरत ने प्रण धारण कर लिया है कि वह अपना उद्धार करना चाहती है, तो संत सतगुरु दया से उसको अपने चरनों में लगाते हैं, अर्थात् उसे प्रेम की बख्शिश देते हैं, उस प्रेम के द्वारा वह सुरत, संतों की गति को पहिचान जाती है, और संत उसे अपना लेते हैं, और अपने ही जैसा बना लेते हैं। जैसे पारस पत्थर लोहे को पारस कर लेते हैं। संत कर ले आप समान।

संतों ने अपने को सौदागर कहा है या व्यापारी कहा है व्यापारी व्यापार करता है इस दृष्टि से उसकी जमा पूंजी जो व्यापार में लगाई है वह वैसी की वैसी ही बनी रहे और जो लाभ होता है वह बढ़ता रहे। जीव सौदा खरीदने वाला है। सौदा खरीदना अर्थात् अपना उद्धार करवाना है। सौदा बेचने वाले संत सतगुरु हैं अर्थात् उद्धार करते हैं। उन्होंने कहा है कि "सौदा पूरा मिले होय नहीं तेरी हानि" अर्थात् तुम्हारा (जीवों का) उद्धार मैं अवश्य करुँगा।

सतसंग

॥ दोहा ॥

की अपनी करनी करे, की गुरु सरन उबार।
दोनों में कोह एक नहिं, नाहक फिरत लबार ॥

मालिक को प्राप्त करने के दो ही रास्ते हैं। पहला यह है कि पूर्ण निष्ठा व समौटी के साथ दृढ़ विश्वास से मालिक ने जो करनी (सुमिरन, ध्यान, भजन) बताई है वह करके मालिक को प्राप्त करे, या मालिक की सरन दीनता पूर्वक ग्रहण कर अपना काम उनसे बनवावे। संतों ने कहा है कि "दीन गरीबी मत इस जुग का और गुरु भक्ति का परमान।"

यदि जीव में उपुर्यक्त दोनों में से एक भी बात नहीं है, तो वह बेकार है अर्थात् जन्म मरन के चक्कर में घूमता फिरता रहेगा।

संतों की महिमा अपरम्पार

॥ चौपाई ॥

वे हैं सत्त पुरुष अविनासी, हैं सतगुरु पूरन पद बासी ॥
दृष्टि देह देखन में नाहीं, हैं अदृष्ट गति अगम अथाही ॥
उनकी गति सूछम समझाऊँ, हैं अरूप रूप नहिं नाऊँ ॥
सूरज तेज बड़ा जग माहीं, उनसे अधिक तेज कोई नाहीं ॥
कोटि सूर इक रोम लजावे, संतन की महिमा अस गावे ॥
और कहाँ लगि बरनि बताऊँ, थोड़ी कहन माहिं समझाऊँ ॥
कोटि सूर इक रोम कहाई, ऐसे रोम करोड़न भाई ॥
कहँ लग हिरदे बरनि बताऊँ, यह सुनु सौदा अगम अथाऊँ ॥

संतों की गति अगम अतोल है। वे सतपुरुष हैं व सत्तपद सत्तलोक जो कि परम पद है के रहने वाले हैं वे अविनाशी पुरुष हैं, उनका कोई रूप नहीं है वे अरूप हैं, वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं, उनके रूप को इस देह की आँखों से नहीं देखा जा सकता है। संतों के बताये हुए अभ्यासों के करने से जब अंतर की आँख खुले, और तन मन से न्यारे होकर सुरत का लखाव हो, तब सुरत की दृष्टि से

उनके रूप को देखा जा सकता है। संतों ने कहा है "सुख रूप अति अचरजी वर्णन किया न जाय, देह रुप मिथ्या तजा......।

उनका रूप प्रकाश रूप है और सुरत का भी रूप प्रकाश रूप है। सत्तपुरुष के तेज (प्रकाश) से कोई तेज (प्रकाश) बड़ा नहीं है। इस पृथ्वी पर सूर्य का ही तेज सबसे बड़ा जाना जाता है जबकि इस प्रकाश की उस प्रकाश के आगे कोई हैसियत नहीं है। उनके एक रोम का इतना प्रकाश है कि करोड़ों सूर्य उसके आगे शर्मिंदा हैं। इतनी अगम अगाध महिमा संतों की है। जबकि एक रोम की यह सिफ़त है तो करोड़ों रोमों की सिफ़त तो अवर्णनीय होगी। उनकी महिमा को तो मैंने बहुत थोड़े में बयान किया है, उनके बारे में यदि और ज्यादा बताया जावे तो समझ में ही नहीं आ सकता है क्योंकि यह तो अगम का सौदा है अर्थात् जब हमारी ऊपर के घाट की बुद्धि जागेगी, तब ही उनके रुप को देख सकते हैं। अर्थात् Three Dimension तीन बसअत के परे Fourth Dimension चौथी बसअत का हमें ज्ञान हो।

॥ दोहा ॥

सूरज बसे अकास में, किरनि भूमि पर बास।
जो अकास उलटे चढ़े, सो सतगुरु के दास॥
अललपच्छ का अंड ज्यों, उलटि चले अस्मान।
त्यों सूरति सत सजन की, आठ पहर गुर ध्यान॥

सूर्य का स्थान तो आकाश में है परन्तु उसका प्रकाश इस पृथ्वी लोक पर पड़ता है, उसी प्रकाश के कारण इस पृथ्वी पर जीवन है। इसी प्रकार मालिक का बास तो ऊपर के लोक में है। यदि हम मालिक से मिलना चाहते हैं तो हमें सर्वप्रथम सतगुरु का दास बनना पड़ेगा अर्थात् अपनी सुरत को आकाश में चढ़ाना व चलाना पड़ेगा। आकाश में चढ़ाई गुरु स्वरुप के ध्यान व शब्द के श्रवण द्वारा होगी। अललपच्छ या सारदूल जो आकाश में इतने ऊँचे पर अण्डा देता है कि उसके पृथ्वी पर पहुँचने के पहले फट कर बच्चा उड़ जाता है। उसी तरह से ऊँचे दरजे के अभ्यासी की सुरत गुरु स्वरुप के आठों पहर ध्यान करने से हमेशा आकाश में यानी ऊपर के लोकों में रहती है, अर्थात् उसका मालिक से हमेशा मेला बना रहता है।

॥ दोहा ॥

मुक्ति जो पूछे मुक्ति को, मेरी मुक्ति बताय।
जो घट चीन्हे आपने, मुक्ति मुक्ति होइ जाइ ॥

मुक्ति, मुक्ति से पूछती है कि मुझे मेरी मुक्ति बताओ? इस प्रश्न के उत्तर में मुक्ति उत्तर देती है कि जिसने कि अपने घट को जान लिया, अर्थात् अपने आप को पहचान लिया "आपहि आप पहिचान" उसने ही मुक्ति को जान लिया, और उसकी मुक्ति हो गई अर्थात् जन्म मरन के चक्कर से बच गया। सुरत मालिक की अंश है वह अपने अंशी में समा गई। इसका रूप और मालिक का रूप एक हो गया। यही असली मुक्ति है।

॥ दोहा ॥

सुरति सब्द के भेद बिन, होय न पूरन काम।
चमर चाम की दृष्टि में, तन मन तिमिर समान ॥

संतों ने उद्धार का रास्ता "सुरत शब्द योग" द्वारा बताया है। इसीलिए तुलसी साहब ने कहा कि बिना सुरत शब्द के भेद को जाने, जीव का पूरन काम अर्थात् उद्धार या मुक्ति नहीं हो सकती है। इस चमड़ी की देह में अंधकार ही अंधकार है। इस तन मन से अलग एक जौहर है जिसे सुरत कहते हैं। सुरत वह जौहर है जो अपने में आप रत और मगन है। वह शब्द की अंश है। वह तवज्जह रूप है। सुरत का लखाव होना चाहिए। और वह सतगुरु के बचन बार-बार सुनने से होगा। सुरत ही शब्द को सुन सकती है।

॥ दोहा ॥

जो सन्मुख रहे संत के, अंत कहूँ नहिं जाय।
सूरति डोरी लौ लगे, जहँ को तहाँ समाय ॥

संतों के सन्मुख रहने से मन विकारों में नहीं बर्तेगा, और वह उनके भाव सहित दर्शन करेगा। भाव सहित दर्शन करने का लाभ यह होगा कि यह अंतर में कमोबेश बाहोश जावेगा, जिसके कारण इसकी चौरासी छूट जावेगी अर्थात् जन्म मरन का चक्कर छूट जावेगा। संतों का आना ऊपर के घाटों से रहता है, इसी कारण से उनके सन्मुख रहने से सुरत की डोर शब्द से लग जाती है और सुरत जहाँ से (अर्थात् दयाल देश) आई थी वहाँ पहुँच जाती है।

॥ दोहा ॥

ज्यों कतार रहे ऊँट की, अगले ऊँट बंधाय।
यों सुरति सतगुरु कहें, सब जिव वही समाय॥

जैसे एक ऊँट के पीछे सब ऊँट एक कतार में चले जाते हैं, उसी तरह से सब जीव जिन्होंने कि मालिक की सरन ली है और उनके कहे अनुसार करनी करते हैं, वे सतगुरु के साथ साथ चलते हैं और जहाँ से जीव आये थे, वहीं वे आसानी से पहुँच जाते हैं अर्थात् उनका मेला मालिक से हो जाता है।

॥ दोहा ॥

कई बरस तप करि मरे, बीते साठ हज़ार।
दोह घड़ी सतसँग से, तुला सेस का भार॥
बिस्वामित्र बसिष्ठ की, भई परस्पर बाद।
उन तप को कीन्हा बड़ा, उन सतसंग अगाध॥

कथा है कि एक बार वशिष्ठ जी विश्वामित्र जी के घर गये तो विश्वामित्र ने उनको अपने साठ हजार वर्ष की तपस्या का आधा फल भेंट किया। कुछ दिन पीछे विश्वामित्र जी वशिष्ठ जी के आश्रम पर गये तो वशिष्ठ जी ने दो घड़ी सतसंग का फल उनको भेंट किया। विश्वामित्र जी ने जिनको अपने तपोबल का बड़ा अहंकार था इस भेंट को अपनी भेंट के मुकाबले में बड़ा तुच्छ समझा और दोनों ऋषीश्वरों में बहस होने लगी कि साठ हजार वर्ष की तपस्या बढ़ कर है या दो घड़ी का सतसंग। अंत में विश्वामित्र न्याय करवाने को शेष नाग के पास गये। शेष नाग ने कहा कि मेरे मस्तक पर सारी पृथ्वी का भार है उसको जरा सम्हाल लो तो निर्णय करुँ। विश्वामित्र ने अपने साठ हजार वर्ष का तपोबल लगाया पर पृथ्वी तनिक न हटी, तब शेषनाग ने पूछा कि कुछ और पूँजी भी है। विश्वामित्र ने बड़ी हेठाई की निगाह से कहा कि हाँ वही दो घड़ी के सतसंग का फल जो वशिष्ठ जी ने दिया है। शेषनाग बोले कि खैर उसको भी लगा कर आज़माकर देखो। ज्यों ही ऋषिजी ने उसको लगाया पृथ्वी दूर हट गई–तब वह बोले कि अब निर्णय करिये, शेषनाग ने जवाब दिया कि अब भी निर्णय करना बाकी है, जब तुमने देख लिया कि वह अपार भार जिसे तुम्हारा

साठ हजार वर्ष का तपोबल रंचक न हटा सका वह दो घड़ी के सतसंग के महात्म से दूर-दूर हट गया। विश्वामित्र लज्जित होकर लौट गये।

॥ दोहा ॥

कलजुग सम नहिं आन जुग, जो नर करे बिस्वास ॥
नाम डोरि गहि भव तरै, जा मन तुलसीदास ॥
कलजुग सम नहिं आन जुग, संत धरें अवतार।
जीव सरन होइ संत के, भवजल उतरै पार ॥

चार युग हैं-सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। ये क्रमानुसार विस्तार, निस्तार, उबार व उद्धार को इंगित करते हैं। कलयुग में जाहिरा बड़ी खराब हालत है और सब सामान उसी तरह के इकट्ठे हो गये हैं और दिन प्रतिदिन विकारी अंगों की वृद्धि हो रही है। इस मानी में कलियुग अभागता का समय ख्याल किया जाता है मगर दूसरे मानी में यह बड़भागता का समय है। सुरत के जागने और कुल्ल मालिक की भक्ति करने का समय है क्योंकि काल के दस अवतार होने के बाद अब संत अवतार का समय है। जो भी जीव यह विश्वास करेंगे कि उनके उद्धार का यही समय है तो वे नाम की डोरी लेकर, एवं संतों की सरन दृढ़तापूर्वक लेने से इस भवसागर से पार हो सकते हैं पर नाम सच्चा ध्वन्यात्मक होना चाहिए। इसके द्वारा धुर पद तक पहुँच सकता है। वर्णात्मक नाम से काम नहीं चलेगा।

॥ दोहा ॥

अंदर की आँखी नहीं, बाहर की गई फूटि।
बिनां सतगुरु औघट बहे, कभी न बंधन छूटि ॥

मालिक का दर्शन करने के लिए पहले तो बाहर की आँखें फूटना जरुरी है। तात्पर्य यह है कि इसे दुनिया न सुहावे, केवल जरुरत मात्र दुनिया में बर्ताव करें, व्यर्थ का पसार व फैलाव न करें, तब ही अंदर की आँखें खुलेंगी और मालिक का दर्शन होगा। अंदर की आँख खुलने से तात्पर्य यह है कि यह मालिक का शब्द जो घट-घट में हो रहा है, वह सुनेगा और प्रकाश की धार को

अपनी अंतर की आँखों से देखेगा। यह सब तभी सम्भव है जबकि यह वक्त के संत सतगुरु की सरन लेगा। तब ही इसके दुनिया के बंधन छूट जावेंगे और प्रकृतियाँ बाहर बहने की बजाय अंतर में बहेगी। उनका रुख अंदर की ओर हो जावेगा और मालिक का जलवा व नूर दिखेगा।

अविनाशी का निरुपन

॥ दोहा ॥

सूरज ब्रह्म अकास में, भास भूमि परकास।
किरन जीव यहि आत्मा, सब घट कीन्हो बास॥

सूर्य ब्रह्म तो आकाश में है परन्तु उसका भास इस पृथ्वी पर पड़ता है जिसके कारण यह प्रकाशित है और उसी के कारण यहाँ जीवन है। उसी तरह जीवात्मा अर्थात् सुरत की किरन यह आत्मा है जिसका कि वास हर एक घट में है और यहाँ के प्रत्येक कार्य यह आत्मा करती है।

॥ दोहा ॥

दस इंद्री रस भोग से, भूले मूल मुकाम।
सदा रहे भव चक्र में, उलटि न बूझे धाम॥

जीव का मूल को भूल जाना और भोगों में आसक्त होना ही उसकी अभागता है। जब से जीव इस भवसागर में आया है तब से ही यह अपने मूल मुकाम आदि धाम को भूल गया है, और इसको अपने घर की सुधि बिल्कुल नहीं रही। इसका कारण यह है कि जीव दस इन्द्रियों का रस लेने लगा और उसमें ग्रसित हो गया। संत सतगुरु ने आकर चेताया है कि यह तेरा असली घर नहीं है, फिर भी नहीं चेतता है।

(कदमअली वाच)

॥ गज़ल ॥

खसखस के दाने के अंदर सहर खुदा का बसता है।
कस्द करे ऐनों के तिल में वही तो उसका रसता है॥

रुह रकाने में ठहारावे सोई मुकर में धसता है।
सैल करे दाने के भीतर सो मुरसिद अलमसता है॥
कहे मझव मासूक की बातें डगर दिलों के बसता है।
बड़ा माल जोरावर घर का किया खरीदी ससता है॥
बाँके बड़े खड़े लड़ने को सोई कमर को कसता है।
बिना मेहर महरम की सोहबत यो क्यों नाहक पचता है॥

कदमअली नाम का फकीर तुलसीदास साहब के पास आया था उसी के द्वारा कही हुई यह गजल है। तुलसी साहब का संग करके जब उसे जो कुछ अंतर की बातें मालूम हुई उसी के बारे में उसने यह कहा है।

मालिक का धाम खसखस के दाने के अन्दर बसता है अर्थात् जब हमारी पहुँच अंत:करण के घाट के परे तीसरे तिल पर हो जावेगी जो कि ब्रह्माण्ड के पहले स्थान का नाका है तब ही हम मालिक के धाम में पहुँच सकते हैं। यही मालिक के दरबार में जाने का रास्ता है। हमारी जीवात्मा अर्थात् सुरत की बैठक जब वहाँ हो जावेगी, तब ही मालिक के धाम के लिए अग्रसर हो सकेंगे। वह अंतर की सैर करके आनंदमय हो जावेगी। जब हमारी अंतर दृष्टि खुल जावेगी तो हमारे हृदय में मालिक का प्रेम बस जावेगा। प्रेम की दौलत हमें मिल जावेगी जो कि बहुत ही सस्ते में अर्थात् बहुत ही आसानी से मिल गई। मालिक से मिलने के लिए हमें शूरवीर बनना पड़ेगा, यह कायर का काम नहीं है क्योंकि यह जीवन पर्यन्त की लड़ाई है और हमें मन से अंत तक लड़ना पड़ेगा। जब मालिक की हम पर मेहर दया होगी और हमें उनका संग मिलेगा तब ही हम उनकी ओर मुख़ातिब होंगे। उनकी मेहर के बिना हमारा प्रयास व्यर्थ रहेगा।

॥ दोहा ॥

चेतन ब्रह्म वैराट यह, आतम तन के माहँ।
तब बाहर खोजत फिरे, जासे लगा न थाह॥

चेतन, ब्रह्म व वैराट व आतम यह सब इसी शरीर के अन्दर हैं, यह बाहर कहीं नहीं है। हमें इन्हें बाहर खोजने नहीं जाना है बल्कि हमें इन्हें अपने अंतर में

खोजना है। हमारे शरीर में तीसरा तिल (जो कि अनोखी शक्ति है) इस शरीर में आँखों के पीछे है। यहीं हमें अपनी बैठक करनी होगी। जब हमारी बैठक वहाँ हो जायेगी तब ही हम मालिक के देश में पहुँच सकेंगे।

॥ दोहा ॥

सुरति चाँप धनुवाँ चढ़े, चढ़े गगन के पार।
ऐनक आँखि लगाय के, देखे बिमल बहार ॥

दोनों आँखों के ऊपर जो मेहराब है उसके मध्य में तीसरा तिल है। यहीं से सुरत गगन के पार जावेगी। पिंगला यही पिंड का नाका है। दोनों आँखों के अंतर के अंतरगत दो धारें इंगला पिंगला जरा ऊपर की ओर धनुष का आकार बनाकर सुखमना धार (मध्य की धार) से मिलती है जो कि धनुष के चाँप के आकार जैसी है, वहाँ अपनी सुरत की बैठक करने से हमारी पैठ गगन में हो जावेगी। और ऊपर के लोकों में जो बिमल बहार है, देखने को मिलेगी। राधास्वामी मत के संस्थापक स्वामीजी महाराज ने कहा-"दो दल मोड़े अजब ठाट से, सुरत हटाई नऊँ हाट से।"

(साध शिरोमनि या संत)

अब सुन कहूँ सिरोमन साधू, उनकी मति गति कहनि अगाधू ॥
उनकी सुरति कँवल पद माहीं, पदम पार बेनी नित न्हाई ॥
मंजन करि करि करते ध्याना, पदम सुरति सतगुरु अस्थाना ॥
पदम कँवल पर आसन लावे, जहँ कोइ साध सूरमा जावे ॥
सुन्न और महासुन्न के पारी, जहँ वह जाय लगावे तारी ॥
सत्तपुरुष के दरसन पावे, तीन लोक के पार कहावे ॥
यह सब संत महात्मा गाये, साली शब्द माहिं दरसाये ॥
जो सब्दन का करे विचारा, जब जिव का पावे निखारा ॥

मैं अब संतों की गति के बारे में बताता हूँ। जो साध शिरोमणि भक्त है वही संत है। उनकी गति अगाध है। वैसे संत उनको कहते हैं जिनकी सुरत सत्तदेश में बे-तकल्लुफ आती जाती हो, चाहे वह वहाँ से आये हों और चाहें अभ्यास करके वहाँ पहुँचे हो। साध उनको कहते हैं जिनकी सुरत को दसमद्वार

में आने जाने की गति प्राप्त हो। महात्मा उसको कहते हैं जिसकी सुरत पिंड (तीसरा तिल) के परे आने जाने लगी हो। प्रेमी भक्त जन वह है जिसकी सुरत गौण अंग में तीसरे तिल के परे जाती हो।

सतसंग की महिमा

तुलसीदास बाच

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे जग का यहि लेखा, बिन सतसंग न होय विवेका ॥
बिन विवेक एक नहिं आवे, एक बिना नहिं दुरमति जावे ॥
दुरमति से दुनिया भई भाई, दुनिया दुरमति कीन्ह बनाई ॥
यह ऐसे बूड़ा संसार, संसय आय बँधा सिर भारा ॥
बिन सतसंग विवेक न आवे, बिन विवेक ज्ञान कहा पावे ॥
बिन ज्ञान बुधि सुधि नहिं होई, बिन बुद्धि बूझे नहिं कोई ॥
बिन सूझे नहिं आँखी सूझा, यो जंग अंध भया अबूझा ॥
बिन सतसंग बूझि नहिं पावे, बिन बूझि नहिं तिमिर नसावे ॥

हे हिरदे! संसार के सारे जीव इस भवसागर में आसा बासा मनसा के कारण फँसे हुए हैं, उनके पास सुबुद्धि नहीं है। दुर्बुद्धि के कारण हमेशा जन्म मरण के चक्कर में फँसे रहते हैं। जब उनमें सुबुद्धि जागृत हो जावें तो उनका जीवन मरण से छुटकारा हो सकता है। सुबुद्धि केवल संतों व साधों का सतसंग करने से आवेगी। सतसंग करने से विवेक जागृत होगा, जब विवेक जागृत होगा तब उन्हें ज्ञान होगा। ज्ञान यह है कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाना है? किसका संग करूँ ताकि जहाँ से मैं आया था वहाँ पहुँच सकूँ। जब उपर्युक्त बातों का उत्तर उसे सतसंग करने बाद मिल जावेगा तो वह संतों की बताई हुई जुक्ति करके मालिक से मेला कर लेगा। सतसंग करने से ही समझ बूझ बदलती है। इसी कारण सतसंग की महिमा है।

राधास्वामी मत के संस्थापक स्वामीजी महाराज ने भी कहा है–

सतसंग जल जो कोई पावे, सब मैलाई कट कट जावे।
सतसंग महिमा कहा बखानूँ, इस सम जतन और नहीं माँनू ॥

सतसंग की जो हाज़िरी देता है उससे मालिक राज़ी होता है और वही परमार्थी लाभ उठाता है। अत: सतसंग बाहरी व अतंरी अवश्य करना चाहिए।

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे सत शब्द लखाऊँ, जोग भेद से भिन समझाऊँ॥
सुन्न माहिं से शब्द जो आवे, सोई शब्द सत पुरुष कहावे॥
चौथा पद बेहद के माहीं, सुन्न शब्द सोइ नाम कहाई॥
ओअं शब्द काल को जानो, सुन में शब्द पुरुष पहिचानो॥
शब्द शब्द का भेद नियारा, सो कहि भाखि बरनि निरवारा॥

हे हिरदे! मैं तुझे सत्तशब्द का भेद बताता हूँ जो कि ब्रह्म शब्द यानी प्रणव व ओंकार के शब्द से जो योग शास्त्रों में वर्णित है मित्र है। प्रणव का शब्द ओम शब्द है जिससे सूक्ष्म यानी ब्रह्माडी वेद और ईश्वर प्रकट हुए हैं। यह अनहद शब्द है।

सुन्न माहिं से जो शब्द आवे का तात्पर्य है कि सबके आदि कुल्ल मालिक राधास्वामी हैं यहाँ शब्द बिल्कुल गुप्त है व इसका नमूना इस रचना में कहीं नहीं है इसी शब्द से सत्तपुरुष प्रकट हुए। सत्तदेश का शब्द सत्तपुरुष का शब्द है। इसे सत्तनाम और सत्तपद भी कहते है, यह चौथा पद है और इसी शब्द से सोहंग पुरुष और परब्रह्म और माया प्रकट हुए। तुलसी साहब कहते हैं कि शब्द शब्द का भेद न्यारा है यद्यपि उन्होंने उन शब्दों का वर्णन नहीं किया है। संक्षेप में वे शब्द ये है। (१) सत्तपुरुष का पद। (२) सोंह पुरुष का शब्द।(३) पार ब्रह्म का शब्द जिसकी मदद से तीन लोक की रचना ठहरी हुई है। (४) ब्रह्म शब्द यानी प्रणव (ओंकार)। (५) माया व ब्रह्म का शब्द जिससे त्रिलोकी की रचना का मसाला और आकाशी वेद प्रकट हुए। (सहसदलकँवल के धनी को ईश्वर कहते हैं।) (६) माया शब्द के नीचे वैराट पुरुष का शब्द और जीव और मन के शब्द प्रकट हुए। पातंजल शास्त्र में पातंजलि ऋषि ने शब्दों का वर्णन किया है परन्तु सत्तशब्द का नहीं।

मंजिलों का भेद

अब सुन मँजिल माल दरसाऊँ, संधि माहिं परबंध लखाऊँ ॥
पदम सुरति तिरबेनी घाटा, जहँ होइ जाय संत की बाटा ॥
आठ महल अंदर के माहीं, संत बिलास करें वोहि ठाँई ॥

॥ दोहा ॥

सत्त लोक सतपुरुष का, करे सुरति से ध्यान।
सात गगन ऊपर चढ़े, जहँ सतगुरु अस्थान ॥

॥ चौपाई ॥

सत्त पुरुष सोइ सतगुरु गाया, जीव अंस सब वहाँ से आया ॥
तीन लोक निरगुन का घाटा, उन सब रोंकि जीव की बाटा ॥

मैं तुम्हें संतों के देश "कुल्ल मालिक राधास्वामी" के राधास्वामी धाम में पहुँचने के दौरान जो भी देश या स्थान पड़ेंगे उनका भेद बताता हूँ। संतों का देश "सात गगन" के ऊपर है, जहाँ वे बिलास करते हैं अर्थात् धाम में मगन हैं। पलटू साहब ने भी यही बात कही है उनके शब्दों का पद यह है "सात महल के बाद अँठये उजियाला।" पिछले संतों ने "राधास्वामी नाम" खुलकर नहीं बताया केवल इशारे में बताया है। संतों के देश में जाने का रास्ता अंतर में है, अंतर में ही चलना है और वह भी शब्द के द्वारा। रास्ता तीसरे तिल के पार सहसदल कँवल से होकर है। इस शब्द में सात गगनों का जिकर नहीं है। केवल कहा है वैसे सात गगन या मुकाम या मंजिल यह हैं। १।

(१) सहसदलकँवल (२) त्रिकुटी (३) सुन्न (४) भंवरगुफा (५) सत्तलोक (६) अलखलोक (७) अगम लोक (८) राधास्वामी धाम जो कि आदि, अनन्त, अपार और अनाम है। कुल्ल मालिक राधास्वामी के धाम में हम तब ही पहुँच पायेंगे जबकि हम अपनी सुरत से वक्त के संत सतगुरु का ध्यान करेंगे या उनके नाम का सुमिरन करेंगे। मालिक के देश में जाने से जीवों को काल रोकता है। जीव सत्त देश से आया था और उसे वहाँ ही लौटना है। वह संत सतगुरु की मदद से अपने देश में लौट सकता है।

॥ दोहा ॥

नैन स्याम और सेत के, मद्ध सुरत की लाग।
जो जैसे सतगुरु मिले, तैसे तिन के भाग॥

जिसका जैसा भाग्य है, उसी भाग्य के अनुसार उसे वैसे सतगुरु मिल जाते हैं।

जहाँ तक जिस सतगुरु की गति है अर्थात् जहाँ तक उनके आने जाने की शक्ति है। वहाँ तक ही वे अपने शिष्य को भी पहुँचा सकते हैं। यदि सतगुरु की गति स्याम अर्थात् सहसदलकँवल तक है तो शिष्य को वहाँ तक पहुँचा सकते हैं, यदि सतगुरु की गति सेत पद अर्थात् सुन्न या दसवाँ द्वार जो कि ब्रह्माण्ड का सबसे ऊँचा मण्डल है तक तो शिष्य को वहाँ तक पहुँचा सकते हैं।

जन्म मरन की पीड़ा

॥ चौपाई ॥

जन्मत बालपना दुखदाई, सुधि बुधि धान समझ नहिं पाई॥
तरुन रहे तरुनी सँग भोगा, वृद्ध भये तब बाढ़े रोगा॥
ऐसे यह तीनों पन बीता, नेक न जानी साहब रीता॥
अब मरने का सुना सँदेसा, प्रान गये पर किया अँदेसा॥
अब क्या होवे बात बिचारे, नर बाजी जूवा में हारे॥
घर बाहर से काढ़े डेरा, फिर नहिं आन किया नर फेरा॥
कर्म जोग योनी भरमाये, कर्म किया सोई फल पाये॥
जब नहिं चेते मूढ़ गँवारा, बिगरै पै क्या करे बिचारा॥

जन्म लेते ही जीव को बाल्यावस्था का दुख भोगना पड़ा जबकि उसे कोई होश व हवाश नहीं रहता है, जब युवावस्था आई तो स्त्री के संग दुख सुख भोगा, जब बुढ़ापा आया तो तन में विभिन्न प्रकार के रोग हो गये, जिसके कारण दुख्र में ही दिन बीतते हैं। इस तरह तीनों अवस्थाएं बीत गईं परन्तु कुल्ल मालिक के बारे में बिल्कुल ही नहीं जाना, और अब मृत्यु के दिन नज़दीक

आने लगे, मालूम नहीं कब मृत्यु हो जावे। परन्तु अब क्या किया जा सकता है। नर तन दुर्लभ है बड़ी मुश्किल से मिला था जिसमें कि मालिक से मिलने का जतन किया जा सकता था। जतन करने से मालिक अवश्य मिलता परन्तु यह नर तन बेकार गया। अब मालूम नहीं कि नर देही मिलेगी या नहीं, जीती बाजी उसने हार दी। जब मृत्यु हो गई तो इस नश्वर शरीर को घर के बाहर निकाल दिया गया। दोबारा नर तन नहीं मिला। जैसे भी कर्म इस देही में किये थे उसी कर्मानुसार फल मिला अर्थात् नीच ऊँच योनियाँ फिर से भरमाया। यह जीव मूढ़ व गवाँर है जब चेत कर होश से संत सतगुरु को खोजकर सतसंग करना था तब तो किया नहीं जब काम बिगड़ गया अर्थात् अंत समय आ गया तो उस समय विचार करने से कुछ काम नहीं बना।

॥ दोहा ॥

अब समझे से का भयो, चिड़िया चुग गइ खेत।
चेत किया नहिं आप में, रहे कुटुम्ब के हेत॥

अब समझने से क्या होगा जब चिड़िया खेत चुग गई अर्थात् जब सब कुछ खत्म हो गया यानी कुछ नहीं किया जा सकता है। जबकि अपना काम बनाना था अर्थात् संत सतगुरु का संग, उनकी भक्ति, उनके द्वारा बताई गई जुक्ति का पालन करता तो मालिक से मेला हो सकता था, तब किया नहीं। जब काम बनाने का समय था तो उस समय कुटुम्ब परिवार के संग लिपटा रहा।

॥ चौपाई ॥

जैसे पुत्र सर्राफ सिखावे, कौड़ी से पैसा परखावे॥
ज्यों गुड़ियाँ लड़की लौ लावें, साँच पिया मिलने को चावें॥
साँचे पिया मिले नहिं भाई, झूठे काल दीन्ह उरझाई॥
पिय तजि के दधि बेचन आई, जब से गुजरी नाम कहाई॥
जब गोपाल गौ पालन लागे, रस दधि बोल बिकन तब लागे॥
मन गोविन्द गौ इन्द्री माहीं, नाद बिन्द दधि बेचन आई॥
सो बिंद ने बिंदावन कीन्हा, तन बैराट समझि जिन लीन्हा॥
यह कोई भेदी भेद बतावे, जब रचना की विधि को पावे॥

इस संसार सागर में जब जीव आता है तो उसे जीवन यापन करने के लिए शिक्षाएं दी जाती है ताकि वह अपना कार्य सुचारु रुप से यहाँ चला सके। तुलसी साहब कहते हैं कि जिस तरह स्वर्णकार अपने पुत्र को पहले कौड़ियों से पैसा परखना सिखाता है, अर्थात वह अपने पुत्र को कौड़ियों को सहेज कर रखना सिखाता है ताकि वह पैसे को भी सहेज कर रखना सीख ले, जैसे लड़कियाँ गुड्डा व गुड़िया का ब्याह रचा कर खेल करती हैं। यद्यपि वे खेल करती हैं, परन्तु वास्तव में उनके अन्तर में पति से मिलने की चाह रहती है जो कि प्रौढ़ावस्था आने पर पूरी हो जाती है।

तुलसी साहब कहते हैं कि उन लड़कियों को काल ने बहका दिया जो पति उन्हें मिला वह झूठा है। सच्चा पिया यानी सच्चा मालिक तो उन्हें मिला नहीं। उन लड़कियों की संज्ञा उन्होंने "गूजरी" लड़की से की है जो अपने पति को छोड़कर दूध दही बेचने जाती है। गूजरी का मतलब "गुजरी हुई" अर्थात् पतित भी होता है क्योंकि अपने सच्चे मालिक को छोड़कर यहाँ संसार में आकर फँस गई है।

"जब गोपाल गौ पालन लागे, रस दधि मोल बिकन तब लागे" अर्थात् जब सुरत जो कि मालिक के देश से आई थी, गोपाल का संग करके अर्थात् मन का संग करके, गौ यानी कामवासना व इच्छाओं में वरत कर रस लेने लगी तो वह इस संसार में फँस गई।

"नाद बिन्द दधि बेचन आई" अर्थात् कृष्ण यानी मन अपने पिता का घर छोड़कर जो कि आनन्द स्वरुप था नीचे आ गया और संसार के तुच्छ आनन्द में लीन हो गया।

"सो बिंद ने बिंदावन कीन्हा, तन बैराट समझि जिन्ह लीन्हा" "बिन्द से तात्पर्य इस तन से है। जीव ने इस तन व मन के रस को ही सब कुछ समझ लिया इसी को वैराट मान लिया और असली आनन्द जो सुरत में है उसको भूल गया। तुलसी साहब कहते हैं कि आनन्द के देश का पता तो केवल भेदी संत सतगुरु ही दे सकते हैं जिन्होंने इस रचना को अपनी अंतर की आँखों से देखा और समझा है।

॥ दोहा ॥

यों रचना यहि विधि भई, छूटा मूल मुकाम।
स्याम कंज के बीच में, आय रहे निज धाम॥

रचना इस तरह से हुई है कि मालिक ने जीव को अपने देश से नीचे इसलिए भेजा कि यहाँ रहकर जो भी मलीनता उनमें थी, उसको यहाँ बर्तकर साफ़ कर ले और मालिक के देश में निर्मल होकर जावे ताकि वहाँ बा-होश होकर मालिक का दर्शन करें। सुरत अपने मूल मुकाम या आदि धाम को छोड़कर इस श्याम कंज अर्थात् सहसदलकंवल के मालिक की नीचे की रचना में आकर फँस गई है।

मरने के समय सुरत कैसे खिंचती है -संत अपनी शरणागत सुरत की कैसे रक्षा करते हैं

॥ चौपाई ॥

संत जीव की विपति छुड़ावें, कर्मी जीव जक्त कों चावें॥
याको फल चौरासी माहीं, भिन्न भिन्न तोहि कहूँ सुनाई॥
जब जिव निकरि देह दरसाऊँ, वोहि समय की समझ सुनाऊँ॥
निकरि जीव तन छूटे भाई, जब की बातें कहूँ बुझाई॥
सिमटि अकास भास जब जावे, तब नाड़ी में सीत समावे॥
जस रवि अस्त होय अँधियारा, प्रान पती तन धुक धुक धारा॥
जस रवि भास गये उजियासी, धुक धुक प्रान बसे तन बासी॥
निकसे स्वाँस भासकृन प्राना, येरे सिमटि कहो कहाँ समाना॥
जो वो ठाँव जौन से ठाई, दसवाँ द्वार ब्रह्म के माहीं॥
सूरज ब्रह्म द्वार दस माहीं, उनसे किरन अंड में आई॥
किरन पाँचतत प्रान कहाया, ततमिलि पाँच अकास जगाया॥
आतम सब में भास अकासा, सोई भास किया तन बासा॥
मारग भास जोई मग आया, तरक तालुवे राह समाया॥
ज्यों प्रतिबिंब पड़े जल जाई, ऐसे भास नाभ के माहीं॥

नाभ तेज तन माहिं समाना, रोमहि रोम बदन में जाना॥
भास तेज चेतन भइ काया, यह भीतर में बरनि बताया॥
जिन घट सैल करी काया की, भीतर भेद कहै जोइ भाखी॥
ऊपर की कहनी नहिं मानूँ, अंदर उदय होय घट भानू॥

॥ दोहा ॥

अंदर भानु उदै बिना, भीतर की का कहेन।
बैन बचन झूँठे कहे, बिन अंदर नहि ऐन॥

तुलसी साहब कहते हैं कि संत जीव को इस संसार की विपत्ति से छुड़ाते हैं अर्थात् उसका आवागमन छुड़ा देते हैं, परन्तु शर्त यह है कि वह उनकी सरन गहे। जो जीव उनकी सरन ग्रहण नहीं करते हैं वे अपने कर्मों के अनुसार बारम्बार इस संसार में देह रख कर आते हैं।

जब जीव इस देह को त्यागता है उस समय की बात मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जब देह का भास/तेज सिमट कर आकाश को जाता है तब उसकी नाड़ी ठंडी पड़ जाती है, शरीर में जो गर्मी रहती है वह खत्म हो जाती है। देह में कुछ नहीं रह जाता है वह चैतन्य हीन हो जाता है। उसके तन में स्वाँस जो धुक-धुक करती रहती थी वह बंद हो जाती है। यह उसी प्रकार है कि जिस तरह जब सूर्य अस्त होता है तो जो प्रकाश रहता है वह अंधकार में बदल जाता है। प्रश्न उठता है कि जो स्वाँस रुपी किरन देह में रहती है वह सिमटकर कहाँ चली जाती है? तुलसी साहब इसका उत्तर देते हैं कि वह दसवें द्वार अर्थात् सुन्न देश से आई थी और वहीं वापिस चली गई। सुन्न देश को सूरज ब्रह्म भी कहते हैं उससे इस देह की चैतन्य सुरत अंड में आई है। इसी चैतन्य किरन को पँच तत्वों का प्रयास कहा गया है, इन्हीं तत्वों को पाँच आकाश कहा गया है। पाँच तत्व पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, जल हैं ये पाँच तत्त्व चैतन्य किरण के आश्रित हैं। जब चैतन्य किरण देह में रहती है तो ये पाँच तत्त्व उसके ताबेदारी में रहते और उसके बढ़ाव व पालन पोषण में मदद करते हैं। जब चैतन्य किरण देह से निकल जाती है, तो ये आपस में रल मिलकर बिगड़ जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं। चैतन्य किरण का भास सिर से तलुवे तक फैला रहता है। जिस तरह पानी पर किसी चीज की परछाई पड़ती है उसी तरह चैतन्य दिशा की परछाई नाभि

पर है जिसके द्वारा देह का पालन पोषण होता है। जिसके कारण वह सारे रोमों में शक्ति देता है। चैतन्य किरण के भास से ही देह कायम रहती है। ऊपर जो कुछ कहा गया है वह उन्हीं के द्वारा बताया गया है, जिन्होंने अंतर अभ्यास द्वारा घट में सैर करी है। जिन्होंने घट की सैर नहीं करी है वे इसके बारे में नहीं बता सकते।

सतगुरु संत सरन जो आया, जिनका आवागमन नसाया।
सुरति डोर सतगुरु में लाये, सो जिव आदि अन्त पद पाये॥

जो भी जीव संत सतगुरु की सरन में आये, और जिन्होंने अपनी सुरत को संत सतगुरु द्वारा बताये हुए अभ्यास "सुरत शब्द योग" के द्वारा शब्द में लगा दी, वही जीव अपने आदि घर जहाँ से कि वे आये थे, पहुँचे।

॥ दोहा ॥

सतगुरु संत दयाल बिन, सब जिव काल चबाय।
बांधि करम के बस रखे, सके न सूरति पाय॥

काल सब जीवों को अपने वश में रखता है, किसी भी जीव को दयाल देश में नहीं जाने देता है। सभी जीव करमों के बस में होकर बारम्बार इस संसार में आते जाते रहते हैं। परन्तु जिस जीव ने वक्त के संत सतगुरु की सरन ली है उनको काल नहीं रोक सकता है वे संत सतगुरु की दया से कर्म की रेख पर मेख मार कर दयाल देश में चले जावेंगे।

॥ चौपाई ॥

बिना सुरति नहिं लगे ठिकाना, सतगुरु संत बिना भरमाना॥
भेष संत नहिं बूझों भाई, संतन की गति अगम अथाही॥
जो वे मिलें जीव निरबारा, बिन उनके चौरासी धारा॥
जड़वत जीव भया जड़ताई, अपनी सुधि आपै बिसराई॥
यासे भूला आदि ठिकाना, जुग जुग जीव फिरे भरमाना॥
सतसंग करने को कोइ चावे, पंडित भेष भूल भरमावे॥
नेम अचार इष्ट की बातें, करि समझाय कहें बहुत भाँति॥
यह सतसंग है जग के माहीं, बंधन जिव जानि उरझाई॥

जीव जो कि चैतन्य पुरुष है यहाँ जड़ चीजों के साथ बरत कर जड़वत हो गया है उसे अपने चैतन्य रुप की खबर नहीं है। जब वक्त के संत सतगुरु से मिलाप हुआ तब उसकी सुरत शब्द से मिली और अपने निज घर को पहुँची। संतों की गति अगम अपार है वे पल में जीव का उद्धार करते हैं। जीव अपना आदि देश भूल गया है और युगों-युगों से चौरासी में भरम रहा है। यदि कोई जीव सतसंग करना भी चाहता है तो पण्डित भेष उसे भरमा देते हैं। उसे नीचे के देशों के इष्ट में अटका देते हैं और नेम आचार से रहने को बताते हैं और कहते हैं कि यही सतसंग है। इस कारण से जीव संसार के बंधनों से बंधा रह जाता है और उसका उद्धार नहीं हो पाता है।

॥ चौपाई ॥

सुन हिरदे कहै तुलसी दासा, आतम सब में ब्रह्म निवासा॥
आतम नाद आदि से आई, सिंध बुन्द तन रहौ समाई॥
धरती पवन अगिन जल चारी, नीर बुन्द जग सृष्टि सँवारी॥
ता में चेतन बास अनूपा, पंचम तत्त अकास सरुपा॥
जड़ चेतन मन मूल बिसारा, अंतर गाँठ बहे नौ धारा॥
नैन नासिका मुख अरु काना, इंद्री गुदा गुनन में साना॥
बदन बास तन तत्त रहाई, इंद्री रुचि सुख भोग सोहाई॥
रस रस बस काहु फाँस फँसानी, उपजि मरै चौरासी खानी॥

तुलसी साहब अपने शिष्य हिरदे से कह रहे हैं कि हे हिरदे! सुरत अपने आदि घर से अर्थात सत्तलोक से आई है यहाँ आकर वह तन व मन रुप हो गई है। इस देह में जो सुरत/चैतन्य या आत्मा है उसकी परवरिश पाँच तत्वों द्वारा अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, जल द्वारा हो रही है वैसे ही देह भी पाँच तत्वों से बनी हुई है। ये पाँचों तत्व उस देह की सुरत के मातहत हैं क्योंकि वह चैतन्य है। चैतन्य या सुरत मन में पैवस्त हो गई है और वह उसके आधीन हो गई है, इस कारण वह अपने आदि घर को या शब्द को भूल गई है। सुरत की गाँठ मन के साथ हो गई है अर्थात् चेतन की गाँठ जड़ चीजों से हो गई है, और

सुरत मन का साथ करके नौ द्वारों में बह रही है वह नौ द्वार यह हैं-दो सूराख आँखों के, दो सूराख कानों के, दो सूराख नाक के, एक सूराख मुख का, एक सुराख गुदा व एक सुराख इन्द्री का। सुरत चैतन्य इस देह में विराजमान है और मन का संग करके इन इन्द्रियों के रस लेकर गाढ़े बन्धन में बंध गई है। आसा बासा मन्सा के कारण वह बार-बार जन्म लेती है और बार-बार मरती है।

॥ दोहा ॥

उत्पति परलै यों भई, गही न सतगुरु वाहिं।
संत चरन बिन वाद यों, बहे मर्म के माहिं॥

तुलसी साहब कहते हैं कि रचना इस तरह हुई है। यह नर तन वृथा जा रहा हैं क्योंकि जीव भ्रम में पड़ा है, यहाँ के सुख को ही सुख मान रहा है। असली सुख जो अंतर में है उसे भूल गया है। इसमें अपने में आप रत और मगन होने का जौहर अंग या शक्ति गुप्त मौजूद है। वह शक्ति बिना वक्त के संत सतगुरु की सरन लिए बिना, वजूद में नहीं आ सकती है। अत: वे अपने शिष्य हिरदे से कह रहे हैं कि तू संतों की सरन ले तब ही तेरा बेड़ा पार होगा।

पदम सागर

॥ दोहा॥

प्रथम करूँ गुरु वन्दना, सतगुर धुर अस्थान।
बिध बखान तुलसी कहो, चरन कँवल को ध्यान॥
कर प्रनाम हिरदे कहे, तन मन तोल बिचार।
मोहिं अधार तुम चरन को, तुलसी बारम्बार॥

गुरु नाम मालिक का है। संत सतगुरु वह है जिसमें सत्तदेश की सत्त धार विराजमान है। संत सतगुरु उनको कहते हैं जो कि धुर स्थान तक पहुँचे हैं। कुल्ल मालिक का प्रारुप संत सतगुरु है। इसलिए संत सतगुरु की भक्ति अति आवश्यक है। संत सतगुरु के प्रति प्रेम और भक्ति और उनको तन मन व धन का पूर्ण समर्पण हो जो पूजा और भक्ति के एक मात्र लक्ष्य हैं और प्रेमी भक्त के लिए सब कुछ है। इसी कारण से प्रथम गुरु बंदना की जाती है। वही कार्य तुलसी साहब ने भी किया है।

मैं कुल्ल मालिक की जो धुर स्थान में विराजमान हैं उनके चरन कँवलों का ध्यान करके उनकी बन्दना बार-बार करता हूँ। मैं उनके चरन कँवलों को अपने चित्त से सादर प्रणाम करता हूँ। मुझे केवल उनके चरणों का ही आधार है।

॥ सोरठा॥

परन मोर प्रति प्रति यही, सुख हिये हरख बयान॥
बचन सुने निरधार मुख, उर अधार गुर नाम॥

मेरा यही प्रण है कि मैं आपके नाम का सदा आधार रखूँ और आपकी पराबानी को हमेशा सुनता रहूँ ताकि मैं आपके आनन्द में हमेशा मगन रहूँ।

॥ चौपाई॥

गुरु कृपाल तुम्हरा जस गावों, अस हिरदे को दास बनावो॥
दयासिंध सागर सुखधामी, मैं सेवक तुम चरन नमामी॥

तुम स्वामी में किंकर चेरो, मोहिं पर कृपा सुरत मुख हेरो ॥
मैं अति दीन दयाल तुम्हारो, स्वामी सब निज काज सँवारो ॥
विनय करों तुम समरथ दाता, पावे नहिं गति बरन विधाता ॥

मेरे कृपानिधान मैं आपके गुण हमेशा गाता रहूँ और गाते-गाते कभी न अघाऊँ। आप दया के सिंध हैं और सुख के सागर हैं, सुख धाम के वासी हैं जीवों को सुख ही सुख देने वाले हैं। मैं आपके चरनों में बार-बार नत मस्तक हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अपना दास बना लीजिए।

आप मेरे स्वामी और मैं आपका तुच्छ सेवक हूँ। आपसे प्रार्थना है कि मेरी सुरत जो कि मन व इन्द्रियों में बँधकर संसार में बह रही है उसका उर्ध्वमुख कर दीजिए ताकि मैं आपके आनन्द में हमेशा मगन रहूँ। मैं दीन अधीन हूँ आप दाता दयाल हैं। हे स्वामी, मुझ दीन का आप काज सवाँर दीजिए अर्थात् अपने चरणों में लगा लीजिए। आप सर्व समरथ हैं मैं आपसे विनय करता हूँ कि आप मुझे सब बंधनों से छुड़ाकर अपने देश में बासा देवें। आपकी गति को ब्रह्मा जो कि इस त्रिलोकी (पृथ्वी, आकाश व पाताल) को रचने वाला है, भी नहीं जानता है। आपके भेद को वेद का भी कर्त्ता नहीं जानता है उन्होंने नेति नेति कहकर छोड़ दिया अर्थात् इसके आगे भी कुछ है।

हे मालिक, मैं आपसे आपके देश के बारे में पूछना चाहता हूँ। सभी संत बताते हैं कि कुल्ल मालिक परम पुरुष पूरन धनी का लोक अगमलोक है परन्तु नीचे के लोकों अर्थात् पिण्ड ब्रह्माण्ड तक के धनियों को आपके बारे में नहीं मालूम है।

॥ दोहा ॥

सतसंग में सतगुरु कही, बरन सुनाये बैन।
देस अगमपुर धाम की, संत लखावें सैन ॥

संत सतगुरु के सतसंग में ही संत सतगुरु उस अगम धाम के बारे में बताते हैं और वहाँ जाने का क्या ज़रिया है वह भी बताते हैं।

हद्द हद्द सब मत में कहे, बेहद कहे न कोय।
बेहद वाक ब्रतंत कू, बरन सुनावो मोहिं ॥

हद्द-हद्द अर्थात् सर्गुन यानी तीन गुन वाला यानी पिंड की रचना, त्रिगुणात्मक रचना (सतोगुन, रजोगुन, तमोगुन) एवं सहसदल कँवल की रचना त्रिर्गुण, एवं त्रिकुटी की रचना महानिर्गुण के बारे में तो सब मतों में कहा है परन्तु बेहद की रचना अर्थात् निर्मल निर्गुण (सुन्न की रचना) एवं सतों के देश की रचना के बारे में कोई नहीं कहता है। यद्यपि श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन को उपदेश दिया था कि वेदों की हद्द से वह त्रिगुणात्मक यानी सर्गुण है, पार हो तब असल मुकाम को पावेगा। परन्तु वह पार ब्रह्माण्ड के लिए कहा था, संतों के देश के लिए नहीं कहा था। अतः मुझे संतों के देश के बारे में बताइये।

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे बोले सुन स्वामी, नाम भेद कहो अंतरजामी ॥
ब्रह्म राम से नाम नियारा, अस आखो तुम बचन विचारा ॥
कहो वह पुरष नाम निरधारा, बिध बिध सुनो वार और पारा ॥
राम नाम सब जगत पसारा, तुम कहे ब्रह्म राम से नियारा ॥

हिरदे ने तुलसी साहब से प्रार्थना की कि आप अंतरयामी हैं आप नाम का भेद बताइये। इस लोक में "राम" नाम को सारे प्राणी जानते हैं, परन्तु आप कहते हैं कि "ब्रह्म राम" इस "राम" से न्यारा है। कृपाकर मुझे बताये कि वह "ब्रह्म राम" इस "राम" से किस प्रकार न्यारा है, और "उस महापुरुष के नाम" के बारे में भी बताइये जो कि इस "राम" और "ब्रह्मराम" के परे है।

तुलसीदास बाच

सुन अस्थूल राम मन माया, वह पद नाम विदेह अकाया ॥
तीन लोक से नाम नियारा, सो जाने सतगुरु का प्यारा ॥
लोक तीन तज चौथे माहीं, सो सतगुरु पद नाम लखाई ॥
जपने में कोई भेद न पावे, सतगुर सूरत संध लखावे ॥

हे हिरदे सुनो, जो राम को इस लोक में प्राणी जानते हैं वह स्थूल राम है जो मन माया में ग्रसित है। "ब्रह्म राम" सूक्ष्म राम है जो कि "निज मन" या "ब्रह्माण्डी मन" है जिसकी पहुँच ब्रह्माण्ड के लोक त्रिकुटी तक है। जो राम "ब्रह्म राम" से न्यारा है वह ब्रह्माण्ड मण्डल के अन्तिम पद पारब्रह्म के पार

यानी सहसदलकंवल, त्रिकुटी व सुन्न के पार है अर्थात् "सत्तनाम" सत्तपुरुष का नाम है। इस "सत्तनाम" को केवल संत ही जानते हैं या फिर उनका गुरुमुख शिष्य जानता है। यह दयाल देश चौथे लोक का नाम है। इस नाम को जपने से और सतगुरु के द्वारा बताई हुई जुक्ति का अभ्यास करने से इसे प्राप्त किया जा सकता है।

॥ दोहा ॥

नाम नोक गुप्ते कही, नहिं कोइ जाना भेद।
सन्त परख परवीन कोई, उन लख नाम अभेद ॥
नाम विदेही जब मिले, अंदर खुलें कपाट।
दया सन्त सतगुरु बिना, को बतलावे बाट ॥

इस गुप्त नाम का भेद कोई नहीं जानता है, केवल संतों ने ही इस नाम को परखा है, परखने के बाद उस अभेद नाम को जीवों को बताया। जब ऐसे संत मिले जिन्होंने इस नाम का भेद जाना है अर्थात् नाम की रसायन बना ली है या कहिये कि उस नाम से एक हो गये हैं और जीवों को नाम दान दें तब जीव का उद्धार हो सकता है। जब नाम विदेही संत सतगुरु मिले तब ही उद्धार हो सकता है और अंतर के पट खुल सकते हैं।

॥ चौपाई ॥

अब विदेह का सुनो विचारा, वह है नाम रुप से नियारा ॥
तीन लोक चौथे पद पारा, सो अनाम बेहद अपारा ॥
अद्भुत आदि अनाद न कोई, जब वह पुरुष नाम नहिं होई ॥
अब कहूँ मंजिल मूल दरसाई, सो सुन हिरदे चित्त लगाई ॥
वाट घाट बरतंत बताऊँ, पकंज फूल राह जेहि ठाऊँ ॥
हंसा तजे देह अस्थूला, जीवत मिले कंज गुर मूला ॥
यह पहले पूछा बरतंता, सुनो बयान कहूँ अरथंता ॥
संत सिरोमन बोलें बानी, सो अब हिरदे कहों सब छानी ॥

अब मैं तुम्हें विदेह पुरुष के बारे में बताता हूँ जो कि नाम व रुप से न्यारा है और तीन लोक के परे चौथे लोक में रहता है उसे अनामी पुरुष कहते हैं

उसका न कोई आदि है न अंत है। वह समय व सीमा से परे है। वह अद्भुत पुरुष है। जब नाम या शब्द भी नहीं था तब से वह पुरुष था। वह था, है, व रहेगा। मालिक कुल्ल अरूप और विदेह है। उसके नाम या शब्द के वसीले से जो उस मालिक के चरनों से जारी हुआ है अभ्यासी ध्यान करते हुए पहुँच सकता है। क्योंकि शब्द उस मालिक का प्रथम जहूरा और निशान है। और जैसे कि वह मालिक अरुप है, शब्द भी अरुप है पर ध्यान में वह बहुत भारी मदद करता है और उसे अपने पास बुला लेता है। इस देश से वह निःचिन्त है और मालिक से मिला हुआ है।

सुन हिरदे वह पुरुष नियारा, जो कहे संत निरंजन पारा ॥
निरगुन निराकार नहिं जोती, जब नहिं वेद कतेब न पोथी ॥
है अकाल जहँ काल न जावे, सो घर संत बिना नहिं पावे ॥
सतगुरु की जब बानी बूझे, जब कुछ रमक नैने से सूझे ॥
सबद ब्रह्म अच्छर है भाई, सोइ निरगुन निज ब्रह्म कहाई ॥
अज अचिंत यहि को बतलावा, सत्त पुरुष इन पार कहावा ॥
जहँ निरगुन सरगुन नहिं कोई, सो पद संतन सरन समोई ॥
अज निरभय कोई कहे अचिंता, इनके पार कहें सोई सन्ता ॥

हे हिरदे! सुनो मैं तुम्हें उस बेहद पुरुष कुल्ल मालिक के बारे में बताता हूँ जिसके बारे में संतों ने बताया है वह पुरुष, पिण्ड, ब्रह्माण्ड व पारब्रह्म के पार बसता है। उसे अकाल पुरुष, सत्तपुरुष कहते है वहाँ तक काल की पहुँच नहीं है। उस पुरुष के देश में बिना संतों का संग किये पहुँचना नहीं हो सकता है। वह पुरुष पुराना है वह Ancient of Ancients है। अनादि है वह अपने में आप समाया हुआ उनमुन अवस्था में है। सबको शक्ति प्रदान करने वाला है। निराकार (सहसदलकंवल त्रिकुटी), वेद कतेब कुछ नहीं थे ये सब बाद में हुए हैं। ये सतगुरु की बातें जीव ही जान सकता है, जब कि वह संतों का संग अर्से तक करे और उसकी अंतर की आँखें उनकी दया से खुले। शब्द ब्रह्म अर्थात् यही प्रणव या ओंकार पुरुष है, इसे अक्षर ब्रह्म भी कहते है। निरगुन पुरुष या निज ब्रह्म को निर्गुण कहा है इनकी रचना सहसदल कंवल है। ब्रह्म और

पारब्रह्म की रचना को ही इन्होंने आखिरी रचना बताया है। ब्रह्म व पारब्रह्म के धनियों की रसाई संतों के देश तक़ नहीं है। केवल संत ही वहाँ पहुँचे है और वे ही जीव को अपने देश में पहुँचा सकते हैं। सत्तपुरुष इनके लोकों से बहुत आगे है। कुल्ल मालिक अजायब पुरुष है अर्थात् असाधारण पुरुष, अनोखा पुरुष यानी कुल्ल मालिक है उनके बारे में संत बता सकते हैं।

॥ चौपाई ॥

नाली नगर कगर इक भारी, जहँ चढ़ सके कोइ सूर करारी ॥
वज्र किवाड़ बाट में लागे, सूरत खड़ी जाय नहिं आगे ॥
व्हाँ बैठी नटखट इक नारी, आठ पहर चौकस अधिकारी ॥
नगर माहिं कोइ धसन न पावे, जो कोइ जाय उलट बगदावे ॥
सतगुर की कोइ छाप बतावे, सो वोहि पार निकर के जावे ॥
संत मोहर मारग में देखे, जाय सुरत सोइ निरख बिबेके ॥
सूरत सिखर पार चढ़ जाई, वहँ पंकज फूले सुन भाई ॥
हंस देह तज होय नियारा, मिले कंज गुर पदम अधारा ॥

नाली नगर कगर इक भारी अर्थात् दोनों आँखों के मध्य में दिमाग के अंदर तीसरा तिल है। वही खस का दाना है जिसमें शहर खुदा का बसता है। दोनों आँखों से धारें, जरा टेढ़ी होकर, अंतर की जानिब जाती हैं और दिमाग के अंदर उस जगह मिलती हैं जहाँ रगे जाँ एक पतली सी नली है जिसमें जान की धार आती है यह मौत का मुकाम है। यहाँ पहुँचकर यह जिन्दा रहे और वहाँ से ऊपर चढ़े। तुलसी साहब इसी नाली नगर के बारे में बता रहे हैं। तीसरे तिल पर बज्र कपाट लगे है जिन्हें कि संत सतगुरु की दया से खोला जा सकता है। ये बज्र कपाट कोई शूरवीर ही खोल सकता है अर्थात् जिसको मालिक से मिलने की गरजमंदी और ख्वाहिश होगी, और वह दुनिया से बेज़ार हो चुका होगा। तीसरा तिल पिंड का नाका है। यहां से सुरत मन व इच्छा के संग ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियाँ द्वारा संसार में लिपट रही है व माया का संग कर रही है और सुरत अपने घर को लौट नहीं पा रही है। नटखट नदी से तात्पर्य माया से है। जो कोई सुरत हिम्मत करके तीसरे तिल के पार जाती है तो उसे भुलावा देकर,

धोखा देकर नीचे उतार देती है। यदि सुरत संत सतगुरु को अपने संग लेकर चलती है तब तो माया उसे माया जाने देती है जब सुरत माया के पंजे से निकल जाती है तो वह सहसदलकंवल त्रिकुटी को पार कर सुन्न स्थान में पहुँच जाती है। वहाँ के लीला बिलास देखकर सुरत बहुत मगन होती है। यहाँ पर वह हंस रुप हो जाती है अर्थात् उसकी देह की काया विदेह हो जाती है और उसका विशुद्ध निर्मल स्वरुप निकल आता है और वह आगे बढ़ती चली जाती है भँवरगुफा को पार करके सत्तदेश में पहुँच जाती है और सत्तपुरुष के दर्शन करती है और मगन होती है।

॥ दोहा॥

सेत कँवल ऊपर चढ़ी, छूटी चेतन गाँठ।
जड़ जूड़ी अलगाय के, चढ़ी अगम की बाट॥
तैं पूछा बरतंत सोइ, बिधि बिधि कही जनाय।
अब आगे की गैल को, बरनन कहों सुनाय॥

जड़ चेतन की गाँठ जब खुल गई तब सुरत सेत कँवल अर्थात् सत्तलोक से भी ऊपर बढ़ी और अलख अगम लोक की ओर चढ़ी और फिर कुल्ल मालिक के देश में पहुँचकर वहाँ बासा किया।

तुलसी साहब कहते हैं कि हे हिरदे, तुमने मालिक के देश के बारे में मुझसे पूछा सो मैंने विस्तृत रुप से वर्णन किया। मैंने पिंड, ब्रह्माण्ड, पारब्रह्म पद के आगे के बारे में तुम्हें बताया।

॥ चौपाई॥

जड़ चेतन की गाँठ न छूटी, जोगी पवन चढ़ावें झूँठी॥
दीप नगर सूरत रहि बाँधी, सो बिन सुरत पवन को साधी॥
मन थिर रहे न स्रुत बिन डोरी, यह मन थिर बिन सुरत बहोरी॥
काया करम बन्ध बस आया, यों नहिं पाये देस अकाया॥
गाँठ खुले पर ब्रह्म निहारे, मन जब थिर ह्वै सुरत सम्हारे॥
छूट सुरत जब मन थिर पावे, तब जोगी मन पवन चढ़ावे॥

सन्त दया बिन सुरत न छूटे, जोगी पकड़ पकड़ जम लूटे ॥
सुरत संध संतन के पासा, संत संध से करे खुलासा ॥

जड़ चैतन्य की गाँठ से मतलब मन और सुरत की गाँठ से है। सुरत चैतन्य है। मन जड़ है। सुरत को अपने निज देश में पूर्ण आनन्द है। सुरत आनन्दमय तब ही होगी जबकि वह अपने निज देश में पहुँचेगी परन्तु सुरत यहाँ मन के अधीन हो गई है अत: मन को साथ रखकर ही सुरत अपने देश में जा सकती है। मन त्रिकुटी में रुक जायेगा जहाँ कि उसका देश है।

तुलसी साहब कह रहे हैं कि जब तक जड़ चेतन की गाँठ नहीं खुलेगी तब तक सुरत ऊपर के देशों में नहीं जा सकती है। योगी लोग जो प्राणायाम करके स्वांस को चढ़ाते है उसका कोई अर्थ नहीं है उन्हें सच्चा सुख नहीं मिलता है वह कार्य ढोंग से भरा हुआ है। सुरत मन के देश पिंड में ही माया के साथ रच पच रही है। जब तक मन अपनी चंचलता नहीं छोड़ता है और स्थिर नहीं होता है तब तक सुरत नहीं चढ़ सकती है। जीव कर्मो के बंधन के कारण इस देह में आकर बंधा है। इस देह के निमित्त ही सारे कार्य करता है। जब देह के बंधन छूटें तब ही विदेह हो सकता है। जब विदेह होगा अर्थात् कर्म करते हुए भी अकर्ता होगा तब ही यह अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म रुप को प्राप्त होगा और अपने देश में पहुँचेगा। जब जड़ चेतन की गाँठ खुल जावेगी तब वह ब्रह्म पद में पहुँच जावेगा और ब्रह्मपुरुष का दर्शन करेगा, क्योंकि मन स्थिर हो गया है और सुरत का साथ दे रहा है। परन्तु यह कार्य संतों की दया बिना सम्भव नहीं है अत: उनका संग अवश्य करना चाहिए। योगी लोग जतन कर कर हार गये और माया के जाल से नहीं निकल पाये। परन्तु जिस जीव ने संतों का संग किया वह मालिक के देश में पहुँच गया। संत मालिक के देश से आये हैं उन्हें मालिक के देश का रास्ता मालूम है इसलिए वे जीव को अपने देश में ले जा सकते हैं।

फुटकर साखी संग्रह

संत की साखी सभी देत, जुगन जुग ज्ञान।
सतसंग करके बुझि लै, करत सभी परमान ॥ १ ॥

संतों के उपदेश अनुभव पर आधारित होते हैं। वे जीवों को युग युगांतर तक ज्ञान प्रदान करते हैं। उनका सतसंग करने पर यह ज्ञान प्राप्त होता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सतसंग करके देख सकते हो।

कलजुग सम नहिं और युग, संत धरै औतार।
जीव सरन होई संत के, भवजल उतरै पार॥ २॥

कलियुग के समान कोई अन्य युग नहीं है, क्योंकि कलियुग में ही संतों ने अवतार लिया है और जो जीव उनकी सरन ले लेते हैं, वे भवसागर के पार होते हैं, यानी उनका उद्धार हो जाता है।

सतगुरु संत दयाल बिन, सब जिव दयाल चबाय।
बांधि करम के बस रखै, सकै न सुरति पाय॥ ३॥

बिना संत सतगुरु दयाल के, काल सब जीवों को चबाये जा रहा है। वह किसी को भी उनके सच्चे व असली घर में नहीं जाने दे रहा है और उन्हें इस संसार में अनेक बंधनों व कर्मों में बांध कर रक्खा है। जीव लाचार है और अपनी सुरत की भी सम्हाल नहीं कर सकता है। संत सतगुरु की दया हो तो वह काल के फंद से छूटकर निज घर में पहुँच सकता है।

पति की ओर निहारिये औरन से क्या काम।
सभी देवता छोड़कर जपिये गुरु का नाम॥ ४॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जैसे पतिव्रता स्त्री केवल अपने पति की ओर ही टकटकी लगाकर देखती है और वह दूसरों से कोई प्रयोजन नहीं रखती है, इसी तरह मालिक की ओर देखना चाहिए तथा अन्य किसी से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए और सभी देवी देवताओं को छोड़कर गुरु द्वारा दिये गये नाम का सुमिरन करना चाहिए।

तन मन सों साँचा रहै, गहै जो सतगुरू बाँहि।
काल कभी रोके नहीं, देवै राह बताई॥ ५॥

जो व्यक्ति तन से, मन से और सम्पूर्ण रूप से सतगुरू की सरन ग्रहण कर लेता है, उसको अपने सच्चे व असली घर में जाने से काल कभी रोक नहीं सकता है, बल्कि वह उसकी मदद करता है और सत्य मार्ग की ओर इशारा करके उसका मार्ग प्रशस्त कर देता है। वह यह बात जान जाता है कि यह जीव अब मुझसे रोके नहीं रूकेगा।

संत चरन विश्वास से, कलजुग में निरधार।
सतजुग तो बंधन करै, कहि सब संत पुकार॥ ६॥

संतों के चरनों की सरन, विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से, कलयुग में जीव का उद्धार हो जाता है। सब संतों ने पुकार कर कहा है कि सतयुग में तो बंधन पैदा हुए हैं और कलयुग में ही मुक्ति का उपाय किया जा सकता है।

सुरत सैल असमान की, लख पावे कोई संत।
तुलसी जग जाने नहीं, अति उतंग पिया पंथ॥ ७॥

ऊपर के मंडलों की सैर का आनंद संत ही जानते हैं, जो स्वयं अपने मूल पद की सैर नित्त करते हैं। तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि प्रीतम अर्थात् मालिक से मिलने का मार्ग बहुत ऊँचा और दूर है जिसे संसार के लोग नहीं जानते हैं।

दिना चार का खेल है, झूठा जक्त पसार।
जिन विचार पति ना लखा, बूड़े भौजल धार॥ ८॥

संसार में जीवन मात्र चार दिन का अर्थात् यह देह क्षण भंगुर है। पता नहीं कब समाप्त हो जाये। सारा जगत और उसका सकल पसारा झूठा है। जो जीव इस बात का विचार करके सही हालत को समझ कर मालिक से मिलने का जतन नहीं करते, उनको भवसागर में डूबना ही पड़ेगा। उनके बचाव का कोई रास्ता नहीं है।

एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाँति सलिल गुरू चरन हैं, चात्रिक तुलसीदास॥ ९॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि मुझको केवल एक कुल्ल मालिक का भरोसा, बल, आस और विश्वास है। मैं चात्रिक के समान हूँ। मुझे गुरू के पवित्र चरनों का जल अर्थात् चरणामृत जो स्वांति नक्षत्र में बरसने वाले जल के समान है, पीने से, चात्रिक की भांति मेरी प्यास बुझती है।

तुलसी ऐसी प्रीत कर, जैसे चन्द चकोर।
चोंच झुकी गरदन लगी, चितवत वाही ओर॥ १०॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि संत सतगुरू से ऐसी प्रीत कर जैसी चकोर की चन्द्रमा के साथ है। चन्द्रमा को निहारता रहता है, अपनी सुध बुध भूल जाता है। पृथ्वी के घूर्णन और परिक्रमा तथा चन्द्रमा की चाल से चन्द्रमा की दिशा रात में बदल जाती है, पर यह पक्षी ऐसी टकटकी लगाये रहता है कि उसकी

गर्दन मुड़ जाती है, चोंच झुक जाती है, पर चन्द्रमा पर से अपनी दृष्टि नहीं हटाता, फलत: गिर पड़ता है। संत सतगुरू के दर्शन कैसे करने चाहिए, उसकी यह सटीक मिसाल तुलसी साहब ने दी है। यह बिना गहरी प्रीत के नहीं बन आवेगी।

उत्तम और चंडाल घर, जहँ दीपक उजियार।
तुलसी मते पतंग के, सभी जोत इकसार॥ ११॥

चाहें कुल यानि बड़े आदमी के घर में और चाहे चांडाल अर्थात् निम्न कोटि जीव यानि गरीब घर में, कहीं भी दीपक जलता हो, पतंगे के लिये दोनों ही यानि सभी जगह समान हैं। उसको तो दीपक पर न्यौछावर होना है सो प्रकाश देखते ही झपटकर दीपक पर जा गिरता है। अंग या स्वयं के जल जाने का कोई विचार नहीं। तात्पर्य यह है कि गुरू ब्राह्मण हैं या नीची जाति के, इससे शिष्य और भक्त को कोई सरोकार नहीं। जो गुरु शिष्य हृदय को प्रकाशित कर दे, आकर्षित करके अपनी ओर खींच ले, वह पूज्यनीय और वंदनीय है।

"रखो नहीं मन में जात और पात, विघन यह भारी बुधि भरमात।"

तुलसी कँवलन जल बसे, रवि ससि बसे अकास।
जो जाके मन में बसे, सो ताही के पास॥ १२॥

कमल जल में रहता है और सूर्य और चन्द्रमा आकाश में दोनों में बहुत दूरी होते हुए भी ऐसी परस्पर प्रीत है कि सूर्योदय के साथ कमल खिलने लगते हैं और चन्द्रोदय के साथ अर्थात् रात्रि को बंद हो जाते हैं। ऐसे ही जिस भक्त के मन में गुरू निरन्तर बसे रहते हैं यानि अष्ठ प्रहर शिष्य अपने गुरू की याद में तल्लीन रहता है, ऐसे शिष्य और गुरू की प्रीत पर कोई विपरीत असर नहीं पड़ता है अर्थात् दूर होते हुए भी शिष्य हमेशा अपने को गुरू के निकट समझता है और गुरू भी उससे इसी निकटता के रूप में बर्ताव करते हैं।

मकरी उतरे तार से, पुन गाहि चढ़त जो तार।
जा का जासों मन रम्यो, पहुँचत लगे न बार॥ १३॥

मकड़ी अपने तार से उतरती है और फिर उसी तार से वापस ऊपर चढ़

जाती है। जिसका जिसमें मन लग जाता है उसे उसके पास पहुँचने में देर नहीं लगती है। फरमाया भी है कि मकड़ी अपने मुँह से तार निकालती जाती है और उसी पर चलती हुई ऊपर चढ़ जाती है। इसी तरह सुरत की चढ़ाई मकर गति से सहसदलकँवल से त्रिकुटी के मध्य होती है। सहसदल कँवल में गति होने से सुरत को इतनी ताकत हासिल हो जाती है कि सतगुरू की कृपा से अपने निर्धारित मार्ग पर सरपट चढ़ती जाती है।

तुलसी या संसार में, पाँच रतन हैं सार।
साध-संग सतगुरू-सरन, दया दीन उपकार॥ १४॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि इस संसार में पाँच रत्न अर्थात् सार तत्व हैं। पहला साध पुरूष का संग करना, दूसरा सतगुरू की सरन ग्रहण करना, तीसरा दया भाव रखना, चौथा दीनता धारण करना और पाँचवाँ औरों का उपकार करना।

नीच नीच सब तर गये, संत चरन लौलीन।
जातहि के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन॥ १५॥

संत के चरणों में लीन होकर उनके प्रताप से नीच से नीच आदमी का भी उद्धार हो गया। किन्तु जाति का अभिमान करके ऊँची जाति का आचरण रखने वाले डूब गये और उनका उद्धार नहीं हुआ।

जैसो तैसो पातकी, आवे गुरू की ओट।
गाँठी बाँधी संत से, ना परखो खरखोट॥ १६॥

कितना ही बड़ा पापी हो, अगर वह संत की सरन में आ जावे अर्थात् सच्ची सरन धारण कर ले तो संत उसे अपने चरनों में बासा दे देते हैं और यह नहीं परखते हैं कि वह खरा है या खोटा है। इसके पीछे मंशा यही है जैसे नमक की क्यारी में कोई चीज गिर जाय तो वह नमक हो जाती है, उसी तरह संतों के सतसंग में आ जाने से खरा हो जाता है। यह संतों की महिमा और प्रताप से है।

सोना काई नहीं लगे, लोहा घुन नहिं खाय।
बुरा भला जो गुरू भगत, कबहूँ नर्क न जाय॥ १७॥

सोने पर काई नहीं लगती लोहे को घुन नहीं खाता। गुरू का भक्त चाहे भला है या बुरा, किन्तु नर्क में कभी नहीं जावेगा।

दर दरबारी साध हैं, उनमें सब कुछ होय।
धुर्त मिलावें नाम से, उन्हें मिले जो कोय॥ १८॥

मालिक के दरबार के दरवाजे पर साध जन का निवास है अर्थात् वे मालिक के दरबार के दरबारी हैं। उनसे सब कुछ बन सकता है। उनसे जो कोई प्रेम प्रीत से मिले और उनकी प्रतीत करें, तो उसे वे तत्काल नाम से मिला देते हैं अर्थात् नाम की बख़्शीश कर देते हैं।

कोई तो तन मन दुखी, कोई चित्त उदास।
एक एक दुख सबन को, सुखी संत का दास॥ १९॥

किसी को तन का दुख है, किसी को मन का दुख है, किसी का चित्त उदास रहता है, सब को एक न एक दुख लगा ही रहता है, किन्तु संत का दास सर्वदा सुखी रहता है।

बड़े बड़ाई पाय कर, रोम रोम अहंकार।
सतगुरू के परचे बिना, चारों बरन चमार॥ २०॥

बड़े आदमी अपनी बड़ाई होती देखकर अथवा अपनी बड़ाई का ख्याल कर कर के रोम रोम से अहंकार में भर जाते हैं, किन्तु सतगुरू को जाने बिना और धारण किये बिना चारों ही वर्ण के लोगों को निम्नतर कोटि के जीव समझना चाहिए अर्थात् उनके भाग्य जागने का समय अभी नहीं आया।

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
तुलसी पंडित मूरखो, दोनों एक समान॥ २१॥

जब तक मन में काम, क्रोध, मद और लोभ भरा है। मन में ख्याल है तब तक चाहे विद्धान और पंडित हो, चाहे मूर्ख हो, दोनों समान हैं।

मन राखत बैराग में, घर में राखत राँड।
तुलसी किड़वा नीम का, चाखन चाहत खाँड॥ २२॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जिसने संसार के सुखों को त्यागकर बैराग ले लिया पर गृहस्थ में रहकर अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध रहता है और पराई स्त्रियों का घर में आना जाना बनाए रखता है, उसे जानना चाहिये कि खांड के भरोसे वह कड़वा नीम अर्थात् विष का स्वाद ले रहा है। मालूम हो कि मनसा और कर्मणा करके अशुभ कर्म उससे बराबर बन रहा है। वह अपने उद्धार का मार्ग

खुद ही अवरूद्ध कर रहा है।

अर्ब खर्ब लों लक्ष्मी, उदय अस्त लों राज।
तुलसी जो निज मरन है, तो आवे केहि काज॥ २३॥

जिसके पास अपार धन सम्पत्ति है और जिसका इतना बड़ा राज्य है जिसमें कभी सूर्य अस्त नहीं होता है, पर जब मृत्यु निश्चित है तो यह सब ठाठ और राजपाट क्या काम आयेगा। इन्हें छोड़ना ही पड़ेगा, यह मृत्यु को नहीं टाल सकते, बेकार हैं।

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥ २४॥

नदी अथवा सागर में यात्रा करते समय यदि नौका में ज्यादा पानी आ जावे, तो पानी बाहर निकालना जरूरी है अन्यथा नाव डूब जायेगी अत: दोनों हाथों से यानि हर तरह से पानी बाहर निकाल फेंकना अक्लमंदी है। इसी तरह यदि घर में धन ज्यादा इकट्ठा हो जाये तो उसे निकालना यानि दोनों हाथों से उदारतापूर्वक ज़रूरतमंदों को अथवा अच्छे काम के लिये दान देना, भले आदमियों का काम है। महात्माओं का बचन है कि आवश्यकता से अधिक धन संग्रह रखना स्वत: ही पतन का बयाना है।

चार अठारह नौ पढ़े, खट पढ़ि खोया मूल।
सुरत शब्द चीन्हें बिना, ज्यों पंछी चंडूल॥ २५॥

जो लोग चारों वेद, अठारह पुराण, नौ प्रकार की व्याकरण और छओं शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, पर कुल्ल मालिक का उन्हें कोई ख्याल नहीं और न सुरत शब्द मार्ग का ज्ञान है अथवा इस मार्ग में कोई ज्ञाता नहीं है तो उनको दुर्दशाग्रस्त नराधम समझना चाहिये।

पढ़ पढ़ के सब जग मुवा, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय॥ २६॥

सारी दुनियाँ में लोग पढ़ते हैं, पढ़ पढ़कर हासिल करते हैं और अंत में मर जाते हैं। पंडित यानी सच्चा ज्ञानी जिसने सच्चे मालिक का दीदार प्राप्त कर लिया हो, अथवा इस मार्ग की कमाई करने में लगा हो, ऐसा कोई नहीं हुआ। सभी विद्याभिमानी होकर रह गये। वास्तव में जब तक गुरू और मालिक का

प्रेम जीव के हृदय में पैदा न होवे, और कोमलता और दया भाव उत्पन्न न होवे, तब तक सारी विद्या और पढ़ाई लिखाई व्यर्थ है। हिन्दी भाषा में प्रेम शब्द में ढाई अक्षर आते हैं। इसलिये तुलसी साहब ने 'ढाई अक्षर प्रेम का' कहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान की पुस्तकों के अध्ययन और विद्या बुद्धि से परम सत्ता का तौल करते रहने से कुछ बात बनने वाली नहीं है।

मालिक की प्राप्ति के मार्ग का खोज करके उनके दर्शन प्राप्त करने की जुगत की कमाई करके हृदय में उनके लिये निष्कपट प्रेम पैदा करना ज़रूरी है।

लिख २ के सब जग लिख्यो, पढ़ पढ़ के कहा कीन्ह।
बढ़ बढ़ के घट घट गये, तुलसी संत न चीन्ह॥ २७ ॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि लोग सांसरिक विद्या खूब पढ़ते हैं और अनेक कलाएं सीखते हैं तथा ग्रंथ रचना भी बहुत कर लेते हैं, पर इन सबका क्या सदुपयोग हुआ यदि संतन की पहचान उन्हें नहीं आई। संत समागम न होने से सब दुनियावी बढ़ोत्तरी घट जानी है, शरीर और मन दोनों ही विकारयुक्त होते चले जाते हैं और अंत को बचाव का कोई मार्ग हाथ न लगने से सिर पीट पीट कर मरना पड़ता है।

तुलसी सम्पत के सखा, पड़त विपत में चीन्ह।
सज्जन कंचन कसन को, विपत कसौटी कीन्ह॥ २८ ॥

तुलसी साहब का फ़रमान है कि मित्र की सही पहचान संकट के समय होती है। विपत्ति रूपी कसौटी पर सज्जनरूपी कंचन की परख की जाती है। अमुख व्यक्ति वास्तव में सज्जन पुरूष है या स्वार्थी और कपटी है, इसका निर्णय विपत्ति के समय में उनके व्यवहार बर्ताव से होता है।

मन थिर कर जाने नहीं, ब्रह्म कहें गुहराय।
चौरासी के फन्द में, फेर पड़ेंगे आय॥ २९ ॥

जो लोग अपने मन पर पूरा काबू हासिल किये बिना और मन को स्थिर किये बिना, अपने आपको ब्रह्म कहते हैं, वे निश्चय रूप से चौरासी के चक्कर में भरमते रहेंगे।

तुलसी मैं तू जो तजे, भजे दीन गत सोय।
गुरू नवे जो शिष्य को, साध कहावे सोय॥ ३० ॥

जो व्यक्ति 'मैं', 'तू', 'तेरा', 'मेरा' अर्थात् अहं भाव और आपा तथा स्वार्थ वृति को त्याग कर मालिक के भजन में लगे हैं और दीनता तथा कोमलता की प्रतिमूर्ति हैं, वे साध कहलाने के अधिकारी हैं। दीनता की पराकाष्ठा दर्शाते हुए तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि गुरू होकर भी से यानि स्वयं अपने आप शिष्य के सामने नम्रता करें, अपना बड़प्पन, तनिक भी प्रदर्शित न करें, यह साध पुरूष का आदर्श है।

उलटा चले गगन को धाई।
ता से काल रहे मुरझाई॥ ३१॥

उलटा नाम जपने से मतलब अन्तर में उलट कर चलना है। राम की जगह मरा मरा कहने से बाल्मीकि को ब्रह्म की गति प्राप्त हुई, यह किसी लाल बुझक्कड़ की सूझ है। इस साधारण अर्थ में उल्टा शब्द का महत्व जाता रहता है।

भटक भटक भव मांहि, बहुत चौरासी जावै।
अरे हाँ तुलसी सतगुरू सरन सुरत चरनन पर लावै॥ ३२॥

तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि जीव संसार रूपी भवसागर में भटकते फिरते हैं और चौरासी के चक्कर काटते रहते हैं, पर भवसागर से पार नहीं जा सकते हैं। यदि सतगुरू की सरन प्राप्त हो और सुरत को चरनों से जोड़े यही जाल छूटने का जरिया है यानी उनकी शरणागत में आये तो आवागमन से छूट सकता है।

राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट।
फिर पीछे पछताएगा, प्राण जाएंगे छूट॥ ३३॥

भाग्य से नर देही मिली है। इसको व्यर्थ में मत गवांओ। मालिक का भजन सुमिरन कर जन्म सफल करें। संत सतगुरु से मिलकर उनके चरनों में प्रेम पैदा करे, सेवा कर अपने ऊपर मेहरबान कर ले। जब वे प्रसन्न होवेंगे, भेद नाम का देवेगें, उसकी कमाई करे यानि प्रेम प्रीत से नाम का रटन करे। अंतर में नाम की धुन जो ऊपर के धाम से आ रही है, उसमें चित्त लगाकर सुनें। इस दोहे में राम छेपक के रूप में लिखा है।

''राधास्वामी नाम का सुमिरन करना, इससे बढ़कर और कोई सेवा नहीं है। जिसको हर पल राधास्वामी नाम याद है उसके हृदय में गोया मालिक के चरन बस गये और यही चैतन्य जौहर यानि नाम रूपी धन है।'' (बचन महाराज साहब भाग १ बचन १८)

यह नाम धन प्राप्ति के लिये अभी से जतन कर लेना चाहिये। यदि अभी नहीं किया तो मृत्यु के समय पछताना पड़ेगा। फिर यह अवसर नहीं मिलेगा।

खोट मोट यानी, आठों गांठ के हरामी।
सो ऐसे कुटिल कामी, काम रागइ से भरे हैं॥
देखत के ज्ञानी, कूर खान की निशानी।
अधम ऐसी अभिमानी, सो जान हान करत हैं॥
साँचे संसार लार, संतन से फेर फार।
तुलसी मुख परत छार, छली छिद्र भरे हैं॥ ३४ ॥

जो वेश्यागामी हैं और साध-संतों से बैर विरोध रखते हैं, वे कुटिल और कुमार्गी हैं और सत्पथ पर नहीं चलते हैं। वे भाग्यहीन हैं और विषय वासना में लिप्त रहते हैं, ऐसे हरामी नर्क में गिरते हैं। वे देखने में भले लगते हैं किन्तु परमार्थी करनी से खाली हैं, वे टीका निकाल कर पाखंड करते हैं और वे झगड़ालू हैं। वे खोटे हैं, और वे कुटिल व कामी और काम वासनाओं से भरे हुए हैं। वे देखने में ज्ञानी लगते हैं किन्तु क्रूरता की खान हैं और पापी अभिमानी व हिंसक हैं। वे संसार को सत्य मानकर व्यवहार करते हैं और संतों से द्रोह रखते हैं। वे छल कपट से भरे हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि ऐसे कपटी व्यक्तियों के मुँह पर धूल डालनी चाहिए।

एक स्पष्टीकरण

कंज गुरू ने राह. बताई।
देह गुरू से कछु नहिं पाई ॥

उपरोक्त दोहे की दोनों कड़ियों में परस्पर विरोधाभास मालूम होता है जबकि वास्तविकता यह नहीं है। दोनों पक्तियाँ दो अलग-अलग घटनाओं पर आधारित हैं, जो निम्नलिखित हैं।

तुलसी साहब ने घट रामायण में अपने पूर्व जन्म पर कुछ प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है कि जमुना नदी के किनारे राजापुर गाँव (बुन्देलखंड) में भादों सुदी एकादशी संवत् १५८९ को कान्ह कुब्ज, ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ था। जन्म के तीन दिन बाद माता की मृत्यु हो गई और पिता ने अभागे बालक को स्वीकार करने से इंकार कर दिया था। अतः एक दासी ने उनका पालन पोषण किया था। जब कुछ बड़े हुए तो एक साधू नरहरियानन्द ने उनको सम्हाला और लिखना पढ़ना सिखाया। इसके बाद शेष सनातन नामक विद्वान ने उनको सब धर्मशास्त्रों का अध्ययन कराया। वह साधू और वह विद्वान दोनों ही उनके सांसारिक विद्या गुरू थे। उनसे उनको सिवाय विद्या के, परमार्थ की कुछ प्राप्ति नहीं हुई थी। इसी संदर्भ में तुलसी साहब ने लिखा है।

'देह गुरू से कछु नहिं पाई।'

दूसरी घटना के बारे में तुलसी साहब ने घट रामायण में लिखा है कि सावन सुदी नवमी संवत् १६१४ को अर्द्धरात्रि में बिजली चमकी और जोर शोर से बादल गरजा। मैं समझ नहीं सका क्या माजरा है? मेरे मन में अनेक शंकाऐं उठी। मैं सोचता रहा कि यह अचरजी लीला कहाँ से आई? फिर तो रोज-रोज कई रातों में ऐसा होता रहा। मैंने अन्तर में गंगा जमुना त्रिवेनी, प्रयाग इत्यादि कई स्थान देखे और मेरी सुरत ने सतगुरू के चरन कमल स्पर्श किये।

'सतगुरू कंज सुरति पद पासा।'

तब एक दिन सुरत सतलोक में पहुँच गई। मेरी सुरत ने कई दिनों तक सत्तलोक की सैर करी। सतगुरू की कृपा से यह सब सम्भव हुआ। इसी संदर्भ में तुलसी साहब ने लिखा है कंज गुरू ने राह बताई।

जो शब्द भेदी हैं और सत्तलोक में पहुँचाने की सामर्थ्य रखते हैं और घट में राह बताते हैं, वे सतगुरू हैं।

कंज का अर्थ है कँवल, शिव नेत्र, सहस दल कँवल, तीसरा तिल। देह का अर्थ है पिण्ड, नर, धरती, माया।

दोनों आँखों के मध्य में अन्दर की तरफ तीसरी आँख है यानि तीसरा तिल है, जहाँ सुरत ने ठेका लिया है क्योंकि सुरत पर मन और माया के खिलाफ चढ़े हुए हैं जिसके अन्दर बैठी सुरत मन ने अपना आपा दिया। मन जड़ है खुद कुछ नहीं कर सकता। वह सुरत को यहाँ से रस लेने के लिये पिण्ड में हृदय चक्र पर लाता है वहाँ से अपनी धारों द्वारा इन्द्रियों द्वारों पर जाता है। संसार में जड़ पदार्थों से मेल करके उनका रस भोगता है। इस घाट पर जब तक धार नीचे न उतरे और इन्द्रिय द्वारों पर न जावे तब तक यहाँ कोई रस प्राप्त नहीं किया जा सकता।

बार-बार इन्द्रिय द्वारों पर धार जाने से और वहाँ का रस लेने से जो बन्धन पैदा होते हैं और उनमें फँसाव पैदा होता है और यहाँ कोई भी भोग रस एक सा नहीं होता क्योंकि माया जड़ है, और उसकी भी उम्र है। तो वियोग में दुख भी होता है। इस तरह जीव सदा दुख-सुख के चक्कर में पड़ा रहता है।

गुरू ने यह बताया कि इस दुख-सुख के देश से छूटना चाहो और हमेशा का आनन्द प्राप्त करना चाहो तो अपनी वृत्ति को संसार से हटाकर गुरू में जोड़ो। अब सतगुरु फ़रमाते हैं कि अपनी वृत्ति को समेट कर दोनों आँखों के मध्य में जो तीसरा तिल है, उस पर केन्द्रित करो और वहाँ बैठकर मालिक को पुकारो।

पुकारना ये है कि मालिक के नाम का रटन करो। नाम का रटन करने से तात्पर्य है कि राधास्वामी नाम का उच्चारण अपने मन की जबान से करो।

तीसरा तिल दरवाजा है मालिक से मिलने का यहाँ से सड़क मालिक से मिलने की जाती है। माया रचित काया में मन और इन्द्रियों के द्वारा भोग-भोग कर जीव का बन्धन संसार में हो गया है और यहाँ के पदार्थों में जीव सुख

मानता है जो इस संसार में रच गया, खप गया, उसे जो राह गुरू ने बताई है उस पर नहीं चला जा सकेगा, इसलिये गुरू के इस उपदेश से उसे कोई लाभ नहीं होगा।

सतगुरू की पहचान हमको कैसे होगी वो आप ही बख़्शेंगे तो होगी सो यह बात ठीक है लेकिन फिर भी आपको समझ लेना चाहिए जैसा "स्वामी जी महाराज" ने "सार बचन बार्तिक" भाग २ बचन २४१ में फरमाया है कि

मालिक और संत सतगुरू की पहचान तो उनकी मेहर व दया से ही होगी। स्वामीजी महाराज का बचन है "जिन को सतगुरू और नाम की खोज सच्ची है और उनकी तलाश में रहते हैं उनको सतगुरू और नाम प्राप्त होगा।"

बाबूजी महाराज ने फरमाया-अगर इसकी सच्ची ख्वाहिश और चाह उनसे मिलने की है, तो दुनिया में कोई ताकत ऐसी नहीं है जो इसको रोक सके, वह जरूर मिलेंगें। संतों का मार्ग शब्द मार्ग है। मालिक का शब्द स्वरूप है। शब्द और प्रेम एक ही बात है। वह नर चोले में आकर शब्द उपदेश फ़रमाते हैं। नसीहत करने वाले भी शब्द रूप और नसीहत भी शब्द की। जब चश्म वातिन खुलेगी तब यह उनके कदमों में बोसा देगा।

जिसने माया के पदार्थों में और संसार में ही सुख माना है, उसको इस उपदेश से लाभ नहीं होगा।

जिस महात्मा ने योगाभ्यास अथवा और किसी प्रकार का अभ्यास करके तीसरा तिल खोल लिया और सहसदल कंवल में गति प्राप्त कर ली, तथा वहाँ के धनी से सायुज्य अवस्था को प्राप्त हुए। उसने देह से अलग होने की राह देख ली और वही जीव को पिंड से न्यारा करके ऊपर ब्रह्माण्ड में रसाई करने का मार्ग और विधि का भेद बताकर जीव की आगे चाल चला सकता है। ऐसा महात्मा अपने दर्जे का सच्चा गुरू है जिसे कंज गुरू करके कहा है। ऐसे गुरू और उसके सच्चे शिष्यों को इस समय में किसी न किसी प्रकार से राधास्वामी दयाल अवश्य मिलेंगे क्योंकि आगे का मार्ग प्रशस्त करने की चाह उनमें अवश्य होगी। राधास्वामी दयाल का बचन है कि पिंड के ऊपर रसाई करने में

शब्द अभ्यास करना ही पड़ता है। योगेश्वर ज्ञानियों को भी शब्द अभ्यास करना पड़ा।

उदाहरणार्थ गुजरात में साधू परमहंस जी योगाभ्यासी थे जिन्हें कुछ गति प्राप्त थी और उनकी खटक ने दया से ऐसा संजोग बनाया कि राधास्वामी दयाल महाराज साहब के दरबार में आए।

देह गुरू यानी जिस गुरू ने कोई साधना नहीं करी और मात्र विद्याभिमानी और वाचक है, कुछ थोड़ी बहुत साधना देही की बुद्धि मात्र की भी करली है, उससे कुछ प्राप्त नहीं होगा।

राधास्वामी दयाल ने स्वयं सारी काया को मथकर पूरा रास्ता स्वयं खोला और अपने सेवकों को अपना बल प्रदान करके करनी करा कर अपनी दया और मेहर से उनका रास्ता आगे चलाकर पूर्ण उद्धार फर्माते हैं। राधास्वामी नाम के प्रताप से अघपाप कट जाते हैं, सफाई होती जाती है और सुरत निर्मल होकर ऊपर के लोकों में चढ़ाई के काबिल बनती चली जाती है। इसलिए राधास्वामी नाम के सुमिरन पर बहुत ज्यादा जोर बारम्बार दिया गया है।

जानना चाहिए कि राधास्वामी दयाल के अवतार लेने के बाद, राधास्वामी नाम घोषित होने के पश्चात् बिना इस नाम को धारण किए हुए पिंड के ऊपर चढ़ाई नहीं हो सकती।

इस प्रकार उपरोक्त दोहे में कंज गुरू का जो प्रयोग हुआ है वह गुरू के निज रूप अथवा शब्द रूप से है।

देह गुरू से तुलसी साहब का मतलब सांसारिक गुरू से है जिसने जीव का सही दिशा में सही मार्गदर्शन नहीं किया पर राधास्वामी दयाल ने जो देह रूप में अवतार धारण किया ने फरमाया कि गुरू गुरूमुख का सिलसिला जारी रहेगा जब तक जगत उद्धार का कार्य पूर्ण नहीं हो जाता, धार नहीं लौटेगी। इसलिये तुलसी साहब ने उपरोक्त दोहे में राधास्वामी मत, संतमत के देह धारी गुरू की ओर संकेत नहीं किया बल्कि अपनी बानी में हर जगह सच्चे देहधारी गुरू की महिमा गायी है।